विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
पहला परिच्छेद	१
११. परोसत वर्ग	१
१०१. परोसत जातक	१
[परोसहस्स जातक (९९) के समान ही ।]	
१०२. पण्णिक जातक	२
[बाप ने बेटी के सदाचरण की परीक्षा की ।]	
१०३. वेरी जातक	४
[चोरों से बच आने पर सेठ प्रसन्न हुआ ।]	
१०४. मित्तविन्द जातक	६
[मित्तविन्द जातक (८२) के समान ही ।]	
१०५. दुब्बलकट्ठ जातक	७
[जंगल में हवा से टूटकर बहुत सी कमजोर लकडी गिरती थी । हाथी भयभीत होता था ।]	
१०६. उदञ्चनि जातक	९
[बोधिसत्व को एक स्त्री ने लुभा लिया ।]	
१०७. सालित्त जातक	१२
[बहुत अधिक बोलने वाले पुरोहित के मुँह में बकरी को मिंगनी के निशाने लगा कर कुबड़े ने उसकी अत्यधिक बोलने की आदत छुड़ा दी ।]	
१०८. बाहिय जातक	१५
[स्त्री के ठीक ढंग से शौच फिरने मात्र से राजा प्रसन्न हो गया ।]	

विषय पृष्ठ

१०९ कुण्डकपूव जातक १७
[श्ररण्ड वृक्षदेवता ने श्रपने भक्त के चूरे के पूए को स्वीकार किया ।]

११० सव्वसहारक पञ्हो २०
[यह जातक महाउम्मग जातक (५४६) में श्राएगी ।]

१२. हसी वर्ग २१

१११ गद्रभ पञ्हो २१
[यह जातक भी उम्मग जातक (५४६) में ही श्राएगी ।]

११२ श्रमरादेवी पञ्ह २१
[यह जातक भी उम्मग जातक (५४६) म ही श्राएगी ।]

११३ सिगाल जातक २१
[लोभी ब्राह्मण की चादर में गीदड न कार्पापणो के बजाय मलमूत्र त्याग दिया ।]

११४ मितचिन्ती जातक २४
[मितचिन्ता मच्छ न बहुचिन्ती श्रौर श्रल्पचिन्ती मच्छ की जान बचाई ।]

११५ श्रनुसासिक जातक २६
[दूसरा को उपदेश देनवाली लोभी चिडिया स्वय पहिए के नीच श्राकर मर गई ।]

११६ दुब्बच जातक २९
[शिष्य का कहना न मान श्रपनी सामथ्य के बाहर पाँचवा शक्ति लाघने वाल श्राचाय्य न प्राणा से हाथ धोए ।]

११७ तित्तिर जातक (२) ३१
[वाचाल तपस्वी तथा तित्तिर की जान श्रधिक बोलने के कारण गई ।]

विषय | पृष्ठ

११८. वट्टक जातक (२) — ३३
[चिडीमार का दिया दाना-पानी ग्रहण न कर वटेर अपनी होशियारी से बन्धनमुक्त हुआ।]

११९. अकालरावी जातक — ३७
[असमय शोर मचाने वाला मुर्गा विद्यार्थियो द्वारा मार डाला गया।]

१२० बन्धनमोक्ख जातक — ३९
[राजा को धोखे म रख उसकी रानी ने चौसठ मनुष्या से सहवास किया। पुरोहित ने पाप भीरुता के कारण ऐसा न किया। रानी ने पुरोहित पर झूठा इल्जाम लगा उसे बँधवा दिया। सच्ची बात प्रगट कर पुरोहित स्वय मुक्त हुआ और अपन साथ उन चौसठ आदमियो तथा रानी की भी जान बचाई।]

१३ कुसनाळि वर्ग — ४४

१२१ कुसनाळि जातक — ४४
[बोधिसत्त्व ने गिरगिट का रूप धारण कर वृक्ष देवता के निवास स्थान मगल-वृक्ष को न कटने दिया।]

१२२ दुम्मेध जातक — ४८
[राजा अपन मगल हाथी की प्रशसा सुन ईर्षा के वशीभूत हो गया। उसने उसे मरवाना चाहा। महावत को जब यह पता लगा तो वह उसे आकाश मार्ग से काशी ले आया।]

१२३ नङ्गलीस जातक — ५१
[आचार्य्य ने जड-वुद्धि शिष्य को जो देखे सुन उसकी उपमाओ द्वारा शिक्षा सिखानी चाही। किन्तु वह हर चीज की उपमा केवल हल की फाल से ही देता रहा। आचार्य्य को हार माननी पडी।]

विषय पृष्ठ

१२४. अम्ब जातक .. . ५५

[तपस्वी अपने आहार की भी चिन्ता न कर पशुओ को पानी पिलाता था। वे उसे फलमूल लाकर देने लगे।]

१२५ कटाहक जातक ५८

[दास ने झूठा पत्र लिख एक सेठ की लडकी से शादी की। स्वामी को पता लग गया। लेकिन तब भी उसने प्रकट न किया। दास सेठ की लडकी को तग करता था—भोजन में बहुत दोष निकालता था। स्वामी ने सेठ की लडकी को एक ऐसा मन्त्र बता दिया कि दास का मुंह बन्द हो गया।]

१२६ असिलक्खण जातक ६२

[एक ब्राह्मण तलवार को सूँघ कर अच्छी या बुरी बताता था। रिश्वत देनेवाले की तलवार अच्छी, न देनेवाले की बुरी ठहरती। किसी शिल्पी ने तलवार के म्यान म मिर्चचूर्ण भर अपनी तलवार परीक्षा के लिए दी। ब्राह्मण को तलवार सूँघते समय छींक आ गई। नाक कट गई। पीछे लाख की नाक लगवाई गई।

एक राजकुमार और राजकुमारी परस्पर स्नेह करते थे। लोग उनका विवाह न होने देना चाहते थे। राजकुमार ने भूत बन छींक कर राजकुमारी को प्राप्त किया।

छींकने से एक की नाक कटी, दूसरे को राजकुमारी मिली।]

१२७ कलण्डुक जातक ६६

[कटाहक जातक (१२५) के समान है। इस जातक म सेठ की जगह एक तोते का बच्चा दास को सावधान करता है।]

विषय — पृष्ठ

१२८. बिळारवत जातक ६८
[शृगाल धर्म का ढोंग कर चूहों को खाता था। बोधिसत्त्व ने उसे बताया कि यह बिळारव्रत है।]

१२९. अग्गिक जातक ७०
[शृगाल के शरीर के सारे बाल जल कर सिर के कुछ बाल बच गए थे। उसने उन्हे शिखा बना चूहों को ठग कर खाना आरम्भ किया। बोधिसत्त्व ने उस ढोंगी से चूहों की रक्षा की।]

१३०. कोसिय जातक ७२
[दुश्शीला ब्राह्मणी रोग का बहाना कर ब्राह्मण के लिए चिन्ता का कारण हो गई। आचार्य्य ने उसे ठीक किया।]

१४. असम्पदान वर्ग — ७६

१३१. असम्पदान जातक ७६
[वाराणसी के पिळिय सेठ पर आपत्ति आई। राजगृह के सङ्ख सेठ ने आधी सम्पत्ति बांट दी; किन्तु जब राजगृह के सङ्ख सेठ का धन जाता रहा तो वाराणसी के पिळिय सेठ ने अपना मित्र-धर्म नहीं निभाया।]

१३२. पञ्चगरुक जातक ८०
[तेलपत्त जातक (९६) के समान।]

१३३. घतासन जातक ८३
[वृक्ष पर पक्षिगण थे। तालाब में के नागराज ने पानी में आग जलाई। पक्षिगण अन्यत्र गए।]

१३४. झानसोधन जातक ८५
[मरते हुए आचार्य्य ने 'नेवसञ्ञानासञ्ञी' कहा। ज्येष्ठ शिष्य ही समझ सका।]

विषय पृष्ठ

१३५. चन्दाभ जातक ८७

[मरते हुए आचार्य्य ने 'चन्दाभ सुरियाभं' कहा। ज्येष्ठ शिष्य ही समझ सका।]

१३६. सुवण्णहंस जातक ८८

[लोभवश ब्राह्मणी ने सुवर्ण-हंस के सभी पर एक साथ उखाड लिए। वह सोने के न होकर साधारण पख रह गए।]

१३७. बब्बु जातक ६१

[चुहिया बिल्लो को मास दे देकर अपनी जान बचाती थी। बोधिसत्त्व के उपदेश से वह सब को मारने में समर्थ हुई।]

१३८. गोध जातक.. .. .. ६६

[तपस्वी गोह का मास खाना चाहता था। गोह ने ताड लिया—अन्दर से मैला है, बाहर ही साफ है।]

१३९. उभतोभट्ठ जातक ६८

[घर मे भार्य्या ने पडोसिन से झगडा कर लिया। बाहर मछली पकडने जाकर मछवे की आँख फूट गई और कपडे चोरी चले गए; इस प्रकार वह उभयभ्रष्ट हुआ।]

१४०. काक जातक १०१

[कौवे ने ब्राह्मण के सिर पर बीट कर दी। ब्राह्मण ने कौवो की जाति को ही नष्ट करने का सकल्प किया। बोधिसत्त्व ने अपनी जाति की रक्षा की।]

१५. ककण्टक वर्ग १०५

१४१. गोध जातक (२) १०५

[गोह की गिरगिट के साथ दोस्ती गोह-कुल नष्ट करने का कारण हुई।]

विषय पृष्ठ

१४२. सिगाल जातक १०८

[गीदड़ों को मारने की इच्छा से एक धूर्त आदमी ने मुर्दे का स्वांग किया।]

१४३. विरोचन जातक ११०

[गीदड़ ने शेर की नकल करके पराक्रम दिखाना चाहा। हाथी ने उसे पाँव से रोंद दिया, उस पर लीद कर दी।]

१४४. नङ्गुट्ठ जातक ११४

[ब्राह्मण अग्नि-भगवान को गो-मांस चढ़ाना चाहता था। चोर ही उस बैल को मार कर खा गए। ब्राह्मण बोला—हे अग्नि भगवान्! आप अपने बैल की रक्षा भी नही कर सके। अब यह पूँछ ही ग्रहण करे।]

१४५. राध जातक ११६

[पोट्ठपाद और राध नाम के दो तोते ब्राह्मणी का अनाचार प्रकट करने के बाद उस घर में नही रहे।]

१४६. काक जातक ११८

[कौवी को समुद्र बहा ले गया। कौवों ने क्रोधित हो उलीच-उलीच कर समुद्र खाली करना चाहा।]

१४७. पुप्फरत्त जातक १२१

[स्त्री ने केसर के रग का वस्त्र पहन उत्सव मनाने की जिद की। स्वामी को चोरी करनी पड़ी। राजाज्ञा से उसका बध हुआ।]

१४८. सिगाल जातक १२४

[मास-लोभी सियार हाथी के गुदा मार्ग से उसके पेट मे प्रविष्ट हो वहा कैद हो गया।]

१४९. एकपण्ण जातक १२८

[बोधिसत्त्व ने नीम के पौदे के दो पत्तों की कड़वाहट चखा कर राजकुमार का दुष्ट स्वभाव दूर किया।]

विषय पृष्ठ

१५०. सञ्जीव जातक १३४

[विद्यार्थी ने मुर्दे को जिलाने का मन्त्र तो सीखा किन्तु उसे फिर मुर्दा बनाने का नहीं। एक व्याघ्र ने उसकी हत्या की।]

दूसरा परिच्छेद १३६

१. दळह वर्ग १३६

१५१. राजोवाद जातक १३६

[मल्लिक राजा 'जैसे को तैसा' था, किन्तु काशी नरेश बुराई को भलाई से जीतता था। वही बड़ा सिद्ध हुआ।]

१५२. सिगाल जातक १४४

[सियार ने सिंह-बच्ची से प्रेम-निवेदन किया। उसने अपने भाइयो से शिकायत की। सियार को मार डालने के प्रयत्न मे सातो शेर मर गए।]

१५३. सूकर जातक १४८

[सुअर ने शेर को युद्ध के लिए ललकारा। शेर लड़ने आया; किन्तु उसके बदन की गन्दगी के कारण बिना लड़े ही सुअर को विजयी मान चला गया।]

१५४. उरग जातक १५२

[बोधिसत्व ने गरुड़ से नाग की रक्षा की।]

१५५. गग्ग जातक १५५

[छींक आने पर 'जीवें' और 'जीओ' कहने की प्रथा कैसे चली?]

विषय | पृष्ठ

१५६ अलीनचित्त जातक १५६
[बढइयो ने हाथी के पाँव का काँटा निकाला। कृतज्ञ हाथी पहले स्वय उनकी सेवा करता रहा। बाद म अपना लडका दे दिया। उस हाथी-बच्चे ने बहुतो को उपकृत किया।]

१५७ गुण जातक १६५
[दलदल में फँसे सिंह को सियार ने बाहर निकाला। सिंह अन्त तक कृतज्ञ रहा।]

१५८ सुहनु जातक १७२
[लोभी राजा चाहता था कि व्यापारियो के घोड उसे कम मूल्य में मिल जाएँ। बोधिसत्त्व ने उसकी योजना विफल कर दी।]

१५९ मोर जातक १७६
[रानी ने सुनहरे रग के मोर के लिए जान दे दी। राजा ने सोने के पट्टे पर लिखवाया—जो सुनहरे मोर का मास खाते हैं, वे अजर अमर हो जाते हैं। मोर ने पूछा—मैं तो मरूँगा, मेरा मास खानेवाले क्यो नही ?]

१६० विनीलक जातक १८२
[हस ने कौवी के साथ सहवास किया। विनीलक पैदा हुआ। हस उसे अपने बच्चो के समान रखना चाहता था किन्तु वह अयोग्य सिद्ध हुआ।]

२. सन्थव वर्ग १८५

१६१. इन्दसमानगोत्त जातक १८५
[मैत्री बराबर वाल के साथ करनी चाहिए। इन्द-समानगोत्त ने बच्चे-हाथी का अनुचित विश्वास किया। उसने बडे होने पर अपने को पोसनेवाले को ही मार डाला।]

विषय पृष्ठ

१६२. सन्थव जातक १८८

[ब्राह्मण ने घी मिश्रित खीर अग्नि भगवान को पिलाई। अग्नि भगवान ने उसकी पर्णकुटी जला डाली।]

१६३. सुसीम जातक १६०

[सुसीम राजा ने समझा कि उसके पुरोहित का लड़का न तीनो वेद जानता है न हस्ति-सूत्र। किन्तु वह सोलह वर्ष का वालक एक ही रात में तक्षसिला से तीनो वेद और हस्ति-सूत्र सीख आया।]

१६४. गिज्झ जातक १६६

[गृद्धो ने अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए लोगो के वस्त्राभरण उठा उठा कर सेठ को लाकर दिए।]

१६५. नकुल जातक १६६

[बोधिसत्व ने नेवले और सांप की दोस्ती करा दी।]

१६६. उपसाळहक जातक २०१

[उपसाळहक ब्राह्मण मरने पर ऐसी जगह जलाया जाना चाहता था जहाँ पहले कोई न जलाया गया हो। लेकिन ऐसी जगह कहाँ ?]

१६७. समिद्धि जातक २०४

[देवकन्या ने भिक्षु के सुन्दर शरीर पर आसक्त हो उसे काम-भोगो का निमन्त्रण दिया। भिक्षु ने बिना काम-भोगो को भोगे भिक्षु बनने का कारण बताया।]

१६८. सकुणग्घि जातक २०७

[बटेर ने अपने गोचर स्थान पर रह कर बाज की भी जान ले ली।]

१६६. अरक जातक २१०

[मैत्री भावना का माहात्म्य।]

विषय पृष्ठ

१७०. ककण्टक जातक २१३

[यह कथा महाउम्मग जातक (५४६) में है।]

२. कल्याणधम्म वर्ग २१४

१७१. कल्याणधम्म जातक २१४

[प्रव्रजित न होने पर भी घर के मालिक को प्रव्रजित हुआ समझ सभी रोने पीटने लगे। घर के मालिक को पता लगा तो वह सचमुच प्रव्रजित हो गया।]

१७२. दद्दर जातक २१७

[नीच सियार का चिल्लाना सुन लज्जावश सिंह चुप हो गए।]

१७३. मक्कट जातक २२०

[बन्दर तपस्वी का भेष बनाकर आया था। बोधिसत्व ने उसे भगा दिया।]

१७४. दुब्बभियमक्कट जातक २२३

[तपस्वी ने वन्दर को पानी पिलाया। बन्दर अपने उपकारी पर पाखाना करके गया।]

१७५. आदिच्चुपट्ठान जातक २२५

[बन्दर ने सूर्य्य की पूजा करने का ढोंग बनाया।]

१७६. कळायमुट्ठि जातक २२७

[वन्दर का हाथ और मुँह मटर से भरा था, किन्तु वह उन सब को गवाँ कर केवल एक मटर को खोजने लगा।)

१७७. तिन्दुक जातक २३०

[फल खाने जाकर सभी वन्दर फँस गए थे। गांव वाले उन्हें मार डालते। बोधिसत्व के सेनक नामक भानजे ने अपनी बुद्धि से सबको बचाया।]

१७८. कच्छप जातक २३३

[जन्मभूमि के मोह के कारण कछुवे की जान गई।]

विषय पृष्ठ

१७९ सतधम्म जातक २३७

[ब्राह्मण ने पहले अपने ऊँचे कुल के अभिमान के कारण चाण्डाल का दिया भात खाने से इनकार किया। पीछे जोर की भूख लगने पर चाण्डाल से छीन कर उसका जूठा भात खाया।]

१८० दुद्दद जातक २४०

[कठिनाई से दिया जा सकने वाला दान देने की महिमा।]

४. असदिस वर्ग २४४

१८१ असदिस जातक २४४

[असदिस राजकुमार की विलक्षण धनुर्विद्या।]

१८२ सङ्गामावचर जातक २४६

[हाथी सिखाने वाले ने मंगल-हाथी को बढ़ावा दे संग्राम जीता।]

१८३ वालोदक जातक २५४

[सिन्धु कुल में पैदा हुए घोड़े अंगूर का रस पीकर शान्त रहे। जब बचे रस में पानी मिलाकर गधों को पिलाया गया। वह उछलने-कूदने लगे।]

१८४ गिरिदत्त जातक २५७

[सईस के लँगड़ा होने से घोड़ा लँगड़ाकर चलने लग गया।]

१८५ अनभिरति जातक २५९

[चित्त की अस्थिरता मन्त्रों की विस्मृति का कारण हुई।]

१८६ दधिवाहन जातक २६२

[दधिवाहन राजा ने मणि-[illegible] छुरी कुल्हाड़ी ढोल तथा दही के घड़े की मदद से वाराणसी के राज्य पर अधिकार किया।]

विषय पृष्ठ

१८७ चतुमट्ठ जातक २६७

[हंस बच्चे वृक्ष पर बैठ बातचीत करते थे। सियार बोला—नीचे उतरकर बातचीत करो, जिसे मृगराज भी सुने।]

१८८ सीहकोत्थुक जातक २६६

[गीदड़ी से सिंहपुत्र पैदा हुआ। उसकी शक्ल सूरत थी सिंह जैसी किन्तु स्वर शृगाल का सा।]

१८९. सीहचम्म जातक २७१

[सिंह की खाल पहन कर गधा खेत चरता रहा, किन्तु बोलने पर मारा गया।]

१९० सीलानिसंस जातक २७३

[शील के प्रताप से एक आर्य्य-श्रावक ने अपने साथ एक नाई को भी नौका पर समुद्र पार लँघाया।]

. रुहक वर्ग २७६

१९१ रुहक जातक २७६

[ब्राह्मणी ने ब्राह्मण के साथ मजाक किया। उसने गुस्से हो उसे तलाक दे दिया।]

१९२ सिरिकालकण्णि जातक २७८

[यह जातक महाउम्मग जातक (५४६) में आएगी।]

१९३ चुल्लपदुम जातक २७९

[सात भाई छः भाइयों की स्त्री को मार कर खा गए। बोधिसत्त्व अपनी स्त्री को लेकर भाग निकले। उस स्त्री ने कृतघ्नता की हद कर दी।]

१९४ मणिचोर जातक २८५

[राजा ने स्त्री पर मुग्ध हो उसके पति पर मणि चुराने का झूठा अपराध लगाकर उसे मरवाना चाहा। वह स्वयं मारा गया।]

विषय पृष्ठ

१९५ पब्बतूपत्थर जातक २८९

[राजा की रानी को उसके आमात्य ने दूषित कर दिया। राजा ने विचार कर दोनो को क्षमा कर दिया।]

१९६ वालाहस्स जातक २९१

[यक्षिणियाँ व्यापारियो को फँसाकर यक्ष नगर ले जाती। पाँच सौ व्यापारी उनके चगुल म फँस गए। ज्येष्ठ व्यापारी को पता लगा कि यह यक्षिणियाँ हैं। उसने सब को भाग चलने को कहा। ढाई सौ व्यापारी ज्येष्ठ व्यापारी का कहना मान बच निकले। कहना न मानने वाले दो ढाई सौ व्यापारी यक्षिणियो के आहार बने।]

१९७ मित्तामित्त जातक २९५

[मित्र या अमित्र कैसे पहचाना जा सकता है ?]

१९८ राध जातक २९७

[पोट्ठपाद ने ब्राह्मणी को दुराचार से विरत रहने का उपदेश दिया। उसने विचारे तोते की गरदन मरोड उसे चूल्हे में फेंक दिया।]

१९९ गहपति जातक ३००

[ब्राह्मणी और गाँव का मुखिया मिलकर ब्राह्मण को धोखा देना चाहते थे। वे अपने दुराचार को न छिपा सके।]

२०० साधुसील जातक ३०३

[एक ब्राह्मण की चार लडकियाँ थी। उसने आचार्य्य से पूछा—लडकियाँ किसे देना योग्य है ?]

६. नतंदल्ह वर्ग ३०६

२०१ बन्धनागार जातक ३०६

[पुत्र दारा का बधन सब से बडा बन्धन है।]

विषय पृष्ठ

२०२ केळिसील जातक ३०९

[शक्र ने जरा जीर्ण हाथी घोडे, बैल तथा आदमियों को तंग करने वाले ब्रह्मदत्त का दमन किया।]

२०३ खन्धवत्त जातक ३१२

[सर्पों के प्रति मैत्री भावना का माहात्म्य।]

२०४ वीरक जातक ३१८

[सविट्ठक ने वीरक की नकल की। वह खाई में फँसकर मर गया।]

२०५ गङ्गेय्य जातक ३२०

[गङ्गेय्य सुन्दर है अथवा यामुनेय्य ? दोनों मछलियों में कौन अधिक सुन्दर है ?]

२०६ कुरुङ्गमिग जातक ३२३

[कुरुङ्ग मृग ने कठफोडे तथा कछुवे की सहायता से अपने को शिकारी से बचाया और उनके प्राणों की भी रक्षा की।]

२०७ अस्सक जातक ३२६

[अस्सक राजा अपनी मृत रानी के शोक से पागल हो रहा था। वह रानी गोबर के कीडे की योनि में पैदा हो कर एक कीडे को अस्सक राजा का अपेक्षा अच्छा समझती थी।]

२०८ सुसुमार जातक ३३०

[मगरमच्छ की भार्य्या बन्दर का कलेजा खाना चाहती थी। वानरराज ने उसके पति का बुरी तरह चकमा दिया।]

२०९ कक्कर जातक ३३२

[पुराना हुशियार बकरा शिकारी के फन्दे में नहीं आता था।]

विषय पृष्ठ

२१० कन्दगलक जातक ३३४
[कन्दगलक ने खदिरवन में रहनेवाले कठफोरनी पक्षी की नकल कर अपनी जान गँवाई ।]

७. वीरणत्थम्भक वर्ग ३३७

२११ सोमदत्त जातक ३३७
[पुत्र पिता को सिखा पढाकर राजा से दो बैल माँगने लगया । पिता ने राजा से बैल माँगने के बदले कहा—बैल लें ।]

२१२ उच्छिट्ठभत्त जातक ३४०
[ब्राह्मणी ने अपने पति को अपने जार का जूठा भात खिलाया ।]

२१३ भरु जातक ३४३
[भरू राजा ने रिश्वत ले बट वृक्ष के लिए झगडने वाल तपस्वियो का झगडा बढाया ।]

२१४ पुण्णनदी जातक ३४७
[राजा ने क्रोधित हो अपने बुद्धिमान पुरोहित को निकाल दिया था । पीछे उसके गुणा को याद कर कौवे का मास भेज कर बुलाया ।]

२१५ कच्छप जातक ३४९
[हस-बच्च अपनी चोच म एक लकडी पर कछुवे को लिए जा रह थे । उसने चुप न रह सकने के कारण आकाश स गिरकर जान गँवाई ।]

२१६ मच्छ जातक ३५२
[कामी मच्छ ने मच्छुआ से प्राण की भिक्षा माँगी ।]

२१७ सेग्गु जातक ३५४
[पिता न पुत्री के कवारपन की परीक्षा की ।]

विषय पृष्ठ

२१८. कूटवाणिज जातक ३५७

[एक बनिए ने दूसरे की लोहे की फालों को 'चूहे खा गए' कहा तो उसने उसके पुत्र को 'चिड़िया ले गई' कहा।]

२१९. गरहित जातक ३६१

[बन्दर ने कुछ दिन मनुष्यों मे रह कर लौटकर अपने साथियों मे मनुष्यों के जीवन की बड़ी निन्दा की।]

२२०. धम्मद्ध जातक ३६४

[राजा ने काळक के स्थान मे बोधिसत्त्व को न्यायाधीश बना दिया। काळक का रिश्वत का लाभ जाता रहा। उसने बोधिसत्त्व को मरवाने के अनेक उपाय किए। शक्र बोधिसत्त्व के सहायक थे। काळक की एक न चली।]

८. कासाव वर्ग ३७५

२२१. कासाव जातक ३७५

[एक आदमी काषाय वस्त्र पहन हाथियों को धोखा दे उनकी सुण्ड काट काट लाकर बेचता था।]

२२२. चुल्लनन्दिय जातक ३७८

[शिकारी ने मातृ-भक्त बन्दरों तथा उनकी बूढ़ी माता को मार डाला। उसके घर पर बिजली गिर पड़ी।]

२२३. पुटभत्त जातक ३८१

[राजा को भात की पोटली मिली। वह उसमे से बिना रानी को कुछ दिए अकेला ही खा गया।]

२२४. कुम्भील जातक ३८५

[वानरिंद जातक (५७) के समान कथा है।]

२२५. खन्तिवण्णन जातक ३८६

[आमात्य ने राजा के रनिवास को दूषित किया और आमात्य के सेवक ने उसके घर में दूषितकर्म किया।]

विषय पृष्ठ

२२६ कोसिय जातक ३८८

[समय पर घर से बाहर निकलना अच्छा है, असमय पर नहीं ।]

२२७ गूथपाणक जातक ३९१

[गूँह का कीडा गीले गूँह पर चढा । वह उसके चढने से थोडा नीचे को दबा । गूँह का कीडा चिल्लाया—पृथ्वी मेरा बोझ नही उठा सकती है ।]

२२८ कामनीत जातक ३९४

[काम जातक (४६७) म । ब्रह्मचारी न राजा को तीन राज्य जिता देन की बात कही । फिर वह चला गया । राजा को लगा कि उसके हाथ में आए हुए तीन राज्य चले गए ।]

२२९ पलासी जातक ३९८

[वाराणसी नरेश ने तक्षशिला पर आक्रमण की तैयारी की । किन्तु वह तक्षशिला नरेश की ड्योढी देखकर ही हिम्मत हार गया ।]

२३० दुतिय पलासी जातक ४०१

[तक्षशिला नरेश न वाराणसी नरश पर आक्रमण की तैयारी की । किन्तु वह वाराणसी नरश के स्वर्णपट सदृश महाललाट को देख कर हिम्मत हार गया ।]

९. उपाहन वर्ग ४०५

२३१ उपाहन जातक ४०५

[शिष्य ने आचार्य्य से हस्ति शिल्प सीख उन्ही से मुकाबला करना चाहा ।]

२३२ वीणथूण जातक ४०८

[सेठ की लडकी न कुबडे की पीठ पर कूब देख कर समझा यह पुरुषों म वृषभ होगा ।]

विषय पृष्ठ

२३३. विकण्णक जातक ४११
[स्वादिष्ट भोजन के वशीभूत मच्छ तीर से बींधा गया।]

२३४. असिताभू जातक ४१४
[राजकुमार अपनी देवी की ओर से उदासीन हो किन्नरी की ओर आकृष्ट हुआ। देवी ने सन्मार्ग ग्रहण किया।]

२३५. वच्छनख जातक ४१७
[गृहस्थी ने परिव्राजक को गृहस्थ जीवन की ओर आकृष्ट करना चाहा। परिव्राजक ने गृहस्थ जीवन के दोष कहे।]

२३६. बक जातक ४२०
[ढोंगी बगुला मछलियों को खाना चाहता था।]

२३७. साकेत जातक ४२१
[तथागत ने स्नेह की उत्पत्ति का कारण बताया।]

२३८. एकपद जातक ४२३
[अनेक अर्थपदों से युक्त एकपद।]

२३९. हरितमात जातक ४२५
[सर्प ने नीले मेण्डक से पूछा—तुझे मछलियों की यह करतूत अच्छी लगती है?]

२४०. महापिङ्गल जातक ४२८
[राजा मर गया था। तब भी द्वारपाल को भय था कि अत्याचारी राजा यमराज के पास से कहीं लौट न आवे।]

१०. सिगाल वर्ग ४३२

२४१. सब्बदाठ वर्ग ४३२
[सब्बदाठ नामक शृगाल ने पृथ्वीजय मन्त्र सीख लिया था। उसने सब पशुओं की सेना बना वाराणसी नरेश पर आक्रमण किया। ब्राह्मण ने उपाय से उसे हराया।]

विषय | पृष्ठ

२४२. सुनख जातक . . . ४३५
[कुत्ते को चमडे की रस्सी मे बाँधकर ले जाया जा रहा था। जब सब लोग सो रहे थे कुत्ते ने चमडे की रस्सी काट डाली और भाग आया।]

२४३. गुत्तिल जातक ४३८
[उज्जैन का मूसिल गन्धर्व काशी के गुत्तिल गन्धर्व के पास आया। उसने गुत्तिल से वीणावादन सीख गुत्तिल से ही मुकाबला करने की धृष्टता की।]

२४४. वीतिच्छ जातक . ४४७
[परिव्राजक ने बोधिसत्त्व से शास्त्रार्थ किया—कौन सी गङ्गा ?]

२४५. मूलपरियाय जातक . ४४९
[आचार्य्य ने अभिमानी शिष्यो को प्रश्न पूछ कर निरुत्तर किया।]

२४६. तेलोवाद जातक ४५२
[बुद्धिमान मास खाने वाले को पाप नही लगता।]

२४७. पादञ्जली जातक . ४५४
[पादञ्जली कुमार को केवल होंठ चबाना आता है।]

२४८. किंसुकोपम जातक ४५६
[राजकुमारो ने किंसुक को भिन्न भिन्न समयो म देखा था। इसीलिए उनमें से एक ने किंसुक को एक आकार का समझा, दूसरे ने दूसरे का।]

२४९. सालक जातक ४५८
[सपेरे ने बन्दर को बाँस से मारा। बदर ने फिर सपेरे का विश्वास ही नही किया।]

२५०. कपि जातक ४६१
[ढोंगी बन्दर आग तापने के लिए कुटी के द्वार पर बैठा था। तपस्वी ने भगा दिया।]

जातक

[द्वितीय खण्ड]

पहला परिच्छेद

११. परोसत वर्ग

१०१. परोसत जातक

परोसतञ्चेपि समागतान
झायेयुं ते वस्ससत अपञ्ञा,
एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो
यो भासितस्स विजानाति अत्थ ॥

[प्रज्ञाहीन शताधिक आये-हुए मनुष्य यदि सौ वर्ष तक भी ध्यान लगाते रहे तो उनकी अपेक्षा एक प्रज्ञावान् मनुष्य जो कही हुई बात के (गम्भीर) अर्थ को जान लेता है, अच्छा है।]

कथा की दृष्टि से, व्याख्या (व्याकरण) की दृष्टि से, साराश की दृष्टि से यह जातक (कथा) परोसहस्स जातक[1] के समान ही है। इसमें केवल 'ध्यान कर' पद की विशेषता है। जिसका अर्थ है कि प्रज्ञा-रहित मनुष्य सौ वर्ष भी ध्यान करते रहे, देखते रहे, धारण करते रहें, इस प्रकार देखते हुये भी वह गूढ (अर्थ) को अथवा (असली) बात को नहीं देख पाते। इसलिये जो मनुष्य कही बात के अर्थ को जानता है वह प्रज्ञावान् अकेला ही अच्छा है।

---

[1] परोसहस्स जातक (९९)

१०२. पण्णिक जातक

"यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताण ..." आदि (की कथा) शास्ता ने जेत-वन में रहते समय एक दुकानदार उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती निवासी उपासक नाना प्रकार की जड़ी-बूटी तथा लौकी-कद्दू आदि बेच कर गुजारा करता था। उसकी एक लड़की थी। रूपवान, सुन्दर, सदाचारिणी तथा लज्जा-भय से युक्त, (लेकिन साथ ही) सदा हँसती रहती थी। बराबरी के कुलवालों के लड़की को ब्याहने आने (की इच्छा करने) पर, वह सोचने लगा—"इसकी शादी होगी। यह सदैव हँसती रहती है। कंवारपन को नष्ट करके यदि कुमारी दूसरे कुल में जाती है, तो माता पिता के लिये निन्दा का कारण होती है। मैं इसकी परीक्षा करूँगा कि इसका कंवारपन स्वरक्षित है कि नहीं?"

एक दिन उसने लड़की से टोकरी उठवा, पत्तों के लिये जंगल में जाकर, उसकी परीक्षा करने की इच्छा से, कामासक्त की भाँति हो, गुप्त बात कह उसे हाथ से घर लिया। जैसे ही उसे पकड़ा उसने रोते चिल्लाते हुए कहा—"तात! यह नामुनासिब है, यह पानी से आग निकलने के सदृश है। ऐसा न करें।"

"अम्म! मैंने केवल परीक्षा करने के लिए ही तुझे हाथ से धरा था। अब, बता कि तेरा कंवारपन (सुरक्षित) है या नहीं?"

"हाँ तात! है। मैंने राग के वशीभूत हो किसी भी पुरुष की ओर नहीं देखा।"

उसने लड़की को आश्वासन दे घर ले जा, विवाह करके पराये कुल भेजा। (फिर) शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से, गन्ध-माला आदि हाथ में ले,

जेतवन पहुँच, शास्ता की वन्दना तथा पूजा करके एक ओर बैठा। "चिर-काल के बाद आये ?" पूछे जाने पर उसने भगवान को वह सब हाल कहा। शास्ता ने 'उपासक ! कुमारी तो चिरकाल से सदाचारिणी है, लेकिन तूने न केवल अभी किन्तु, पहले भी उसकी परीक्षा की है' कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी में एक दुकानदार उपासक था इत्यादि कथा वर्तमान कथा के सदृश ही है। हाँ, परीक्षा करने के लिए उसने जब लड़की को हाथों से करा, तो लड़की ने रोते रोते यह गाथा कही—

यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं
सो मे पिता दूभि वने करोति,
सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्झे
यो तायिता सो सहसा करोति॥

[कष्ट में पड़ने पर, जिसे त्राता होना चाहिये, वही मेरा पिता जंगल में विश्वास-घात कर रहा है। सो मैं जंगल में किसे (सहायता के लिये) बुलाऊँ ? जो त्राता है, वही दुस्साहस कर रहा है।]

यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं का अर्थ है कि जो शारीरिक अथवा मानसिक दुःख से पीडित का त्राण करता है, परित्राण करता है, तथा प्रतिष्ठा का कारण होता है। **सो मे पिता दूभि वने करोति** का अर्थ है कि वह दुःख से परित्राण करनेवाला मेरा पिता ही यहाँ इस प्रकार का मित्र-द्रोही कर्म करता है, अपनी निज की पुत्री (के शील) को ही लाँघना चाहता है। **सा कस्स कन्दामि** का मतलब है कि किसके पास रोऊँ ? कौन मुझे बचायेगा ? **यो तायिता सो सहसा करोति**, का अर्थ हुआ कि जो पिता मेरा त्राता है, रक्षक है, आश्रय दाता होने योग्य, वह पिता ही दुस्साहस कर रहा है।

तब पिता ने उसे आश्वासन देकर पूछा—"अम्म ! तूने अपने आप को स्वरक्षित तो रखा है ?"

"हाँ, तात ! मैंने अपने आपको (सँभाल कर) रक्खा है।"

उसने उसे घर ले जा विवाह कर, पराये कुल भेज दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में उपासक स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय का पिता ही इस समय का पिता; लड़की ही इस समय की लड़की है। लेकिन उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

१०३. वेरी जातक

"यत्थ वेरी निवसति ..."आदि गाथा शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथ पिण्डिक के सम्बन्ध से कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डिक ने अपने भोग-ग्राम[1] से लौटते हुए रास्ते में चोरों को देख-कर सोचा—"रास्ते में रहना ठीक नहीं। श्रावस्ती ही जाकर रहूँगा।" यह सोच जल्दी जल्दी बैलों को हाँक, श्रावस्ती पहुँच, अगले दिन जब विहार गया, तो शास्ता को यह बात कही। शास्ता ने "गृहपति ! पूर्व समय में भी पण्डित-जन रास्ते में चोरों को देखकर रास्ते में न ठहर, अपने रहने के स्थान पर ही चले गये' कह उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

---

[1] भोगग्राम=जमींदारी का ग्राम।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महासम्पत्ति-शाली सेठ होकर पैदा हुआ। एक गाँव में निमन्त्रण खाकर लौटते समय रास्ते में चोरो को देख वहाँ नही ठहरा। जल्दी जल्दी बैलो को हाँक, अपने घर ही आकर नाना प्रकार के श्रेष्ठरसो से युक्त भोजन करके महाशय्या पर लेटा। उस समय 'चोरो के हाथ से निकलकर भयरहित स्थान अपने घरपर आ गया हूँ' सोच, उल्लासपूर्वक यह गाथा कही—

यत्थ वेरी निवसति न वसे तत्थ पण्डितो,
एकरत्त द्विरत्त वा दुक्खं वसति वेरिसु ॥

[जहाँ पर वैरी का निवास हो, पण्डित आदमी को चाहिये कि वहाँ निवास न करे। क्योंकि वैरी के साथ एक या दो रात्रि रहनेवाला भी दुःख ही भोगता है।]

वेरी, वैर-भाव से युक्त आदमी। **निवसति,** प्रतिष्ठित रहता है। **न वसे तत्थ पण्डितो,** जहाँ वह वैरी आदमी प्रतिष्ठित होकर रहता है, पाण्डित्य से युक्त पण्डित-जन को चाहिये कि वहाँ न रहे। किस कारण से ? **एकरत्तं द्विरत्त वा दुक्ख वसति वेरिसु,** वैरियो के बीच में (केवल) एक या दो दिन रहता हुआ भी दुःख ही भोगता है।

बोधिसत्व इस प्रकार हर्ष ध्वनि करके दान-आदि पुण्य-कर्म कर यथाकर्म (परलोक) सिधारे। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बैठाया कि उस समय मैं ही वाराणसी का सेठ था।

१०४. मित्तविन्द जातक

"चतुब्भि अट्ठज्झगमा" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय, एक दुर्भाषी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

पहले आई *मित्तविन्द जातक की कहानी के सदृश ही यह कहानी* भी जाननी चाहिये।

ख. अतीत कथा

लेकिन यह जातक कथा है काश्यप-सम्बुद्ध के समय की। उस समय एक नरक-निवासी ने, जिसके सिर पर घूमनेवाला चक्र[1] था और जो नरक में जल रहा था, बोधिसत्त्व से पूछा—"भन्ते! मैंने क्या पापकर्म किया है?" बोधिसत्त्व ने "तूने अमुक और अमुक पापकर्म किया है" कह यह गाथा कही—

> चतुब्भि अट्ठज्झगमा अट्ठाहिपि च सोळस
> सोळसाहि च बत्तिंस अत्रिच्छं चक्कमासदो;
> इच्छाहतस्स पोसस्स चक्कं भमति मत्थके॥

[चार से आठ, आठ से सोलह, और सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमनेवाला चक्र प्राप्त हुआ। क्योंकि इच्छा (लोभ) से ताडित मनुष्य के सिर पर चक्र भ्रमता है।]

---

[1] उरचक्क—पालि-कोष में (रीजडेविड्स ने) उर-चक्र का अर्थ छाती पर रक्खा लोहे का चक्र किया है, जो यथार्थ नहीं। 'उर' शब्द वैदिक है, जिसका अर्थ है गतिमान्।

चतुब्भि अट्ठज्भगमा, समुद्र मे चार परियो (विमान प्रेतनियो) को पाकर, उन से सन्तुष्ट न हो, लोभ के कारण और आठ को प्राप्त किया। शेष दो पदो का अर्थ भी इसी प्रकार है। अत्थिच्छ चक्कमासदो इस प्रकार स्वकीय लाभ से असन्तुष्ट इस इस चीज की प्राप्ति होने पर, और और चीज की इच्छा करते हुए, अब इस उर-चक्र को प्राप्त हुए। उसके इस प्रकार इच्छाहतस्स पोसस्स तृष्णा से प्रताडित तेरे चक्क भमति मत्थके, पत्थर तथा लोहे के दो प्रकार के चक्रो मे से तेज धार वाला लोहे का चक्र, फिर फिर उसके माथे पर गिरने से ऐसा कहा गया।

यह कहकर (बोधिसत्व) स्वय देवलोक को गये। वह नरकगामी प्राणी भी अपने पापकर्मो के क्षीण होने पर कर्मानुसार अवस्था को प्राप्त हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया—उस समय मित्र-विन्दक (अब का) दुर्भाषीभिक्षु था, और देवपुत्र तो मै ही था।

१०५. दुब्बलकट्ठ जातक

"बहुम्पेत वने कट्ठ" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक भयभीत भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी, तरुण, शास्ता का धर्मोपदेश सुन, प्रव्रजित हो मरने से भयभीत रहता था। रात या दिन मे हवा के चलने पर, सूखी-डण्ठलो के गिरने पर तथा पक्षियो या चौपायो के कुछ शब्द करने पर, मरण-भय से डरकर वह ज़ोर से चिल्लाता हुआ भागता। 'मुझे भी मरना होगा', इसका उसे ध्यान तक न था। यदि वह यह जानता कि "मै मरूँगा" तो उसे मरने

से डर न लगता। वह मरण-स्मृति योग-विधि (=कर्मस्थान) का अन-भ्यासी होने से ही डरता था। उसकी मृत्युभय से भयभीत होने की बात भिक्षु-संघ को पता लग गई। सो एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलाई —आयुष्मानो! अमुक मरण-भीरु भिक्षु मृत्यु से डरता है। भिक्षु को तो चाहिये कि वह 'मुझे अवश्य ही मरना है' इस मरण-स्मृति कर्मस्थान की भावना करे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "यह बातचीत" कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को बुलवाया और पूछा—क्या तुझे सचमुच मरने से डर लगता है?

"भन्ते! सचमुच।"

"भिक्षुओ! इस भिक्षु से असन्तुष्ट मत होओ। यह भिक्षु केवल अब ही मरने से भयभीत नहीं है, पहले भी भय भीत ही रहा है। यह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व हिमालय में वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी-नरेश ने हस्ति-शिक्षकों को अपना हाथी दिया था ताकि वे उसे निर्भय बनावें। उन्होंने भाले ले, हाथी को पक्की तरह से खूंटे से बाँध, उसे घर उसका डर निकालना शुरू किया। इस पीडा को न सह सकने के कारण हाथी ने खूँटा तुडा, मनुष्यों को भगा, स्वयं हिमालय में प्रवेश किया। आदमी उसको न पकड सकने के कारण वापिस लौट आये। हाथी को वहाँ मरण भय लग गया। वायु के शब्द को सुनकर, काँपता हुआ, मरने के भय से भय-भीत अपनी सूँड को धुनता हुआ जोर से भागता। इसको ऐसा लगता था जैसे खूँटे पर बाँध कर साधा जा रहा हो। शरीर-सुख वा मानसिकसुख एक भी नहीं मिलता था। काँपता हुआ भटकता था। वृक्ष-देवता ने यह देखकर वृक्ष-की शाखा पर खडे होकर यह गाथा कही—

> बहुम्पेतं वने कट्ठं वातो भञ्जति दुब्बलं,
> तस्स चे भायसि नाग! किसो नून भविस्ससि॥

[जगल में हवा से बहुत सारी दुर्बल लकडी टूटकर गिरती है । हे नाग ! यदि तू इससे डरेगा, तो तू निश्चय से कमज़ोर हो जायगा ।]

एतं दुब्बलं यट्ठ, पुरवा आदि वातो भञ्जति, यह इस जगल मे बहुत सुलभ है, जहाँ तहाँ है, यदि तू उससे भायसि, तो ऐसा होने पर तो नित्य ही भयभीत रहने के कारण रक्त-मास क्षीण होकर किसो नून भविस्ससि; इस वन में तेरे भयभीत होने की वात है ही नहीं, इस लिये अब से मत डर।

इस प्रकार देवता ने उसे उपदेश दिया। वह भी उस समय से लेकर निर्भीत हो गया। शास्ता ने इस धर्मोपदेश को ला, चारो आर्य-(सत्यो) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्य प्रकाशित होने पर वह भिक्षु श्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय हाथी तो यह भिक्षु था, वृक्ष-देवता मैं ही था।

१०६. उदञ्चनि जातक

"सुख वत मं जीवन्त" आदि शास्ता ने जेतवन मे रहते समय 'प्रौढ कुमारी के साथ आसक्ति' के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

मूल कथा (=वस्तु) तेरहवें परिच्छेद की चूल नारद काश्यप[1] जातक में आयेगी। उस भिक्षु से शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच आसक्त है?"

---

[1] चूलनारदजातक (४४७)

"भगवान् ! सचमुच ।"

"तुझे किसमें आसक्ति हुई ?"

"एक प्रौढ कुमारी में।"

"भिक्षु ! यह तेरे लिये अनर्थकारी है। पहले जन्म में भी तू इसी के कारण सदाचार भ्रष्ट हो कांपता हुआ भटकता था। (फिर) पंडितो के कारण सुख को प्राप्त हुआ।" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आदि *पूर्व समय की कथा भी चुल्ल नारद कस्सप जातक में ही आयेगी।* उस समय बोधिसत्व शाम को फल फूल ले आकर पर्ण-शाला में प्रवेश करके विचरने लगे और अपने पुत्र चुल्लतापस को कहा—

"तात ! और दिन तो तुम लकडी लाते थे, पेय तथा खाद्य-सामग्री लाते थे, आग जलाते थे। आज क्या कारण है कि कोई भी काम न करके बुरा मुँह बनाये चिन्तित पडे हो ?"

"तात ! आप जब कल फूल लेने चले गये थे, तब एक स्त्री आई जो मुझे लुभाकर ले जाना चाहती थी। लेकिन मैं 'आपसे आज्ञा लेकर जाऊँगा' सोच नही गया। उसको अमुक स्थान मे बिठाकर आया हूँ। तात ! अब मैं जाता हूँ।"

बोधिसत्व ने 'यह रोका नही जा सकता' सोच "तो तात ! जाओ ! यह तुम्हे ले जाकर जब मत्स्य-मास आदि खाने की इच्छा करेगी और घी, निमक तथा तेल आदि माँगेगी और कहगी कि 'यह ला', 'यह ला', तब तू मुझे याद करना और भागकर यही आ जाना" कह चलता किया। वह उसके साथ बस्ती में गया। उसे अपने वश में कर वह 'मास ला', 'मछली ला' जो जो चाहती, मँगाती। तब उसने 'यह तो मुझे अपने गुलाम की तरह नौकर की तरह पीडा देती है' सोच भागकर पिता के पास आ, उन्हें प्रणाम कर, खडे ही खडे यह गाथा कही—

सुख वत म जीवन्त पचमाना उदञ्चनी,
चोरी जायप्पवादेन तेल लोणञ्च याचति ॥

[जल निकालने की मटकी सदृशा "भार्य्या" रूप मे यह चौरिणी, सुख पूर्वक रहते हुए मुझे मीठे शब्दो से लुभाकर नून तेल माँग माँगकर जलाती है।]

सुख वत म जीवन्त, तात ! तुम्हारे पास सुखपूर्वक रहते हुए, **पचमाना,** सतप्त करती हुई, पीडा देती हुई, जो जो खाना चाहती वह पकाती, उदक (=पानी) खीचा जाता है इस से, अत उदञ्चनी। चाटी या कुएँ से पानी निकालने की घटी। उसे उदञ्चनी इसलिये कहा क्योकि वह घटी (= घटिका) के पानी निकालने की तरह जो जो चाहती सो अवश्य निकालती। **चोरी जायप्पवादेन;** "नाम से तो 'भार्य्या' लेकिन एक चौरिणी मीठे मीठे शब्दो से मुझे लुभा वहाँ ले जाकर निमक तेल तथा और भी जो जो चाहती वह सब माँगती, जैसे दास या नौकर से वैसे मँगवाती। (यह) कह उसकी निन्दा की।

बोधिसत्व ने उसे आश्वासन देकर "तात ! जो हुआ सो हुआ। आ अब तू मैत्री भावना कर। करुणा भावना कर।" वह चारो ब्रह्मविहारो को कहा। योगक्रिया कही। वह थोडे ही समय मे अभिञ्ञा तथा समापत्तियो को प्राप्त कर, ब्रह्मविहारो की भावना कर, अपने पिता सहित ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के प्रकाशित होने पर वह भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की प्रौढ कुमारी ही आजकल की प्रौढकुमारी तथा चूलतापस ही आसक्त भिक्षु था। पिता तो मैं था ही।

१०७. सालित्त जातक

"साधु खो सिप्पक नाम" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक हंस-मार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र सालित्तक शिल्प में पारङ्गत था। सालित्तक शिल्प कहते हैं ठीकरी चलाने के हुनर को। एक दिन उसने धर्मोपदेश सुन, बुद्ध (-शासन) में श्रद्धायुक्त हो प्रव्रजित होकर उपसम्पदा प्राप्त की। लेकिन न उसे शिक्षा की इच्छा थी न उसके अनुसार आचरण करने की। एक दिन वह एक छोटे भिक्षु को साथ ले अचिरवती (नदी) पर गया। वहाँ स्नान करके खड़ा था कि, उसी समय आकाश में दो सफेद हंसों को उड़ते देखा। उसने छोटे भिक्षु से कहा—

"इनमें जो पिछला हंस है, उसकी आँख को कंकर से बींधकर हंस को अपने पैरों में गिराता हूँ।"

"कैसे गिरायेगा? मार ही न सकेगा।"

"इधर की आँख रहे। मैं इसकी उधर की आँख में मारूँगा।"

"असम्भव बात कहते हो?"

"तो देख" कह उसने एक तीखी ठीकरी ले उँगली से तान उस हंस के पीछे फेंकी। ठीकरी ने रूँ करके आवाज की। हंस "खतरा होगा" सोच, रुककर शब्द सुनने लगा। उसने उसी समय एक गोल कंकर ले, रुककर देखते हुए हंस के दूसरी ओर की आँख में मारा। कंकर दूसरी ओर की आँख बींधता गया। हंस चिल्लाता हुआ पैरों में आकर गिरा।

भिक्षुओं ने इधर उधर से आकर उसकी निन्दा की कि "तू ने नामुनासिब किया" और शास्ता के पास लेजाकर कह दिया कि 'इसने यह यह किया।'

शास्ता ने उसकी निन्दा करते हुए "भिक्षुओ ! न केवल अभी यह इस हुनर में हुशियार है, बल्कि पहले भी हुशियार ही था" कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके ग्रामात्य (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा का तत्कालीन पुरोहित बडा बुलक्कड था—बोलना ग्रारम्भ करता तो किसी दूसरे को बोलने का मौका ही न मिलता। राजा सोचने लगा—'इसका मुँह बन्द करनेवाला कोई कब मिलेगा ?" और तब से ऐसे ग्रादमी की खोज मे रहने लगा।

उन दिनो बाराणसी में एक कुबडा ककर फेंकने के हुनर मे पारगत था। गाँव के लडके वाले उसे ठेले (रथक) पर चढा खींच कर, बाराणसी नगर के दरवाजे पर शाखाग्रो से युक्त एक माहन्न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे ले ग्राते, ग्रौर उसे घेर कर तथा कौडी ग्रादि दे कहते "हाथी की शकल बनाग्रो। घोडे की शकल बनाग्रो।" वह ककर चला चलाकर न्यग्रोध के पत्तो में भिन्न भिन्न तरह की शकलें बनाता। सभी पत्तो में छेद हो गये।

बाराणसी नरेश सैर को जाते समय उस जगह ग्राये। भगा दिये जाने के भय से लडके वाले भाग गये। कुबडा वहीं पड रहा। राजा ने न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रथ पर बैठे ही बैठे, छिद्रित पत्तो के कारण धूप-छनी छाया देख, सभी पत्तो को छिद्रित पा पूछा—ऐसा किसने किया ?"

"देव ! कुबडे ने।"

'यह ब्राह्मण का मुँह बन्द कर सकेगा' सोच राजा ने पूछा—"कुबडा कहाँ है ?"

खोज करनेवालो ने कुबडे को वृक्ष की जड में पडे देख कहा "देव ! यहाँ है।"

राजा ने उसे बुलवा, लोगों को दूर हटवा, उस से पूछा—"हमारे यहाँ एक बुलक्कड ब्राह्मण है, क्या तू उसे निश्शब्द कर सकेगा ?"

"देव ! यदि नलकी भर बकरी के मेंगन मिले तो कर सकूँगा।"

राजा कुबडे को घर ले गया, ग्रौर कनात के भीतर बैठाया। (फिर) कनात मे एक छेद कर ब्राह्मण के बैठने का ग्रासन उस छेद की ठीक सीध में

बिछवाया। नलकी भर बकरी की सूखी मींगन कुबडे के पास रखवा दी। जिस समय ब्राह्मण हजूरी में आया, उसे उस आसन पर बिठा, राजा ने बात चीत चलाई। किसी दूसरे को बोलने का अवसर न दे, ब्राह्मण ने राजा से बोलना शुरू किया। कनात के छेद में से मक्खी डालने की तरह वह कुबडा एक एक मींगन ब्राह्मण के तालु के अन्दर गिराता रहा। नलिका में तेल डालने की तरह ब्राह्मण जो जो मींगनें आती उन्हें निगल जाता। सब खतम हो गईं। उसके पेट में गई नलकी भर बकरी की मींगनें आधे आळ्हक[1] भर थी। राजा ने उन्हें खतम हुआ जान कहा—"आचार्य! अति बुलक्कड होने के कारण आपको नलकी भर बकरी की मींगनें निगल जाने पर भी पता नहीं लगा। अब इससे अधिक हजम न कर सकोगे। जाओ कगनी का पानी पीकर इन्हें निकाल अपने को स्वस्थ करो।"

उस दिन से मानो ब्राह्मण का मुख सिल गया। बातचीत करनेवाले के साथ भी बातचीत न करता। 'इसने मुझे कर्ण-सुख दिया है' सोच राजा ने कुबडे को चारों दिशा में लाख की आमदनी के चार गाँव दिये। बोधिसत्त्व ने राजा के पास जा 'देव! बुद्धिमान् आदमी को हुनर सीखना चाहिए। कुबडे ने केवल कंकर फेंकने (की कला से) भी सम्पत्ति पैदा कर ली' कह, यह गाथा कही—

> साधु खो सिप्पक नाम अपि यादिसकीदिस,
> पस्स खञ्जप्पहारेन लद्धा गामा चतुद्दिसा॥

[जैसा कैसा भी हो, हुनर सीखना अच्छा है। देखो! कुबडे ने (मींगनों के) फेंकने (के हुनर) से ही चारों दिशाओं में गाँव पा लिये।]

पस्स खञ्जप्पहारेन, महाराज! देखो इस कुबडे ने बकरी की मींगन के निशाने लगाने मात्र से ही चारों दिशाओं में चार गाँव पा लिये। अन्य शिल्पों की महिमा का तो क्या ही कहना—इस प्रकार हुनर सीखने की महिमा का वर्णन किया।

---

[1] १६ पसत=एक आळ्हक।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुबडा यह भिक्षु है। राजा आनन्द है। और पण्डित मन्त्री तो मैं ही हूँ।

१०८. बाहिय जातक

"सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि. . ." को शास्ता ने वेशाली के आश्रित महावन की कूटागार शाला मे रहते समय एक लिच्छवि के सम्बन्ध से कहा।

क. वर्तमान कथा

वह लिच्छवि राजा श्रद्धाप्रसन्न था। उसने भिक्षुसघ सहित बुद्ध को अपने घर निमन्त्रित कर महादान दिया।

उसकी भार्य्या मोटी, सूजी हुई सी थी और उसको सलीके से रहने का शऊर नही था। शास्ता भोजनोपरान्त दानानुमोदन कर, विहार जा भिक्षुओ को उपदेश दे, *गन्धकुटी में* प्रविष्ट हुए। धर्मसभा मे भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—'आयुष्मानो! वह लिच्छवि-नरेश तो इतना सुन्दर है, लेकिन उसकी भार्य्या मोटी, सूजी हुई सी है तथा उसे सलीके से रहने का शऊर नही। राजा उसके साथ कैसे रहता है?" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"यह बातचीत" कहने पर शास्ता ने "भिक्षुओ! न केवल अभी, किन्तु पहले भी यह मोटे शरीरवाली स्त्री के साथ ही रहता था" कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में वाराणसी में जब ब्रह्मदत्त राज्य करता था, उस समय बोधिसत्व उसके आमात्य थे। मुफस्सल की एक स्थूल शरीर स्त्री जिसे

सलीका नहीं था, मजदूरी करती थी। राजाङ्गन से थोड़ी दूर पर जाते हुए उसे शौच की हाजत हुई। जो वस्त्र पहने हुए थी, उसी से शरीर को ढक कर बैठ गई और हाजत रफा कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। झरोखे से राजाङ्गण देखते हुए वाराणसी राजा की उस पर नजर पड़ी। वह सोचने लगा—"इस प्रकार के (खुले) आङ्गन में बिना लज्जा को छोड़े वस्त्र से ढके ही ढके, शौच फिरकर यह जल्दी से खड़ी हो गई। यह निरोग होगी। इसकी कोख अति परिशुद्ध होगी। परिशुद्ध-कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र भी अति पवित्र तथा पुण्यवान् होगा। मुझे चाहिए कि मैं इसे अपनी पटरानी बनाऊँ।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने सीखनेयोग्य शिल्पो (के सीखने) का माहात्म्य कहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-प नी ही अब के पति-पत्नी। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१०६. कुण्डकपूव जातक

"*यथन्नो पुरिसो होति*" यह शास्ता ने श्रावस्ती में रहते समय, एक महा दरिद्र (मनुष्य) के सम्बन्ध से कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती म कभी एक ही परिवार बुद्ध तथा उनके सघ को दान देता, कभी तीन चार परिवार एक मे मिलकर, कभी एक गण, कभी एक गली के लोग, कभी सारे नगर के लोग मिलकर। उस समय एक गली के लोग मिलकर दान दे रहे थे। मनुष्य बुद्ध तथा सघ को यवागु परोसकर कहने लगे "खाजा लाम्रो।"

उस गली में रहनेवाले, दूसरो की मजदूरी करके जीनेवाल, एक दरिद्र मनुष्य ने सोचा—"मै यवागु नही दे सकता। खाजा दूंगा।" (यह सोच) उसने चावल की बहुत बारीक कनखी ले, छाज से फटक कर पानी से भिगो, आक के पत्तो में रख, आग मे पकाया। फिर 'यह बुद्ध को दूंगा' सोच उसे ले जाकर शास्ता के सामने खडा हुआ। (लोगो ने) 'खाजा लाम्रो' पहली बार कहा ही था कि उसने सबसे पहले जाकर शास्ता के सामने वह पूडा रख दिया। शास्ता ने, औरों के दिये हुए खाजों को अस्वीकार कर उसी पूडे-खाजे को ग्रहण किया। उसी समय सारे नगर में एक शोर मच गया कि सम्यक् सम्बुद्ध ने उस महादरिद्र का खाना बिना घृणा के खाया।

राजा, राजा के महामन्त्री आदि, और तो और द्वारपाल तक आकर शास्ता को प्रणाम कर उस महादरिद्री से कहने लगे—"भो ! सौ लेकर, दो सौ लेकर या पाँच सौ लेकर हमारा भी हिस्सा रक्खो।" उसने 'शास्ता से पूछकर जानूँगा' सोच शास्ता के पास जाकर वह बात कही। शास्ता ने उत्तर दिया "धन लेकर या बिना लिये जैसे भी हो सब प्राणियो को हिस्सेदार बनाओ। उसने धन लेना आरम्भ किया। मनुष्यो ने दुगुना, चौगुना, आठ गुना आदि दे देकर नौ करोड सोना दिया। शास्ता दानानुमोदन कर विहार चले गये। फिर भिक्षुओ के अपना अपना कर्तव्य करने पर शास्ता ने उन्हें उपदेश दे गन्धकुटी मे प्रवेश किया।

शाम को राजा ने उस महादरिद्री को बुलवाया और श्रेष्ठी बना उसका सत्कार किया। धर्म-सभा मे भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—"आयुष्मानो ! महान् दरिद्री के दिये हुए पूए, शास्ता ने बिना घृणा प्रगट किये ऐसे खाये जैसे अमृत। महान् दरिद्री भी बहुत सा धन और सेठ का पद प्राप्त कर बहुत सम्पत्तिशाली हो गया। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत" कहने पर 'भिक्षुओ ! न केवल अभी मैंने बिना घृणा दिखाये उसके पूए खाये बल्कि पहले जब मै वृक्ष-देवता था तब भी खाये थे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय म वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य के समय बोधिसत्व अरण्डी के एक वृक्ष पर वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए। उस गाँवडे के मनुष्य तब देवता-विश्वासी[1] थे। एक त्योहार आने पर उन्होने अपने अपने वृक्ष-देवताओ को बलि दी। एक दरिद्री मनुष्य ने लोगो को वृक्ष-देवताओ की सेवा करते देख स्वय एक अरण्ड-वृक्ष की सेवा की। मनुष्य अपने अपने देवताओ के लिये

---

[1] देवता मङ्गलिका, जिनका विश्वास हो कि देवताओ की पूजा करने से कल्याण होगा।

नाना प्रकार के माला, गन्ध, लेपन आदि और खाद्य-भोज्य लेकर गये। लेकिन वह ले गया चूरे के पूए और बड़ी में पानी। अरण्ड-वृक्ष के समीप पहुँचा तो सोचने लगा—"देवता दिव्य-भोजन करते हैं। मेरे देवता यह चूरे का पूआ नहीं खायेंगे। इसे व्यर्थ क्यों नष्ट करूँ? मैं ही इसे खा लूँगा।" यह सोच वहाँ से लौट पड़ा।

बोधिसत्त्व ने वृक्ष की शाखा पर खड़े होकर कहा—"भो! यदि तुम धनी होते तो मुझे मधुर खाजा देते, लेकिन तुम दरिद्र हो। मैं तुम्हारा पूआ न खाकर और क्या खाऊँगा? मेरे हिस्से को नष्ट न करो।"

इतना कह यह गाथा कही—

> यथन्नो पुरिसो होति तथन्ना तस्स देवता,
> आहरेतं कणं पूवं मा मे भागं विनासय॥

[जैसा आदमी, वैसा देवता। इस चूरे के पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट मत कर।]

यथन्नो, जैसा भोजन, तथन्ना, उस आदमी का देवता भी वैसे ही भोजन का खानेवाला होता है। आहरेत कण पूवं—इस चूरे के पके पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट न कर।

उसने वापिस लौट बोधिसत्त्व को देव बलि दी। बोधिसत्त्व ने उसमें से सार ग्रहणकर पूछा—"भले आदमी! तू किस लिये मेरी सेवा करता है?"

"स्वामी! मैं दरिद्र हूँ। चाहता हूँ कि दरिद्रता से मुक्त हो जाऊँ। इसी लिये सेवा करता हूँ।"

"भले आदमी! चिन्ता मत कर। तूने जो सेवा की है वह कृतज्ञ की, कृत-उपकार को न भूलनेवाले की की है। इस अरण्ड के चारों ओर खजाने से भरे घड़े गर्दन से गर्दन मिलाकर रक्खे हैं। तू राजा को कह, गाड़ियों में धन लदवाकर राजाङ्गण में डलवा। राजा प्रसन्न होकर तुझे श्रेष्ठी का पद दे देगा।"

यह कहकर बोधिसत्त्व अन्तर्ध्यान हो गये। उसने वैसा ही किया। राजा

ने उसे सेठ के पद पर नियुक्त किया। इस प्रकार वह बोधिसत्त्व (की कृपा) से महासम्पत्तिशाली हो स्वकर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय जो दरिद्र था, वही इस समय दरिद्र। अरण्ड-वृक्ष का देवता तो मैं ही था।

११०. सब्ब संहारक पञ्हो

"सब्ब सहारको नत्थि"—यह सब्बसहारकपञ्ह (जातक) सारी की सारी उम्मग जातक[1] में प्रगट होगी।

---

[1] महाउम्मग जातक (५४६)

पहला परिच्छेद

१२. हंसो वर्ग

१११. गद्रभ पञ्हो

"हसी त्वं मञ्ञसि" यह गद्रभपञ्ह (जातक) भी उम्मग जातक[1] में ही आयेगी।

११२. अमरादेवी पञ्ह

"येन सत्तुबिलङ्गा च" यह अमरादेवी पञ्ह (जातक) भी वहीं (उम्मग जातक[1] में) आयेगी।

११३. सिगाल जातक

"सद्दहासि सिगालस्स..."यह गाथा शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

---

[1] उम्मग जातक (५४६)

क. वर्तमान कथा

उस समय धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु बातचीत कर रहे थे—'आयुष्मानो ! देवदत्त पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर गयाशीर्ष चला गया। वहाँ जाकर उसने उन भिक्षुओं को कहा कि श्रमण गौतम जो करता है वह धर्म नहीं है बल्कि जो मैं करता हूँ वह धर्म है। इस प्रकार उन्हें अपने मत का बना, यथास्थान झूठा आचरण कर संघ में फूट डाल एवं सीमा[1] में दो उपोसथ[2] (-गृह) बना दिए।" यूं वे देवदत्त के दोष कह रहे थे। भगवान् ने आकर पूछा—"यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"यह बातचीत।"

"भिक्षुओ ! देवदत्त केवल अभी झूठ बोलनेवाला नहीं। यह पूर्व-जन्म में भी झूठ बोलनेवाला ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व श्मशान-वन में एक वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय बाराणसी में नक्षत्र की घोषणा हुई। मनुष्यों ने यक्षों को बलि देने की इच्छा से चौराहों और दूसरे रास्तों पर मत्स्य-मांस आदि बखेर कर खप्परों में शराब रक्खी।

एक गीदड़ आधी रात के समय चुपके से नगर में दाखिल हुआ। मत्स्य-मांस और शराब पीकर व पुन्नाग-वृक्ष के बीच जाकर सो रहा। सोते सोते सूर्य निकल आया। आँख खोलने पर प्रकाश हुआ देख उसने सोचा—"अब मैं नगर से निकल नहीं सकता।" इसलिए वह रास्ते के पास जाकर छिपकर लेट रहा। दूसरे मनुष्यों को आते-जाते देख वह कुछ नहीं बोला, लेकिन एक ब्राह्मण को मुँह धोने के लिये जाते देख उसने सोचा—"ब्राह्मण

---

[1] सीमित-प्रदेश।

[2] जहाँ भिक्षु एकत्र हो सांघिक-कृत्य करते हैं।

धन के लोभी होते है । मैं ऐसा उपाय करूँ कि यह ब्राह्मण मुझे अपनी चादर मे छिपा, गोद में ले जाकर नगर से बाहर कर दे ।" उसने मनुष्य-भाषा में कहा—"ब्राह्मण ।"

ब्राह्मण ने लौटकर कहा—"मुझे कौन बुला रहा है ?"

"ब्राह्मण ! मैं ।"

"किस कारण ?"

"ब्राह्मण, मेरे पास दो सौ कार्षापण है । यदि मुझे गोद मे ले चादर से ढक जिसमे कोई न देखे, इस प्रकार नगर से निकाल सके, तो मैं तुझे वह कार्षापण दे दूँगा ।"

धन के लोभ से ब्राह्मण 'अच्छा' कह स्वीकार कर, उस गीदड को वैसे ले नगर से निकल थोडा आगे गया । गीदड ने पूछा—"ब्राह्मण यह कौन सी जगह है ?"

"अमुक जगह ।"

"और भी थोडा आगे तक ले चल ।"

इस प्रकार बार बार कहकर उसे महाश्मशान तक ले जा, वहाँ पहुँचकर कहा—"मुझे यहाँ उतार दे ।" ब्राह्मण ने उसे उतार दिया ।

"अच्छा तो ब्राह्मण चादर फैला ।"

ब्राह्मण ने धन-लोभ से चादर फैला दी ।

'तो इस वृक्ष की जड में खोद' कह गीदड ब्राह्मण को जमीन खोदने में लगा, उसकी चादर पर चढ उसके चारो कोनो तथा बीच मे—पाँच जगहो पर पाखाना कर, उसे लवेड श्मशान-वन में दाखिल हो गया ।

बोधिसत्त्व ने वृक्ष की शाखा पर खडे हो यह गाथा कही—

> सद्दहासि सिगालस्स सुरापीतस्स ब्राह्मण,
> सिप्पिकानं सतं नत्थि कुतो कंससता दुवे ॥

[ब्राह्मण ! तू शराब पिए हुए गीदड का विश्वास करता है । उसके पास सौ सीपियाँ भी नहीं, दो सौ कार्षापण तो कहाँ होगे ।]

सद्दहासि या सद्दहेसि । इसका मतलब है कि विश्वास करता है ।

सिप्पिकानं सतं नत्थि—इसके पास सौ सीपियाँ भी नही हैं। **कुतो कससता दुवे** दो सौ कार्षापण तो कहाँ होगे।

बोधिसत्व यह गाथा कह 'हे ब्राह्मण ! जा अपनी चादर धोकर, स्नान करके अपना काम कर' कह अन्तर्ध्यान हो गए।

ब्राह्मण वैसा कर 'हाय ठगा गया' सोचता हुआ चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड देवदत्त था। हाँ, वृक्ष-देवता मैं ही था।

११४. मितचिन्ती जातक

"बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च" यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय दो वृद्ध स्थविरो के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उन्होने एक जनपद के जगल मे वर्षा-काल विताकर सोचा कि अब शास्ता के दर्शन के लिए जायेगे, रास्ते के लिये आवश्यक सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते करते एक मास बिता दिया। फिर दुबारा सामग्री तैयार कर 'आज जाते है, कल जाते हैं' करते करते एक मास और बिता दिया। इसी प्रकार अपने आलस्य और निवास-स्थान से मोह होने के कारण तीसरा महीना भी बिता दिया। तीन महीने गुजारकर जेतवन पहुँच, अपने योग्य-स्थान पर पाँच चीवर रख बुद्ध के दर्शनो को गए। भिक्षुओ ने पूछा—"आयुष्मानो ! आप बुद्ध की सेवा में बहुत दिन के बाद उपस्थित हुए। इतनी देर क्यो हुई ? उन्होने कारण बताया। उनका वह आलस्य तथा सुस्ती करने

का स्वभाव भिक्षुओ पर प्रगट हो गया। भिक्षुओ ने धर्म सभा मे उन स्थविरो के आलसी स्वभाव की चर्चा चलाई। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बात कर रहे थे ?" "यह बातचीत" कहने पर उन स्थविरो को बुलवाकर पूछा—

"भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच आलसी हो ?"

"भन्ते ! सचमुच।"

"भिक्षुओ ! न केवल अभी आलसी हो, पूर्वजन्म में भी आलसी ही थे और निवास-स्थान के प्रति मोह था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी नदी में तीन मच्छ थे। उनके नाम थे बहुचिन्ती, अल्प चिन्ती और मित-चिन्ती। वे जगल (की नदी) से बस्ती के पास आ गए। मितचिन्ती ने बाकी दोनो को कहा—"यह बस्ती है। यहाँ सशक्ति रहने की तथा भय-भीत रहने की जरूरत है। मछुवे लोग नाना प्रकार के मछली पकडने के जाल आदि फेंककर मछलियाँ पकडते है। हम जगल को ही चले।"

बाकी दोनो जनो ने आलस्य के कारण और लोभ के कारण 'आज चले, कल चलें' कहते हुए तीन महीने गुजार दिए। मछुओ ने नदी में जाल फेंका। बहुचिन्ती और अल्प चिन्ती खाने की चीज को ग्रहण करते हुए आगे आगे जाते थे। वे अपनी मूर्खता के कारण जाल की गन्ध का ख्याल न कर जाल में ही जा फँसे। मितचिन्ती ने पीछे आते हुए जाल की गन्ध सूँघकर समझ लिया कि वे दोनो जाल में जा फँसे। उसने सोचा—इन दोनो आलसी तथा मूर्खों को जीवन-दान दूँ। यह सोच वह बाहर की तरफ से जाल मे घुस जाल फाड कर निकलते हुए की तरह पानी को आलोडते हुए जाल के आगे गिरा। फिर पिछली तरफ से फाडकर निकलते हुए की तरह पानी को आलोडते हुए पिछली तरफ गिरा। मछुओ ने यह समझकर कि मच्छ जाल फाडकर निकल गए जाल के सिरो को खोल फेंक दिया। वे दोनो मच्छ जाल से छूटकर पानी में जा पडे। इस प्रकार मितचिन्ती ने उनके प्राण बचाए।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह बुद्ध होने पर यह गाथा कही—

बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च उभो जाले अबज्झरे,
मितचिन्ती अमोचेसि उभो तत्य समागता ॥

[बहुचिन्ती और अप्पचिन्ती दोनो जाल में फँस गए। मितचिन्ती ने दोनों को छुडा दिया। वे दोनो उसके साथ आ गए।]

बहुचिन्ती, बहुत चिन्तन करनेवाला होने से अथवा बहुत सकल्प-विकल्प वाला होने से बहुचिन्ती नाम हुआ। बाकी दोनो भी इसी प्रकार है। उभो तत्य समागता, मितचिन्ती के कारण प्राण बचाकर वे दोनो फिर पानी मे मितचिन्ती के साथ आ गए।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। (आर्य-)सत्यो की समाप्ति पर स्थविर भिक्षु श्रोतापन्न हुए।

उस समय के बहुचिन्ती और अल्प-चिन्ती यह दोनो थे, मितचिन्ती तो मैं ही था।

११५. अनुसासिक जातक

"यायञ्चमनुसासति ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उपदेश देनेवाली भिक्षुणी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह श्रावस्ती-निवासिनी एक कुल में उत्पन्न हुई थी। जिस समय से प्रव्रजित होकर उपसम्पन्न हुई, उस समय से लेकर वह श्रमण-धर्म मे न लग

चीजो की लोभी होने से नगर के एक ऐसे हिस्से मे जहाँ दूसरी भिक्षुणियाँ नही जाती थी, भिक्षा माँगने जाती। मनुष्य उसे बढिया भोजन देते। उसने रस तृष्णा के कारण सोचा, यदि दूसरी भिक्षुणियाँ भी उसी ओर भिक्षा माँगने जाएँगी, तो मेरी प्राप्ति मे फरक पडेगा। इस लिए मुझे ऐसा करना चाहिए, जिसमे दूसरी भिक्षुणियाँ उधर भिक्षा माँगने न जाएँ।

वह भिक्षुणियो के निवास-स्थान पर गई और बोली—बहनो! अमुक जगह पर चण्ड-हाथी है, चण्ड-घोडा है, चण्ड-कुत्ता है। वह खतरनाक जगह है। वहाँ पिण्ड-पात के लिए मत जाएँ। उसकी बात सुन एक भिक्षुणी ने भी उधर गर्दन निकालकर नही देखा।

उसके एक दिन उधर भिक्षा माँगने के समय, जब वह जल्दी से एक घर मे घुसने जा रही थी एक मरखने मेंढे ने उसे टक्कर मारकर उसकी जाँघ की हड्डी तोड दी। मनुष्यो ने दौडकर उस दो टुकडे हुए जाँघ की हड्डी को एक में बाँधा और उसे चारपाई पर लिटाकर भिक्षुणी आश्रम लाए। 'यह दूसरी भिक्षुणियो को उपदेश देती थी, स्वय उधर जाकर जाँघ की हड्डी तुडाकर आई है' कह भिक्षुणियो ने हँसी उडाई। यह बात शीघ्र ही भिक्षु-सघ तक पहुँच गई।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु उसकी निन्दा कर रहे थे—आयुष्मानो! दूसरो को उपदेश देनेवाली भिक्षुणी स्वय उधर जाकर मरखने मेंढे से जाँघ की हड्डी तुडा लाई है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो?' 'यह बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, केवल अब ही नही, पहले भी यह दूसरो को तो उपदेश देती रही है, लेकिन स्वय तदनुसार आचरण न करने के कारण दुख भोगती रही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जगल मे पक्षी की योनि म जन्म ग्रहण कर बडे होने पर सैकडो पक्षियो को ले हिमालय को गए। उनके वहाँ रहते समय चण्ड-स्वभाव की एक चिडिया राज-मार्ग में जाकर पडी रहती, वहाँ उसे गाडियो पर से गिरे हुए धान, मूँग आदि के दाने मिलते। उन्हे पाकर वह सोचती कि अब ऐसा उपाय करूँ जिससे

दूसरे पक्षी इधर न आयें। वह पक्षियो को उपदेश देती—राज-मार्ग बडा खतरनाक है। हाथी, घोडे और मरकहे बैलोवाली गाड़ियाँ आती जाती है। शीघ्रता से उडा भी नही जा सकता। वहाँ नही जाना चाहिए। पक्षियो ने उसका नाम अनुशासिका रख दिया।

एक दिन वह राजपथ पर चुग रही थी। जोर से आती हुई गाडी के शब्द को सुन उसने पीछे मुँह कर देखा। 'अभी दूर है' सोच, चुगती ही रही। हवा के जोर से गाडी शीघ्र ही आ पहुँची। वह उड न सकी। पहिये से उसके दो टुकडे हो गए।

बोधिसत्त्व ने पक्षियो के लौटने पर उनकी गिनती करते समय उसे न देख कर कहा—अनुशासिका दिखाई नही देती, उसे खोजो। पक्षियो ने खोज करते हुए, उसे राजपथ पर दो टुकडे हो पडे देखा। बोधिसत्त्व से आकर निवेदन किया। 'वह दूसरो को जाने से रोकती थी लेकिन स्वय वहाँ चुगने जाकर दो टुकडे हुई' कह यह गाथा कही—

> **यायञ्ञमनुसासति सय लोलुप्पचारिणी,**
> **साय विपक्खिका सेति हता चक्केन साळिका ॥**

[जो दूसरो को उपदेश देती थी लेकिन स्वय थी लोभी, वह यह चिडिया पहिये के नीचे आकर पख-रहित होकर मरी पडी है।]

यायञ्ञमनुसासतीति, इसमे 'य' केवल दो पदो की सन्धि के कारण है। अर्थ है, जो दूसरो को उपदेश देती है। **सय लोलुप्पचारिणी**, अपने लोभी स्वभाव वाली। **साय विपक्खिका सेति**, वह पखरहित होकर राजपथ पर पडी है। **हता चक्केन साळिका**, गाडी के पहिये से मारी गई चिडिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय उपदेश देनेवाली चिडिया यह उपदेश देनेवाली भिक्षुणी ही थी। ज्येष्ठ-पक्षी तो मैं ही था।

११६. दुब्बच जातक

"अतिक्रमकराचरिय" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न माननेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह कथा नवें निपात मे गिज्झ जातक[1] मे आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को बुला, 'भिक्षु, तू केवल अभी बात न माननेवाला नही है, बल्कि पहले भी तूने पण्डितो का कहना न करके शक्ति के आघात से जान गँवाई' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने लघटन[2] के घर में जन्म लिया। बडे होने पर वह बुद्धिमान तथा व्यवहार-कुशल हुआ। वह एक नट से शक्ति लाँघने की कला सीखकर आचार्य के साथ हुनर दिखाते हुए घूमता था। बोधिसत्त्व का उस्ताद चार ही शक्तियाँ के लाँघने का हुनर जानता था, पाँच के लाँघने का नही।

एक दिन उसने एक गामडे में तमाशा दिखाते समय शराब के नशे में मस्त होकर, 'पाँच शक्तियो को लाँघूंगा' कह उन्हें क्रम से रखा। बोधिसत्त्व ने कहा—आचार्य, आप पाँच शक्तियो को लाँघने का हुनर नही जानते; इसलिए एक शक्ति को हटा दें। यदि पाँचो को लाघेंगे तो पाँचवी शक्ति से बिंधकर मरेंगे।

---

[1] गिज्झ जातक—नौवें निपात की पहली जातक।

[2] लघनट=बाजीगर।

आचार्य उस समय बिलकुल मदहोश था। इसलिए उसने कहा—तू मेरी सामर्थ्य को नही जानता। इस प्रकार बोधिसत्व के उपदेश का अनादर कर, चार शक्तियो को लाँघ पाँचवी को लाँघते समय डण्ठल से महुए के फूल के गिरने की तरह, चीखता हुआ गिरा। उसे देख बोधिसत्व ने कहा—यह पण्डितो का कहना न कर इस आपत्ति में पडा। इसके बाद यह गाथा कही—

अतिकरमकराचरिय ! मय्हम्पेत न रुच्चति,
चतुत्थे लंघयित्वान पचमियस्मि[1] आवुतो ।।

[आचार्य, आज तुमने अति कर दी। मुझ तक को यह अच्छा नही लगा। चारो लाँघकर पाँचवी में गिर पडे।]

अतिकरमकराचरिय, आचार्य, आज तुमने अति कर दी। अर्थात् अपनी शक्ति से बाहर काम किया। **मय्हम्पेत न रुच्चति,** मुझ आपके शिष्य तक को यह अच्छा नही लगा। इसीलिए मैंने पहले कह दिया था। **चतुत्थे लघयित्वान,** चौथे शक्ति-फलक पर बिना गिरे लाँघकर, **पचमियस्मि आवुतो,** पण्डितो की बात न मानकर पाँचवी शक्ति पर गिर पडे।

इतना कह आचार्य को शक्ति पर से उठा, जो करना उचित था, किया।

शास्ता ने इस पूर्व-जन्म की कथा को ला जातक का मेल बैठाया—उस समय का आचार्य, यह बात न माननेवाला भिक्षु था, शिष्य तो मैं ही था।

---

[1] 'पञ्चमायसि' भी पाठ है।

११७. तित्तिर जातक (२)

"अच्चुग्गता अतिबलता ..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोकालिक[1] के बारे मे कही थी।

क. वर्तमान कथा

उसकी वर्तमान कथा तेरहवे निपात की तक्कारिय जातक[2] मे प्रगट होगी। शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण नष्ट हुआ है, पहले भी नष्ट हुआ है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने उदीच्य ब्राह्मण कुल मे जन्म ग्रहण कर बडे होने पर तक्षशिला जा सब विद्याएँ सीखीं। फिर काम-भोग के जीवन को छोड ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्तियो को प्राप्त किया। हिमवन्त प्रदेश के सभी ऋषियो ने उन्हे अपना उपदेशक आचार्य बनाया और उनके आस-पास रहने लगे। वे भी पाँच सौ ऋषियो के उपदेशक-आचार्य बन ध्यान मग्न हो हिमवन्त मे रहते थे।

उस समय पाण्डु रोग से पीडित एक तपस्वी कुल्हाडी लेकर लकडियाँ फाड रहा था। उसके पास बैठे एक वाचाल तपस्वी ने 'यहाँ पर मारें, यहाँ पर मारें' बार बार कहकर उस तपस्वी को क्रोधित कर दिया। उसने क्रोध

---

[1] कोकालिक देवदत्त के पक्ष का एक संघ-भेदक था।

[2] तक्कारिय जातक (४८१)

में आकर कहा, 'तू मुझे अब लकडी चीरना सिखाना चाहता है', और अपनी तेज कुल्हाड़ी उठा उसे एक ही प्रहार से मार डाला।

बोधिसत्व ने उसका शरीर-कृत्य किया।

उसी समय आश्रम से कुछ ही दूर वल्मीक पर एक तित्तिर रहता था। वह सुबह शाम वल्मी के ऊपर खडा हो बडे जोर से आवाज लगाता। उसे सुन एक शिकारी ने सोचा कि तित्तिर होगा और शब्द के पीछे पीछे जा, उसे मार कर ले गया।

बोधिसत्व ने उसकी आवाज न सुनाई देती देख तपस्वियो से पूछा—उस जगह एक तित्तिर रहता था। उसकी आवाज नही सुनाई देती? उन्होने बोधिसत्व को सब हाल कहा। बोधिसत्व ने ऊपर की दोनो बातो को मिला ऋषियो के सामने यह गाथा कही—

> अच्चुग्गता अतिबलता अतिवेलं पभासिता,
> वाचा हनति दुम्मेधं तित्तिरं वातिवस्सितं ॥

[अति-ऊँची, अति जोर से अत्यधिक देर तक बोली गई वाणी मूर्ख आदमी को वैसे ही मार डालती है जैसे जोर से चिल्लाने से तित्तिर मारा गया।]

अच्चुग्गता, अति उद्गता। अतिबलता, बार बार बोलने से बहुत बलशाली हो गई। अतिवेलं पभासिता उचित से बहुत ज्यादा देर तक भाषित। तित्तिरं वातिवस्सितं, जैसे बहुत बोलने से तित्तिर मारा गया, वैसे ही इस प्रकार की वाणी मूर्ख आदमी को मार गिराती है।

इस प्रकार बोधिसत्व ऋषियो को उपदेश दे चारो ब्रह्म-विहारो की भावना कर ब्रह्म-लोक गामी हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिय अपनी वाणी के कारण विनष्ट हुआ, किन्तु पहले भी नष्ट हुआ' कहा, और यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय दुर्वचन बोलनेवाला तपस्वी कोकालिक हुआ। ऋषिगण बुद्ध-परिषद। और ऋषि-गण का शास्ता तो मैं था ही।

११८. वट्टक जातक (२)

"नाचिन्तयन्तो पुरिसो...."यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उत्तर नाम के श्रेष्ठि के पुत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में उत्तर श्रेष्ठि महाधनवान था। उसकी भार्य्या की कोख में एक बालक पैदा हुआ। वह पुण्यवान् था, ब्रह्मलोक से च्युत होकर यहाँ जन्म ग्रहण किया था। बड़ा होने पर वह ब्रह्मा की तरह सुन्दर वर्ण का हुआ।

एक दिन श्रावस्ती में कार्तिक महोत्सव की घोषणा होने पर सभी लोग उत्सव मनाने मे मस्त थे। उस तरुण के मित्रो—सभी दूसरे श्रेष्ठि-पुत्रो की पत्नियाँ थी। उत्तर श्रेष्ठि पुत्र बहुत समय तक ब्रह्मलोक में रहा था, इसलिए उसकी कामभोग में आसक्ति न थी।

उसके मित्रो ने सोचा कि उत्तर श्रेष्ठि पुत्र के लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएगे। वे उसके पास जाकर बोले "सौम्य! इस नगर मे कार्तिक रात्रि का उत्सव घोषित हुआ है। तुम्हारे लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएँ?"

'मुझे स्त्री की आवश्यकता नहीं है' कहने पर भी बार बार आग्रह करके स्वीकार करवा लिया। तब एक वेश्या को सब अलकारो से सजा, उसके घर ले जाकर उसे श्रेष्ठिपुत्र का सोने का कमरा दिखाकर कहा कि तू श्रेष्ठिपुत्र के पास जा। उसे कमरा दिखा वे स्वय चले गए।

उसके शयनागार मे प्रविष्ट होने पर भी श्रेष्ठिपुत्र ने न उसकी ओर देखा, न बातचीत की। उसने सोचा यह मेरे जैसी सुन्दर उत्तम विलास-युक्त स्त्री की ओर न देखता है, न बातचीत करता है। इसे अब स्त्री-लीला से देखने पर मजबूर करूँगी। तब वह स्त्री-लीला दिखाते हुए प्रसन्न-मुख की भाँति

आगे के दाँत निकालकर मुस्कराई। श्रेष्ठिपुत्र ने देखा, तो दाँतो की हड्डियाँ उसके लिए ध्यान का विषय हो गई। उसमें अस्थि-संज्ञा पैदा हुई। उसे वह सारा शरीर हड्डियों के पञ्जर की तरह मालूम देने लगा। उसकी मजदूरी दे, उसने कहा 'जाओ'।

उसके घर से निकलने पर बीच-बाजार में खड़ा देख एक ऐश्वर्यशाली आदमी उसे खर्चा दे अपने घर ले गया। सप्ताह बीतने पर उत्सव समाप्त हुआ। वेश्या की माता ने जब देखा कि लडकी नही आई तो वह श्रेष्ठिपुत्रो के पास गई और पूछा कि वह कहाँ है ? उन्होने उत्तर श्रेष्ठिपुत्र के यहाँ जाकर पूछा कि वह कहाँ है। उसने कहा "उसी समय खर्चा देकर विदा कर दिया।" उसकी माँ रोने लगी। 'मैं अपनी लडकी को नही देखती। मेरी लडकी लाओ' कहते हुए वह उत्तर-श्रेष्ठि-पुत्र को ले राजा के पास गई।

राजा ने मुकद्दमे का फैसला करते हुए पूछा—

"इन श्रेष्ठिपुत्रो ने तुझे वेश्या लाकर दी ?"

"देव ! हाँ।"

"अब वह कहाँ है ?"

"नही जानता हूँ। उसी समय उसे विदा कर दिया था।"

"अब उसे लिवा आ सकता है ?"

"देव ! नही सकता हूँ।"

"यदि नही ला सकता है, तो इसे राज-दण्ड दो।"

उसके हाथ पीछे की तरफ बाँध राज-दण्ड देने के लिए उसे पकडकर ले गए। वेश्या को न ला सकने के कारण राजा श्रेष्ठिपुत्र को राज-दण्ड दे रहा है, सुन सारे नगर मे हल्ला मच गया। लोग छाती पर हाथ रखकर 'स्वामी ! यह क्या आपके योग्य है ?' कहते हुए रोने लगे। सेठ भी रोता पीटता पुत्र के पीछे पीछे जा रहा था। श्रेष्ठिपुत्र सोचने लगा, 'यह जो मुझे इस प्रकार का दु ख हुआ, यह घर में रहने के ही कारण हुआ, यदि मै इससे मुक्त हुआ तो गौतम सम्यक सम्बुद्ध के पास प्रव्रजित होऊँगा।'

वेश्या ने हल्ला सुना तो पूछा यह क्या हल्ला है ? समाचार मालूम होने पर वह जल्दी से उतर "स्वामी ! हटे हटें" मुझे राज पुरुषो को देखने दें कहती हुई राज-पुरुषो के पास पहुँची। राज-पुरुषो ने उसे देख माता को सौंपा

और श्रेष्ठिपुत्र को मुक्त कर चले गए।

श्रेष्ठिपुत्र मित्रो सहित नदी पर गया। वहाँ सिर से स्नान कर, घर जा, प्रातराश कर, माता पिता को प्रव्रज्या की बात जना, चीवर-वस्त्र ले बडी भारी मण्डली के साथ बुद्ध के पास जा प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर वह योगाभ्यास में लग विपश्यना की वृद्धि कर थोडी ही देर मे अर्हत्व मे प्रतिष्ठित हुआ।

एक दिन धर्म-सभा मे इकट्ठे हुए भिक्षु श्रेष्ठिपुत्र की प्रशसा कर रहे थे—"आयुष्मानो! श्रेष्ठिपुत्र अपने पर आई आपत्ति देख बुद्ध-शासन की महिमा जान 'इस दुःख से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच, उस सुचिन्तन के फलस्वरूप मुक्त हो, प्रव्रजित हो अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?'

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ! केवल श्रेष्ठिपुत्र ही अपने पर आपत्ति पडने पर इस उपाय से इस दुःख से मुक्त होऊँगा" सोच मृत्यु भय से मुक्त नहीं हुआ, पूर्व समय में बुद्धिमान लोग भी अपने पर आपत्ति पडने पर 'इस उपाय से इस दुःख से मुक्त होंगे' सोच मृत्यु-भय के दुःख से मुक्त हुए। (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय जन्म मरण के चक्कर में पडे हुए बोधिसत्व एक बार वटेरे के जन्म मे पैदा हुए।

उस समय बटेरो का एक शिकारी जगल से बहुत से बटेर पकड ले जाकर, घर में रख उन्हें दाना खिला, खरीदारो से मूल्य ले उनके हाथ बेच अपनी जीविका चलाता था। वह एक दिन बहुत से बटेरो के साथ बोधिसत्व को भी पकड लाया। बोधिसत्व ने सोचा—यदि मैं इसका दिया हुआ चोगा खाऊँगा पीऊँगा तो यह मुझे आये हुए मनुष्यो के हाथ बेच देगा। यदि नहीं खाऊँगा तो मैं कुम्हला जाऊँगा। मुझे कुम्हलाया हुआ देख कर मनुष्य नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार मेरा कल्याण होगा। मैं यही उपाय करूँगा।

उसने वैसा ही किया, जिससे वह सूखकर केवल हड्डी और चमडी मात्र

रह गया। मनुष्य उसे देखकर नहीं खरीदते थे। बोधिसत्त्व को छोड़ शेष बटेरों के समाप्त हो जाने पर, चिड़ीमार पिंजरे को ला दरवाजे पर रख (उसमें से) बोधिसत्त्व को हाथ पर ले देखने लगा कि इस बटेर को क्या हुआ? उसे असावधान देख बोधिसत्त्व ने पंख फैलाए और उड़कर जंगल जा पहुँचा।

बटेरों ने बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—"पता नहीं रहा कि कहाँ गए थे?"

"मुझे चिड़ीमार ने पकड़ लिया था।" "कैसे मुक्त हुए?" पूछने पर बोधिसत्त्व ने कहा मैंने उसका दिया हुआ दाना-पानी नहीं ग्रहण किया, और मुक्त होने का तरीका सोचकर छूट गया। (इतना कह) यह गाथा कही—

नाचिन्तयन्तो पुरिसो विसेसमधिगच्छति,
चिन्तितस्स फलं पस्स मुत्तोस्मि वधबन्धना॥

[जो आदमी विचार नहीं करता, वह विशेष (=मोक्ष) को प्राप्त नहीं होता। विचार करने के फल को देखो मैं मरण-बन्धन से मुक्त हो गया।]

सारांश यह है। **पुरिसो**, दुःख में पड़कर मैं इस उपाय से मुक्त होऊँगा, इस प्रकार न विचार करनेवाला अपने दुःख से मुक्ति स्वरूप **विसेस नाधिगच्छति**। अब मैंने जो विचार से काम लिया, उसके फल को देखो। उसी उपाय से मैं **मुत्तोस्मि वधबन्धना**, मैं मरण से तथा बन्धन से मुक्त हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने अपनी कृति का बखान किया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मरने से मुक्त हुआ बटेर मैं ही था।

११९. अकालरावी जातक

"अमातापितरि संवद्धो" यह धर्मदेशना शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक असमय शोर करनेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस श्रावस्ती-निवासी तरुण ने (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो न कर्तव्य सीखे न शिक्षा ग्रहण की। वह नहीं जानता था कि इस समय मुझे (झाड़ू लगाना आदि) काम करने चाहिए, इस समय मुझे सेवा के काम करने चाहिए: इस समय पाठ करना चाहिए। पहले याम में भी, बीच के याम में भी और पिछले याम में भी जब जब आँख खुलती, वह शोर करता था। भिक्षुओं को नींद न आती। धर्मसभा में एकत्र हुए भिक्षु उसकी निन्दा करते— "आयुष्मानो! वह भिक्षु इस प्रकार के रतन[1] शासन में प्रव्रजित हो कर भी, न कर्तव्य जानता है, न शिक्षा जानता है, न समय जानता है और न असमय जानता है।"

शास्ता ने आकर पूछा "भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर कहा—"भिक्षुओ! यह केवल अभी असमय शोर मचाने वाला नहीं है, पहले भी असमय हल्ला करनेवाला ही रहा है। समय असमय न जानने के कारण ही इसकी गरदन मरोड़ी जाकर यह मृत्यु को प्राप्त हुआ।"

इतना कह पूर्व जन्म की बात कही—

---

[1] बुद्ध, धर्म तथा संघ तीन रत्न है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण कर समाने होने पर, सब शिल्पो में पारङ्गत हो, चारो दिशाओ में प्रसिद्ध आचार्य बन पाँच सौ शिष्यों को शिल्प सँचवाते (सिखाते) थे। उन शिष्यो के पास समय पर बोलनेवाला एक मुर्गा था। वे उसके बाँग देने पर उठकर शिल्प सीखते थे। वह मर गया। तब वह कोई दूसरा मुर्गा ढूँढते फिरते थे। एक शिष्य ने श्मशान वन में लकडी इकट्ठी करते समय एक मुर्गे को देख, उसे लाकर पिंजरे में बन्द कर, पाला। वह श्मशान में बडा हुआ होने से यह न जानता था कि किस समय बोलना चाहिए। कभी आधी रात को बोलता कभी अरुण उदय होने पर। शिष्य उसके बहुत रात रहते बोलने पर उसी समय शिल्प सीखना आरम्भ करने के कारण अरुणोदय तक न सीख सकते थे। नीद के मारे सीखा हुआ भी भूल जाते। बहुत प्रभात होने पर बोलने के समय पाठ करने का अवकाश ही न रहता।

शिष्यो ने सोचा, यह या तो बहुत रात रहने पर बोलता है, या बहुत दिन चढने पर। इस (की मदद) से हमारा शिल्प (सीखना) समाप्त न होगा। यह सोच उसकी गर्दन मरोड उसे मार डाला। फिर आचार्य के पास जाकर कहा कि हमने असमय शोर मचानेवाले मुर्गे को मार डाला।

आचार्य्य ने कहा कि वह अशिक्षित ही वृद्धि को प्राप्त हुआ था। इसी से मरा। इतना कह यह गाथा कही—

> अमातापितरि सवद्धो अनाचरियकुले वस,
> नायं काल अकाल वा अभिजानाति कुक्कुटो ॥

[न माता-पिता से शिक्षा ग्रहण करते हुए बडा, न आचार्य्य-कुल मे ही रहा। यह मुर्गा न समय जानता था, न असमय।]

अमातापितरि सवद्धो, माता पिता के पास उनका उपदेश न ग्रहण करता हुआ बढा। अनाचरिय कुले वस, आचार्य्य कुल मे भी न रह कर आचार-शिक्षा न ग्रहण करने के कारण असयमी। कालं अकाल वा इस समय बोलना चाहिए,

इस समय नही बोलना चाहिए, इस प्रकार यह मुर्गा समय असमय नहीं जानने के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुआ।

यह कथा सुना बोधिसत्व यावत आयु जीवित रहकर कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय असमय शोर मचानेवाला मुर्गा यह भिक्षु ही था। शिष्य बुद्ध-परिषद हुए। आचार्य्य तो मैं था ही।

१२०. बन्धनमोक्ख जातक

"अबद्धा तत्थ बज्झन्ति" यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में रहते समय चिञ्चमाणविका के बारे में कहा। उसकी कथा बारहवें निपात में महापदुम जातक[1] में आएगी। उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ! चिञ्च माणविकाने न केवल अभी मुझ पर झूठा इल्जाम लगाया है, पहले भी लगाया है' कह पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व पुरोहित के घर में जन्म ग्रहण कर सयाना होने पर पिता के मरने के बाद उसी राजा का पुरोहित हो गया।

---

[1] महापदुम जातक (४७२)।

उस राजा ने अपनी पटरानी को वर दिया था कि जो इच्छा हो माँग ले। उसने कहा, मुझे और वर दुर्लभ नहीं है, मैं यही चाहती हूँ कि अब इसके बाद आप किसी दूसरी स्त्री को कामुक-दृष्टि से न देखें। राजा ने अस्वीकार कर, लेकिन फिर फिर जोर देने से उसके वचन को अस्वीकृत न कर सकने के कारण स्वीकार कर लिया। उसके बाद राजा ने सोलह हजार नर्तकियों में से किसी एक स्त्री की ओर भी कामुक-दृष्टि से नहीं देखा।

उस समय राजा के इलाके में बगावत फैली। इलाके के योधाओं ने विद्रोहियों (चोरों) के साथ दो तीन लडाइयाँ लड (राजा के पास) पत्र भेजा कि इसके आगे हम न लड सकेंगे। राजा ने वहाँ जाने की इच्छा से सेना एकत्र कर देवी को बुलवाकर कहा—"भद्रे! मैं इलाके में जाता हूँ। वहाँ नाना प्रकार के युद्ध होते हैं। जय-पराजय भी अनिश्चित रहती है। वैसी जगहों में स्त्रियों को साथ ले चल सकना कठिन है। तू यहीं रह।" उसने कहा 'देव! मैं यहाँ नहीं रह सकती।" राजा के बार बार मना करने पर बोली "अच्छा! तो एक एक योजन पर पहुँचकर मेरा कुशल-समाचार जानने के लिए एक एक आदमी भेजना होगा।" राजा ने "अच्छा" कह स्वीकार किया।

बोधिसत्व को नगर में छोड, बडी भारी सेना के साथ नगर से निकल राजा जाते हुए एक एक योजन पर एक एक आदमी को भेजता कि जाओ हमारा कुशल समाचार कह रानी के दुःख-सुख की खबर लाओ। वह हर आनेवाले आदमी से पूछती 'राजा ने तुझे किस लिए भेजा है?' 'तुम्हारा कुशल-समाचार जानने के लिए' कहने पर 'तो आओ' कह उससे सहवास करती। राजा ने बत्तीस योजन मार्ग जाते हुए बत्तीस जनों को भेजा। उसने उन सभी के साथ वैसे ही किया। राजा ने इलाके को दबा, लोगों को निश्चिन्त कर लौटते समय भी उसी तरह बत्तीस आदमी भेजे। उसने उन बत्तीसों के साथ भी वैसे ही दुष्कर्म किया।

राजा ने (राजधानी में) पहुँच विजय-पडाव[1] पर रुक बोधिसत्व को

---

[1] इलाके को जीतकर आने पर नगर से बाहर जो पडाव डाला जाता था, उसे 'जय स्कन्धावार' कहते थे।

सूचना भेजी '*नगर को (स्वागत के लिए) तैयार करे।*' बोधिसत्व सारे नगर के साथ राज-महल को भी तैयार कराते हुए रानी के निवास-स्थान पर गया। उसने बोधिसत्व का सुन्दर शरीर देख सयम न कर सकने के कारण कहा—"ब्राह्मण ! शय्या पर आ।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"ऐसा मत कह। मेरे मन में राजा का गौरव भी है और मैं पाप-कर्म से डरता भी हूँ। मैं ऐसा नही कर सकता।"

"उन चौसठ सदेश-वाहको को तो न राजा का गौरव था, न वह पाप से डरते थे, तुझे ही राजा का गौरव है और तू ही (एक) पाप से डरनेवाला है ?"

"हाँ, यदि उनको भी ऐसा होता, तो वह भी ऐसा न करते। मैं तो जान बूझकर ऐसा दुस्साहस नही करूँगा।"

"बहुत क्यो बकवाद करता है, यदि मेरा कहना नही करेगा तो तेरा सिर कटवा दूंगी।"

"एक जन्म के सिर की बात क्या, यदि हजार जन्मो में हर बार भी सिर कटे तो भी मैं ऐसा नही कर सकता।"

"अच्छा देखूँगी" कह बोधिसत्व को डरा रानी अपने कमरे मे गई। वहाँ अपने शरीर पर नाखून की खसोट के निशान बना, बदन पर तेल मल, मैले कुचैले कपडे पहन बीमारी का बाहना बना कर लेट रही और दासियो को आज्ञा दी कि जब *राजा पूछे* 'देवी कहाँ है ?' तो उत्तर देना 'बीमार है।'

बोधिसत्व राजा की अगवानी के लिए गए। राजा ने नगर की प्रदक्षिणा कर प्रासाद पर चढ रानी को न देख पूछा—"देवी कहाँ है ?" "देव ! बीमार है।" राजा ने रानी के कमरे में प्रवेश कर उसकी पीठ मलते हुए पूछा "भद्रे ! तुझे क्या कष्ट है ?" रानी चुप रही। तीसरी बार (पूछने पर) राजा की ओर देखते हुए बोली—"राजन् ! तुम भी जीते हो ? मेरे जैसी स्त्री को भी स्वामी-वाली कहा जा सकता है ?"

"भद्रे ! बात क्या है ?"

"तुमने जिस पुरोहित को नगर की रक्षा का भार सौंपा, वह राजमहल में तैयारी के काम से यहाँ आया और अपना कहना न करने वाली मुझे मारकर अपने मन की करके गया।"

जिस प्रकार आग में नमक तथा शक्कर डालने पर चट चट शब्द होता है, उसी प्रकार राजा क्रोध से चटचटाता हुआ रानी के कमरे से निकला और द्वारपालों तथा परिचारकों को बुलवाकर आज्ञा दी—"अरे ! जाओ, पुरोहित की बाहें पिछली तरफ बाँधकर, उसे वध करने योग्य मनुष्य की तरह नगर से बाहर वध करने के स्थान पर ले जा कर उसका सिर काट दो।"

उन्होंने जल्दी से जाकर उसकी बाँहें पिछली तरफ करके बाँध, वध-भेरी बजवा दी। बोधिसत्त्व ने सोचा "उस दुष्ट देवी ने राजा को पहले से ही फोड़ लिया। अब मैं आज अपने बल से ही अपने को मुक्त करूँगा।" उसने उन लोगों से कहा—

"भो ! तुम मुझे मारते हो, तो एक बार राजा के पास ले चलकर मारना।"

"किस लिए ?"

"मैं राज कर्मचारी हूँ। मैंने बहुत कार्य्य किए हैं। मैं अनेक गड़े हुए खजानों को जानता हूँ। मैं ही राज्य-सम्पत्ति की देखरेख करता रहा हूँ। यदि मुझे राजा को न दिखाओगे, तो बहुत धन का नाश हो जाएगा। मुझे राजा को उसके धन की सूचना दे लेने पर, फिर जो करना हो करो।"

वे उसे राजा के पास ले गए। राजा ने उसे देखते ही कहा—"अरे ब्राह्मण ! तूने मेरी भी शरम नहीं रक्खी ? तूने क्यों ऐसा पापकर्म किया ?"

"महाराज ! मैं श्रोत्रिय कुल में पैदा हुआ हूँ। मैंने कभी च्यूँटी तक की भी जान नहीं ली। मैंने कभी तिनके की भी चोरी नहीं की। मैंने कभी कामुक दृष्टि से किसी की स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। मैंने कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोला। मैंने कभी कुशाग्र से भी मद्य नहीं पिया। मैंने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया। उस मूर्खा ने मुझे हाथ से पकड़ा। मेरे इनकार करने पर वह अपना किया पाप प्रकट कर, मुझे कह कमरे में चली गई। मैं निरपराधी हूँ। हाँ, पत्र लेकर आनेवाले चौंसठ आदमी अपराधी हैं। देव ! उन्हें बुलवा कर पूछें कि उन्होंने उसका कहना किया अथवा नहीं किया ?"

राजा ने उन चौंसठ जनों को बँधवाकर देवी को बुलवाकर पूछा—"तूने इनके साथ पाप किया या नहीं किया ?"

"देव ! किया" कहने पर उसे पीछे हाथ करके बँधवा आज्ञा दी "इन चौसठ जनो के सीस काट डालो ।"

बोधिसत्व ने कहा—"महाराज ! इनका दोष नही । रानी ने अपनी मरजी करवाई । यह निरपराध है । इसलिए इन्हें क्षमा करें । उसका भी दोष नही । स्त्रियों की मैथुन से सतुष्टि नही होती । यह इनका जातीय स्वभाव है। जो होना है, वही होता है। इसलिए इसे भी क्षमा करें ।"

यूँ राजा को समझाकर, उन चौसठ जनो तथा उस मूर्खा को छुडवाकर, उनको उन उन का पद दिलवा दिया । इस प्रकार उन सबको मुक्त करवा, (उनको) अपनी अपनी जगह पर प्रतिष्ठित करवा बोधिसत्व ने राजा से कहा—"महाराज ! अन्धे मूर्खों के झूठ कहने के कारण न बांधने योग्य पण्डितजन पीछे हाथ करके बांधे गए; और पण्डितो के सहेतुक कथन से पिछली तरफ हाथ बँधे मनुष्य भी मुक्त हुए । इस प्रकार मूर्ख जो बाँधने के योग्य नही हैं, उन्हें भी बँधवा देते हैं और पण्डित बँधे हुओ को भी मुक्त करा देते हैं ।" (इतना कह) यह गाथा कही—

अबद्धा तत्थ बज्झन्ति यत्थ बाला पभासरे,
बद्धापि तत्थ मुच्चन्ति यत्थ धीरा पभासरे ॥

[जहाँ मूर्ख आदमी बोलते हैं, वहाँ मुक्त भी बँध जाते हैं, और जहाँ पण्डित-जन बोलते हैं, वहाँ बँधे हुए भी मुक्त हो जाते है ।]

अबद्धा, जो बँधे हुए नही है । **पभासरे**, भाषण करते है, बोलते है, कहते है ।

इस प्रकार बोधिसत्व ने इस गाथा द्वारा राजा को धर्मोपदेश दे राजा से कहा—"मैंने जो यह दु ख भोगा, वह गृहस्थ जीवन में रहते भोगा । अब मुझे गृहस्थ रहने की जरूरत नही है । देव ! मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दे ।"

राजा से प्रव्रजित होने की आज्ञा ले रोते हुए रिश्तेदारो, तथा बहुत सी सम्पत्ति को छोड ऋषियो के क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण कर बोधिसत्व हिमालय में रहते हुए अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-गामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय दुष्टदेवी चिञ्चमाणविका थी । राजा आनन्द था । परोहित तो मै ही था ।

पहला परिच्छेद

१३. कुसनाळि वर्ग

१२१. कुसनाळि जातक

"करे सरिक्खो" यह धर्मोपदेश शास्ता ने जेतवन मे रहते समय अनाथ पिण्डिक के स्थिर-मित्र के बारे में दिया।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डिक के मित्र, सुहृद, रिश्तेदार और बन्धु इकट्ठे होकर उसे बार बार मना करते थे—"महासेठ ! यह न जाति मे, न गोत्र में, न धन-धान्य में ही तेरे समान है, और न तुझ से बढकर ही है। तू इसके साथ क्यो मित्रता करता है ? इसके साथ मित्रता मत कर ?" अनाथ पिण्डिक का ख्याल था कि दोस्ती अपने से छोटे से, बराबरवाले से और श्रेष्ठतर से—सभी से करनी चाहिए, इसलिए उसने उनका कहना नही माना। अपनी जमींदारी के गाँव[1] पर जाते समय वह उसे अपनी सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए नियुक्त कर गया। आगे की कथा कालकण्णिकथा[2] के अनुसार ही समझनी चाहिए। लेकिन इस कथा मे अनाथ पिण्डिक के अपने घर का समाचार कहने पर शास्ता ने कहा—"हे गृहपति ! मित्र कभी तुच्छ नही होता। मित्र-धर्म की रक्षा कर सकने का सामर्थ्य ही असल में होना चाहिए। मित्रता अपने से छोटे से भी करनी चाहिए, बराबरवाले से भी और श्रेष्ठ से भी।

---

[1] भोग गाँव; जिस गाँव से गाँव का स्वामी पैदावार के रूप में अथवा अन्य किसी रूप में वसूली करता था।

[2] कालकण्णि जातक (८३)

सभी अपने सिर पर आ पड़े भार का वहन करते हैं। अब तो तू अपने स्थिर-मित्र के कारण धन का स्वामी हुआ। पुराने समय में पक्के-दोस्त के कारण विमान के स्वामी हुए।"

इतना कह, पूछने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व राजा के उद्यान में एक कुश-घास के झुंड में के देवता हुए। उसी बाग में मंगल-शिला के सहारे सीधे तनेवाला और चारों तरफ शाखाओं तथा पत्तों से घिरा हुआ, राजा द्वारा आदृत राजा का प्रिय-वृक्ष[1] था। उसे मुक्खक भी कहते थे। उसमें एक बड़ा प्रतापी देवराज पैदा हुआ। बोधिसत्व से उसकी दोस्ती हो गई।

उस समय राजा एक खम्भे वाले प्रासाद में रहता था। खम्भा फटने लगा। राजा को इसकी सूचना दी गई। राजा ने बढ़इयों को बुलवाकर कहा "तात! मेरे एक खम्भे वाले मंगल प्रासाद का खम्भा जा रहा है। एक सारवान् खम्भा ला कर उस खम्भे को स्थिर करें।" उन्होंने 'देव! अच्छा' कह राजा के वचन को स्वीकार कर उसके अनुरूप वृक्ष ढूँढना आरम्भ किया। वृक्ष न पा, राजा के उद्यान में जा उस मुक्खक वृक्ष को देख राजा के पास गए। राजा ने पूछा—

"तात! क्यों उसके अनुरूप वृक्ष देखा?"

"देव! देखा, लेकिन उसे काट नहीं सकते?

"क्यों?"

"और कहीं वृक्ष न दिखाई देने पर हम उद्यान में गए। वहाँ मंगल-वृक्ष को छोड़ और कोई वृक्ष नहीं दिखाई दिया। उसे मंगल-वृक्ष होने के कारण नहीं काट सकते।"

"जाओ, उसे काट कर प्रासाद को मजबूत करो। हम दूसरा मंगल-वृक्ष कर लेंगे।"

---

[1] 'रुचरक्खो' कुछ अस्पष्ट है।

वे 'मच्छा' पर 'बलि' ले उद्यान गए और वहाँ अगले दिन काटने के लिए 'बलि' चढ़ाई। वृक्ष-देवता को जब यह पता लगा कि कल मेरा निवास-स्थान[1] नष्ट कर देंगे, तो यह सोचने लगी कि बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँगी? जब कोई जाने की जगह न दिखाई दी, तो पुत्रों को गले से लगाकर रोने लगी। उसके देखे-सुने परिचित वृक्ष-देवता और वन-देवताओं ने आकर पूछा—"क्या हुआ?" समाचार जान स्वयं भी कोई ऐसा उपाय न कर सकने के कारण जिससे बढ़ई वृक्ष को न काटे, उन्होंने गले मिलकर रोना आरम्भ किया।

उसी समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता से मिलने आए। वह समाचार सुन बोधिसत्त्व ने कहा—"होने दो। चिन्ता न करो। मैं बढ़इयों को वृक्ष काटने न दूँगा। कल बढ़इयों के आने के समय मेरा करतब देखना।" उस देवता को आश्वासन दे अगले दिन बोधिसत्त्व बढ़इयों के आने के समय गिरगिट का रूप बना बढ़इयों के आगे से गुजर मगल-वृक्ष की जड़ में प्रवेश कर, उसमें खोखले वृक्ष की तरह ऊपर चढ़, स्कन्ध के बीच में से सिर निकाल उसे कँपाते हुए पड़ रहे।

प्रधान बढ़ई ने उस गिरगिट को देख वृक्ष को हाथ से ठोक कर कहा—"यह खोखला है। निस्सार है। कल बिना विचार किए ही 'बलि' चढ़ाई।" इस प्रकार वे उस ठोस महावृक्ष की निन्दा करते हुए चले गए।

बोधिसत्त्व की सहायता से वृक्ष-देवता विमान की स्वामिनी हुई। उसके देखे-सुने परिचित बहुत से देवता उसे मुबारकबाद देने के लिए इकट्ठे हुए। वृक्ष-देवता ने 'मुझे विमान मिल गया' सोच प्रसन्न हो उन देवताओं के सम्मुख बोधिसत्त्व की प्रशंसा करनी शुरू की—"हे देवताओ! हम ऊँचे कुल वाले होकर भी बुद्धि की कमी के कारण इस उपाय को न जानते थे। कुश घास के देवता ने अपने बुद्धिबल से हमें विमान का स्वामी बनाया। मित्रता अपने जैसे से भी, छोटे से भी, श्रेष्ठ से भी करनी ही चाहिए। सभी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार मित्रों पर आई आपत्ति दूर कर उन्हें सुखी बनाते हैं।" इस प्रकार मित्र-धर्म की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

---

[1] विमान।

करे सरिक्खो अथवापि सेट्ठो
निहीनको चापि करेय्य एको,
करेय्यु ते ब्यसने उत्तमत्थं
यथा अहं कुसनाळी रुचायं ॥

[अपने समान, अपने से श्रेष्ठ अथवा अपने से कम (दर्जे वाले) के साथ भी मित्रता करे। जैसे कुशा-घास (वाले) ने मुझ रुच-वृक्ष (के देवता) का (उपकार किया), उसी प्रकार वे भी विपत्ति आ पड़ने पर उपकार करते हैं।]

करे सरिक्खो—जाति आदि में जो अपने बराबर हो, उससे से भी मित्रता करे। अथवापि सेट्ठो, जाति आदि में जो श्रेष्ठ हो, अधिक हो उससे भी (मित्रता) करे। निहीनको चापि करेय्य एको, जाति आदि से नीच से भी मित्र धर्म करे। इस प्रकार इन सभी को मित्र बनाना चाहिए, यह स्पष्ट करता है। क्यों? करेय्यु ते ब्यसने उत्तमत्थं, यह सभी मित्र पर दुख आ पड़ने पर अपने अपने कर्तव्य भार को वहन करते हुए उपकारी होते हैं, अर्थात् उस मित्र को शारीरिक तथा मानसिक दुख से मुक्त करते हैं। इसलिए अपने से छोटे से भी मित्रता करनी चाहिए, दूसरों की तो बात ही क्या? यहाँ यह उपमा है। यथा अहं कुसनाळी रुचायं, जैसे मैं रुच में पैदा हुआ देवता और यह कुशा-घास का देवता, हमने भी मित्रता की। उसमें मैं ऊँचे कुल वाला होकर भी अपने पर आई विपत्ति को मूर्खता के कारण उपाय न जानने के कारण दूर नहीं कर सका, इस छोटे दर्जे वाले पण्डित-देवता की सहायता से दुख से मुक्त हुआ। इसलिए और भी जो दुख से मुक्त होना चाहे उन्हें भी चाहिए कि बराबरी अथवा श्रेष्ठता का ख्याल न कर कम दर्जे वाले से भी मित्रता करें।

रुचदेवता देवता-समूह को इस गाथा द्वारा धर्मोपदेश कर आयुपर्य्यन्त, जीवित रह कुसनाळी देवता के साथ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का सारांश निकाला। उस समय रुच-देवता आनन्द था। कुसनाळी-देवता तो मैं था ही।

·१२२. दुम्मेध जातक

"यसं लद्धान दुम्मेधो" यह (धर्म-देशना) बुद्ध ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में की।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में बैठे भिक्षु देवदत्त को दोष दे रहे थे—"आयुष्मानो ! तथागत का पूर्ण-चन्द्र सदृश शोभा वाला मुख है। वे अस्सी अनु-व्यञ्जनो तथा बत्तिस महापुरुष लक्षणो से युक्त हैं। उनके चारो ओर व्याम-भर प्रभा है। उनके शरीर से घूम घूमकर दो दो करके घनी बुद्ध-रश्मियाँ निकलती हैं। उनका शरीर अत्यन्त शोभा सम्पन्न है। ऐसे सुन्दर रूप को देखकर, देवदत्त चित्त को प्रसन्न नही कर सकता, ईर्षा ही करता है। 'बुद्ध का ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है, ऐसी विमुक्ति है, ऐसा विमोक्ष-ज्ञान-दर्शन है' इस प्रकार प्रशसा करने पर देवदत्त उनकी प्रशसा नही सह सकता, ईर्षा ही करता है।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" अमुक बातचीत कहने पर "भिक्षुओ ! न केवल अभी मेरी प्रशसा होने पर देवदत्त ईर्षा करता है, वह पहले भी करता रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध देश के राजगृह नगर मे एक मगध-नरेश के राज्य करते समय बोधिसत्व हाथी की योनि में पैदा हुए। उनका सारा शरीर एक दम श्वेत था और उनकी शोभा ऊपर वर्णन की गई शोभा की ही तरह थी। 'यह लक्षणो से युक्त है' देख उस राजा ने बोधिसत्व को मगल हाथी बनाया।

एक दिन किसी उत्सव के अवसर पर राजा सारे नगर को देवनगर की तरह अलकृत करा, सब अलकारो से सजे हुए मगल हाथी पर चढ, बडी राजकीय शान के साथ नगर मे घूमने के लिए निकला। लोग जहाँ तहाँ खडे होकर मगल हाथी के अति सुन्दर शरीर को देख मगल हाथी की ही प्रशसा करने लगे—"ओह ! क्या रूप है ! ओह ! क्या चाल है ! ओह ! कैसा ढग है ! ओह ! कैसे लक्षण है ! इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ हाथी चक्रवर्ती राजा के योग्य है।"

राजा ने मगल हाथी की प्रशसा सुन उसे न सह सकने के कारण, ईर्षा के वशीभूत हो सोचा, "आज ही इसे पर्वत-प्रपात से गिरवा कर मरवा डालूंगा।" फिर हयवान को बुलवाकर पूछा—

"तूने इस हाथी को क्या (खाक) सिखाया है ?"

"देव ! अच्छी तरह से सिखाया है।"

"नही, अच्छी तरह से नही सिखाया, खराब सिखाया है।"

"देव ! अच्छी तरह से सिखाया है।"

"यदि अच्छी तरह से सीखा, तो क्या तू इसे वेपुल्ल पर्वत के ऊपर चढा ले जा सकता है ?"

"देव ! हाँ।"

"अच्छा, तो आ" कह अपने उतर हयवान् को हाथी पर चढा पर्वत के पास जा, हयवान् के हाथी की पीठ पर बैठे ही हाथी को पर्वत के ऊपर चढा ले जाने पर, आमात्यो के साथ स्वय भी पर्वत के शिखर पर चढ, हाथी का मुँह प्रपात की ओर करवा कहा—"तू कहता है कि मैने इसे अच्छी तरह सिखाया है। इसे तीन ही पैरो से खडा कर।"

हयवान् ने पीठ पर बैठे ही बैठे हाथी को अकुश द्वारा इशारा किया, 'भो ! तीन पैरो से खडे हो जाओ।" वह तीन पैरो से खडा हो गया। तब राजा बोला—"आगे के दो पैरो के भार खडा करा।" बोधिसत्त्व पिछले दोनो पैर उठाकर अगले पैरो पर खडे हुए। 'पिछले ही पैरो पर' कहने पर आगे के दोनो पैर उठाकर पिछले ही पैरो पर खडे हो गए। 'एक ही पैर से' भी कहने पर तीनो पैर उठा एक ही पैर से खडे हो गए। उसे न गिरता देख राजा ने कहा—'यदि कर सको, तो इसे आकाश मे खडा करो।'

हयवान् ने सोचा सारे जम्बूद्वीप मे इसे हाथी के समान सुशिक्षित हाथी नही है। निस्सशय यह राजा इसे प्रपात में गिरवाकर मरवाना चाहता है। उसने हाथी के कान में कहा—"तात ! यह राजा तुझे प्रपात में गिराकर मार डालना चाहता है। तू इसके योग्य नही है। यदि तुझमें आकाश-मार्ग से जाने का बल है, तो जैसे मैं बैठा हूँ वैसे ही मुझे ले आकाश मे उड वाराणसी चल।"

पुण्य-ऋद्धि से युक्त वह हाथी उसी समय आकाश में खडा हो गया। हयवान् ने कहा—'महाराज ! यह हाथी पुण्य-ऋद्धि से युक्त है। यह तेरे जैसे पुण्य-रहित दुर्बुद्धि के योग्य नही है। यह (किसी) पुण्यवान् पण्डित राजा के योग्य है। तेरे सदृश अपुण्यवान् इस प्रकार का वाहन पा उसके गुणो को न पहचान उस वाहन को तथा सारी सम्पत्ति को नष्ट ही कर डालते हैं।' इतना कह हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे यह गाथा कही—

यस लद्धान दुम्मेधो अनत्थं चरति अत्तनो,

अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति ॥

[मूर्ख आदमी सम्पत्ति को प्राप्त हो अपनी हानि करता है। वह अपनी और दूसरो की हिंसा करता है।]

यह सक्षिप्तार्थ है—महाराज ! उस प्रकार का **दुम्मेधो**, प्रज्ञाहीन आदमी परिवार-सम्पत्ति पाकर **अत्तनो अनत्थं चरति**। क्यो ? वह सम्पत्ति के मद में बेहोश हो, कुछ न जानने के कारण **अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति**, हिंसा का अर्थ है क्लेश, दुख देना, वही करता है।

इस प्रकार इस गाथा से राजा को धर्मोपदेश दे 'अब तू यहाँ रह' कह आकाश में उडकर वाराणसी जाकर राजा के आँगन में आकाश मे रुका। सारे नगर में एक हल्ला हो गया—हमारे राजा के पास आकाश से एक श्वेत-श्रेष्ठ हाथी आकर राजा के आँगन पर ठहरा है। जल्दी से राजा को भी खबर दी गई। राजा ने निकलकर कहा—यदि मेरे उपयोग के लिए आया है, तो जमीन पर उतर। बोधिसत्त्व जमीन पर उतरे। हयवान् ने उतरकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने पूछा—"तात ! कहाँ से आया है ?" "राजगृह से" कह सब समाचार सुनाया।

राजा बोला—'तात ! यहाँ आकर तूने अच्छा किया।' फिर प्रसन्न हो नगर सजवा हाथी को मंगल-हाथी घोषित किया। सारे नगर के तीन हिस्से कर, एक हिस्सा बोधिसत्त्व को दिया, एक हयवान् को और एक स्वयं लिया।

बोधिसत्त्व के आने के समय से ही सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा को हस्तगत हो गया। वह जम्बूद्वीप का महाराज हो दान आदि पुण्य कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मगध नरेश देवदत्त था। बाराणसी का राजा सारिपुत्र था। हयवान आनन्द था। और हाथी तो मैं ही था।

१२३. नङ्गलीस जातक

"असब्बत्थगामिं वाचं" यह (धर्म देशना) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लाळुदायि स्थविर के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

वह धर्मोपदेश देते समय यहाँ यह कहना चाहिए, यहाँ यह न कहना चाहिए, योग्य अयोग्य नहीं जानता था। मङ्गल (बात) कहने की जगह अमङ्गल बात कहकर (दान-) अनुमोदन करता था, जैसे तिरोकुड्डेसु तिट्ठन्ति सन्धि-सिङ्घाटकेसु च[1]। अमङ्गल अनुमोदन करने की जगह बहू देवा मनुस्सा च

---

[1] तिरोकुड्ड सुत्त, खुद्दकपाठ (खुद्दक निकाय) की पहली पंक्ति जिसका मतलब है कि प्रेत लोग आकर दीवारों के बाहर, खिड़कियों में और चौरस्तों में खड़े होते हैं।

क्यो बैठा है ?" "आचार्य्य ! चारपाई के पाये का सहारा न मिलने से, जाँघ मे करके बैठा हूँ ।"

बोधिसत्त्व का दिल भर आया। वे सोचने लगे यह मेरी बहुत सेवा करता है। लेकिन इतने विद्यार्थियो में यही मन्दमति है, शिल्प नहीं सीख सकता। मैं इसे कैसे पण्डित बनाऊँ ? तब उन्हे सूझा—एक उपाय है। मै इस विद्यार्थी को लकडियाँ और पत्ते लेने के लिए भेजकर, आने पर पूछूँगा—*आज तूने क्या देखा ? क्या किया ? तब यह मुझे बताएगा कि आज यह देखा,* यह किया। तब मै इसे पूछूँगा कि जो तूने आज देखा किया, वह कैसा है ? वह 'ऐसा है' मुझे उपमा देकर, बातो से समझाएगा। इस प्रकार इससे नई नई उपमाएँ और बाते कहलवाकर मैं इसे इस उपाय से पण्डित बना दूँगा।

तब उन्होने उसे बुलवाकर कहा—तात ! माणवक ! अब से तू जहाँ लकडी लेने या पत्ते लेने जाए वहाँ जो देखे, जो सुने, जो खाए, पीए, वह आकर मुझे कहा कर। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन वह विद्यार्थियो के साथ लकडी लेने जगल गया। वहाँ उसने एक साँप देखा। आकर आचार्य्य से कहा—आचार्य्य, मैंने साँप देखा।

"तात ! साँप कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

'तात ! बहुत अच्छा। तूने सुन्दर उपमा दी। साँप हल की फाल की ही तरह होते है।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—विद्यार्थी को अच्छी उपमा सूझी है। मैं इसे पण्डित *बना सकूँगा।*

विद्यार्थी ने फिर एक दिन जगल में हाथी देख आकर कहा—आचार्य्य, मैने हाथी देखा।

"तात ! हाथी कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

बोधिसत्त्व सोचने लगे—हाथी की सुण्ड तो हल की फाल की तरह होती है, लेकिन उसके दाँत आदि तो ऐसे ऐसे होते है। मालूम होता है यह अपनी मूर्खता के कारण पृथक पृथक करके वर्णन नहीं कर सकता। वे चुप रहे।

एक दिन निमन्त्रण में ऊख पाकर कहा—

"आचार्य्य ! आज हमने ऊख खाया।"

"ऊख कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

थोडी सीधी बात कहता है, सोच आचार्य्य चुप रहे। फिर एक दिन निमन्त्रण में कुछ विद्यार्थियो ने दही के साथ गुड खाया, कुछ ने दूध के साथ। उसने आकर कहा—आज ! हमने दही दूध के साथ खाया।

"दूध दही कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

आचार्य्य ने सोचा—इस विद्यार्थी ने साँप की हल की फाल से उपमा दी, सो तो ठीक रहा। हाथी की हल की फाल से उपमा दी, वह भी सुण्ड का ख्याल करके कहा, इससे कुछ ठीक रहा। ऊख को हल की फाल के सदृश कहा, उसमे भी खैर कुछ ठीक है। लेकिन दूध दही तो सफेद होते है, जैसा बरतन होता है वैसा ही उनका आकार हो जाता है। यहाँ तो उपमा सर्वथा गलत है। इस मूर्ख को न सिखा सकूँगा। यह कह, यह गाथा कही—

असब्बत्थगामिं वाचं
बालो सब्बत्थ भासति,
नायं दधिं वेदि न नङ्गलीसं
दधिप्पयं मञ्ञति नङ्गलीसं ॥

[मूर्ख सब जगह ठीक न बैठनवाली बात सब जगह कहता है। न यह दही को जानता है, न हल के फाल को। यह दही को भी हल की फाल समझता है।]

संक्षिप्तार्थ यूं है—जो वाणी उपमारूप से सर्वत्र लागू नही होती, वह असब्बत्थ गामिं वाचं बालो जड आदमी सब्बत्थ भासति। दधि कैसा होता है पूछने पर कहता है जैसे हल की फाल। इस प्रकार कहता हुआ नायं दधिं वेदि न नङ्गलीसं। क्या ? क्योकि दधिप्पयं मञ्ञति नङ्गलीसं, यह दही को भी हल की फाल मानता है। अथवा दधि कहते है दही को। पय कहते है दूध को। दधि और पय दधिप्पयं, यह दही और दूध को भी हल की फाल मानता है,

ऐसा है यह मूर्ख। इससे क्या होगा? अपने शिष्यों को गाथा कह, उसे खर्चा दे बिदा किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का सारांश निकाला। उस समय मूर्ख विद्यार्थी लाळुदायि था। चारो दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था।

१२४. अम्ब जातक

"**वायमेथेव पुरिसो**" यह धर्मोपदेश बुद्ध ने जेतवन मे रहते समय एक कर्तव्य-निष्ठ ब्राह्मण के सम्बन्ध में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती निवासी तरुण बुद्ध शासन में बडी श्रद्धा से प्रव्रजित हो बहुत कर्तव्य-परायण था। आचार्य्य, उपाध्याय की सेवा का कार्य्य; पीने का पानी तथा खाद्य सामग्री आदि तैयार रखने का कार्य्य, उपोसथ घर[1] तथा जन्ताघर[2] आदि साफ रखने का कार्य्य—सभी अच्छी तरह से करता। चौदह बडे कर्तव्यो और अस्सी छोटे छोटे कर्तव्यों—सभी को पूरा करता। विहार में झाड़ू लगाता। परिवेण मे झाड़ू लगाता। घूमने फिरने की जगह[3] में झाड़ू लगाता। विहार जाने के रास्ते को साफ रखता। मनुष्यों को पानी देता।

---

[1] जहाँ भिक्षु एकत्र होकर उपोसथ करते है।

[2] अग्नि-शाला, जिसमें आग तापकर पसीना बहाया जाता है।

[3] सिंहल प्रति में 'विक्कम-मालक' का 'वितक्कमालक' है; जो अशुद्ध प्रतीत होता है।

लोगो ने उसकी कर्तव्य-निष्ठा पर प्रसन्न हो, उसे पाँच सौ स्थिर निमन्त्रण दिए। बहुत लाभ-सत्कार की प्राप्ति हुई। उसके कारण बहुतो को सुख मिला। धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओ ने बात चलाई—आयुष्मानो! उस भिक्षु ने अपनी कर्तव्य निष्ठा से बहुत लाभ-सत्कार प्राप्त किया। इस एक के कारण बहुतो को सुख मिला।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" '*यह बातचीत*' कहने पर "*भिक्षुओ, केवल अभी नही, पहले भी यह भिक्षु कर्तव्य निष्ठ रहा है। इस अकेले के कारण पाँच सौ ऋषि फल-फूल के लिए न जाकर इस एक के द्वारा मँगवाए गए फलो से ही गुजारा चलाते रहे है।*" *यह कह पूर्वजन्म की बात कही—*

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो सयाने होने पर ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो पाँच सौ ऋषियो के साथ पर्वत के नीचे रहने लगे। उस समय हिमालय प्रदेश में बडी गर्मी पडी। जहाँ तहाँ पानी सूख गया। पशु पानी न मिलने से कष्ट पाने लगे।

उन तपस्वियो में से एक तपस्वी ने उन (पशुओ) के प्यास-कष्ट को देख एक वृक्ष काट, उसमें से एक द्रोणि बना, पानी उलीच कर द्रोणि भर, उन्हें पानी दिया। बहुत से पशुओ के इकट्ठे होकर पानी पीने लगने पर तपस्वी को फल-मूल लाने के लिए जाने का समय न मिला। वह निराहार रहकर भी पानी पिलाता ही रहा।

पशुओ ने सोचा यह हमें पानी पिलाने के कारण फल-मूल के लिए जाने का समय नही पाता। निराहार रहने के कारण बहुत कष्ट पाता है। हम लोग एक निर्णय करें। उन्होने सलाह की कि इसके बाद जो पानी पीने आए वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ फल-मूल अवश्य लाए।

उसके बाद प्रत्येक पशु अपनी अपनी शक्ति के अनुसार मीठे मीठे आम, जामुन, कटहल आदि अवश्य लाता। उसके लिए लाया हुआ फल ढाई गाड़ियाँ भर होता। पाँच सौ तपस्वी उसे ही खाते। अधिक होता, छोड देते।

बोधिसत्त्व ने यह देख कहा—एक कर्तव्य-निष्ठ आदमी के कारण इतने तपस्वियों का बिना फल-मूल के लिए गए गुजारा चलता है। प्रयत्न करना ही चाहिए। इतना कह यह गाथा कही—

वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
वायामस्स फल पस्स भुत्ता अम्बा अनीतिह ॥

[आदमी को चाहिए कि प्रयत्न अवश्य करे। पण्डित आदमी विमुख न हो। प्रयत्न के फल को देखो—आम प्रत्यक्ष खाने को मिले।]

सक्षिप्तार्थ—**पण्डितो**, अपने कर्तव्य की पूर्ति में वायमेथव, विमुख न हो। क्यों? प्रयत्न के कभी निष्फल न होने के कारण। बोधिसत्त्व ने 'प्रयत्न सफल होता ही है' ऋषियों को इस प्रकार सम्बोधन करते हुए कहा **वायामस्स फल पस्स**। कैसा? **भुत्तो अम्बा अनीतिह**, अम्ब, कहने के लिए है, मतलब है नाना प्रकार के फल लाए गए, आम उनमे श्रेष्ठ होने से अम्ब कहा गया। यह जो पाँच सौ ऋषियों ने स्वय जगल न जा एक के लिए आए फलो को खाया, सो यह प्रयत्न का ही फल है। और वह **अनीतिह**। इति ह (आस) इतिहास से। इतिह से ही ग्रहण करना नही होता, उस फल को प्रत्यक्ष देखो।

बोधिसत्त्व ने ऋषियों को उपदेश दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय का कर्तव्य-निष्ठ तपस्वी यह भिक्षु था। गण-शास्ता मैं ही था।

१२५. कटाहक जातक

"बहुम्पि सो विकत्थेय्य . " यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शेखी बघारने वाले भिक्षु के बारे में कहा। उसकी कथा पूर्वोक्त सदृश ही है[1]।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महाधनशाली सेठ हुए। उसकी भार्य्या ने पुत्र को जन्म दिया। उसकी दासी ने भी उसी दिन पुत्र उत्पन्न किया। वे दोनों साथ साथ बढ़ने लगे। सेठ के लड़के के लिखना सीखते समय, दास ने भी उसकी तख्ती ढोते हुए जाकर उसी के साथ लिखना सीखा, गिनना सीखा। दो तीन भाषाएँ (बोहार) सीखी। क्रम से बढ़कर वह वचन-कुशल, भाषाविद, सुन्दर तरुण हुआ। उसका नाम था कटाहक।

सेठ के घर में भण्डारी का काम करते हुए वह सोचने लगा कि यह लोग मुझसे हमेशा भण्डारी का काम नहीं लेंगे। कुछ भी दोष देखेंगे, तो तारेंगे, बाँध कर दाग देंगे और दास बनाकर काम लेंगे। इलाके में सेठ का मित्र एक सेठ है। क्यों न मैं सेठ की तरफ से एक चिट्ठी लेकर, वहाँ पहुँच 'मैं सेठ का लड़का हूँ' कह उस सेठ को धोका दे, उसकी लड़की से शादी कर सुखपूर्वक रहूँ।

उसने कागज ले उस पर अपने ही लिखा—मैं अमुक नाम का (से०) अपने पुत्र को तुम्हारे पास भजता हूँ। मेरा तुम्हारे और तुम्हारा मेरे साथ

---

[1] भीमसेन जातक (८०)।

शादी का सम्बन्ध करना योग्य है। इसलिए आप इस लडके को अपनी लडकी देकर वही बसा ले, मैं भी समय मिलने पर आऊँगा।

फिर इस चिट्ठी पर सेठ की अँगूठी की मुहर लगा इच्छानुसार मार्ग-व्यय तथा सुगन्धियाँ और वस्त्रादि ले प्रत्यन्त देश में जा सेठ के यहाँ पहुँच प्रणाम किया।

सेठ ने उसे पूछा—तात, कहाँ से आया है ?

"वाराणसी से।"

"किसका पुत्र है ?"

"वाराणसी सेठ का।"

"किस प्रयोजन से आया है ?"

कटाहक ने कहा—यह पत्र देखकर जान लें।

सेठ ने पत्र बाँच प्रसन्न हो 'अब मेरा जीवन सफल हुआ' कह उसे लडकी दे प्रतिष्ठित किया।

कटाहक का बडा परिवार था। वह यवागु-खाद्य अथवा वस्त्र गंध आदि के लाने पर झिडकता था—'इस तरह भी कही यवागु पकाया जाता है ? इस तरह भी कही खाद्य पकाया जाता है। और इस तरह भात ? ओह ! यह प्रत्यन्त देश के रहनेवाले ! शहरी न होने से ही यह लोग न कपडो पर स्त्री करना जानते है, न सुगन्धित पदार्थों को पीसना और न फूलो को गूँथना ?' —इस प्रकार वह दर्जियो आदि की निन्दा करता।

बोधिसत्त्व ने दास को न देख पूछा—'कटाहक नही दिखाई देता। कहाँ गया ?' फिर उसे ढूँढने के लिए आदमियो को चारो ओर भेजा। एक आदमी ने वहाँ जा उसे देख, पहचान अपने आप को छिपाए रख लौटकर बोधिसत्त्व से कहा। बोधिसत्त्व वह वृत्तान्त सुन, 'उसने अनुचित किया, जाकर उसे लेकर आता हूँ' सोच राजाज्ञा ले बहुत से लोगो को साथ ले चले।

सेठ प्रत्यन्त देश को जा रहे है, यह बात सब जगह फैल गई।

कटाहक ने जब यह सुना कि सेठ आ रहा है, तो सोचा कि वह और किसी कारण से नही आ रहा है। मेरे ही कारण वह आ रहा है। यदि मैं अब भाग जाऊँ तो फिर नही आ सकूँगा। इसलिए एक यही उपाय है कि मैं आगे जाकर स्वामी की सेवा कर उसे प्रसन्न करूँ।

उस समय से वह लोगो में बैठकर इस प्रकार बातें बनाने लगा—दूसरे मूर्ख लोग मातापिता के लिए उपकार को भूल, उनके भोजन करने के समय उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न कर उनके साथ ही भोजन करने बैठ जाते हैं। हम तो मातापिता के भोजन करने के समय पानी का बर्तन ले जाते हैं, थूकने का बर्तन ले जाते है, (दूसरे) पात्र ले जाते हैं, पानी और पखा लेकर खडे रहते हैं। शौच के लिए जाते समय परदे की जगह तक पानी का बरतन लेकर जाते है। इस प्रकार स्वामी के प्रति जो जो दास के कर्तव्य होते हैं, उन सबको प्रगट किया।

इस तरह लोगो को समझा बोधिसत्त्व के प्रत्यन्त देश के समीप पहुँच जाने के समय अपने श्वसुर से कहा—"तात! मेरे पिता आपके दर्शन के लिए आ रहे हैं। आप खाद्य भोज तैयार कराएँ। मैं भेंट लेकर आगे जाता हूँ।" उसने "तात! अच्छा" कह स्वीकार किया।

कटाहक ने बहुत सी भेंट ले जाकर बहुत से लोगो के साथ जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर भेंट अर्पण की।

बोधिसत्त्व ने भेंट स्वीकार कर कुशल समाचार पूछ हाजरी के समय तम्बू लगवा शौच के लिए परदे की जगह में प्रवेश किया। कटाहक ने अपने अनुयायियो को पीछे छोडा। पानी ले बोधिसत्त्व के पास पहुँचे। वहाँ उनके पानी छू चुकने पर पैरो में गिर कर कहा—'स्वामी मैं आपको जितना चाहे उतना धन दूँगा। मुझे बदनाम न करे।' बोधिसत्त्व उसकी सेवा से प्रसन्न हो बोले—'मत डरो। मुझ से तुम्हें कुछ हानि न होगी।' इस प्रकार उसे तसल्ली दे प्रत्यन्त-नगर में प्रवेश किया। बडा आदर-सत्कार हुआ।

कटाहक दास की तरह से उसकी सब प्रकार की सेवा करता रहा।

एक बार जब बोधिसत्त्व सुखपूर्वक बैठे हुए थे प्रत्यन्त-देश के सेठ ने कहा—"महासेठ! मैंने तुम्हारे पत्र को देखकर ही तुम्हारे लडके को अपनी लडकी दे दी।" बोधिसत्त्व ने कटाहक को पुत्र ही बना उस (अवसर) के योग्य प्रिय वचन कह सेठ को सन्तुष्ट किया। लेकिन फिर उसके बाद से वह कटाह का मुँह नही देख सका।

एक दिन बोधिसत्त्व ने सेठ की लडकी को बुलाकर कहा—अम्म! आ! मेरे सिर में जुएँ हैं, उन्हें चुग। उसके आकर जुएँ चुगती हुई खडी होने पर

पूछा—'अम्म ! क्या मेरा पुत्र तेरे दु ख-सुख मे आलस्य रहित हो साथ देता है ? दोनो जने मिलकर प्रसन्नता-पूर्वक रहते हो न ?"

"तात ! सेठ के पुत्र में और कोई दोष नही। केवल आहार की निन्दा करता है।"

"अम्म ! वह सदैव से दु ख देनेवाला है। लेकिन मै तुझे उसका मुँह बन्द करने का मन्त्र देता हूँ। तू उसे अच्छी तरह सीख। मेरे पुत्र के भोजन की निन्दा करने के समय, जैसे सीखा वैसे ही उसके सामने खडी होकर कहना'—इस प्रकार एक गाथा सिखा कुछ दिन रह वाराणसी चले गए।

कटाहक भी बहुत सा खाद्य-भोज्य ले, उनके पीछे पीछे जा बहुत सा धन देकर लौट आया।

बोधिसत्त्व के जाने के बाद से कटाहक और भी अभिमानी हो गया। एक दिन जब सेठ की लडकी नाना प्रकार के अच्छे अच्छे भोजन ले कडछी से परोस रही थी उसने भोजन की निन्दा आरम्भ की। सेठ की लडकी ने जैसे बोधिसत्त्व से सीखी थी, उसी प्रकार यह गाथा कही—

बहुम्पि सो विकत्थेय्य अञ्ञ जनपद गतो,
अन्वागन्त्वान दूसेय्य भुञ्ज भोगे कटाहक ॥

[दूसरे देश में जाकर वह बहुत बकता है। फिर आकर उसे दोषी ठहरा दे, (इसका ख्याल कर) कटाहक जो भोग मिल रहा है, उसका उपभोग कर।]

बहुम्पि सो विकत्थेय्य अञ्ञ जनपद गतो, जो अपने जन्म-स्थान से किसी ऐसे दूसरे देश मे गया रहता है, जहाँ उसकी जाति नही जानते, वह बहुत बकता है। धोका देने की ठगने की बात करता है। **अन्वागन्त्वान दूसेय्य**, इस बार स्वामी की अगवानी करके दास कर्म करने के कारण चाबुक से पीटे जा कर पीठ की चमडी उधेडी जाने से और दाग दिए जाने से बच गया। यदि अनाचार करेगा तो दुबारा आने पर तेरा स्वामी तुझे दोषी ठहरायेगा, इस घर म आकर चाबुक से सजा देगा। दाग देकर तथा तेरी जाति प्रकट करके तुझे खराब करेगा, पीटेगा। इसलिए इस अनाचार को छोड **भुञ्ज भोगे कटाहक** ! फिर बाद

में अपना दासत्व प्रगट कराकर मत पछताना, यही यहाँ सेठ के कहने का मतलब है।

सेठ की लड़की यह सब नहीं जानती थी। वह जैसे सीखा था वैसे शब्द-मात्र कहती थी।

कटाहक ने सोचा, निश्चय से सेठ ने मेरा नाम बताकर इसे सब कह दिया होगा। उसके बाद से फिर उसकी भोजन की निन्दा करने की हिम्मत न हुई। मान-मर्दित होकर वह यथा प्राप्त भोजन करता हुआ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कटाहक बकवादी भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१२६. असिलक्खण जातक

"तथेवेकस्स कल्याण" यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल-नरेश के तलवार के लक्षण कहनेवाले ब्राह्मण के बारे में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह (ब्राह्मण) राजा के पास लोहारों के तलवार लाने के समय तलवार को सूँघकर तलवार का लक्षण बताता था। जिनके हाथ से कुछ प्राप्त हो जाता उन की तलवार को वह सुलक्षण और माङ्गलिक कहता, जिनके हाथ से कुछ न मिलता उनकी तलवार को अमाङ्गलिक बता निन्दा करता।

एक शिल्पी तलवार बना उसके म्यान में मिर्चों का बारीक चूर्ण भर राजा के पास तलवार लाया। राजा ने ब्राह्मण को बुलवाकर कहा—तलवार की परीक्षा कर।

जब ब्राह्मण तलवार निकालकर सूँघने लगा तो मिर्चों के चूर्ण के उसकी नाक को लगने से उसे छींक आई। छींक आने से उसकी नाक तलवार से लगी; और उसके दो टुकड़े हो गए।

उसकी इस तरह नाक कटने की बात भिक्षु-संघ में प्रकट हो गई। एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलाई—आयुष्मानो! राजा के तलवार का लक्षण बतानेवाले ने तलवार का लक्षण बताते हुए नाक कटवा ली।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, इस ब्राह्मण ने न केवल अभी तलवार सूँघते हुए नाक कटवाई, पहले भी कटवाई है' कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, उसके यहाँ तलवार का लक्षण कहनेवाला एक ब्राह्मण था। (इसके आगे की सारी कथा 'वर्तमान-कथा' की तरह ही है)। राजा ने उसे वैद्य के पास भेजकर उसकी नाक की चिकित्सा कराई। फिर लाख से उसकी नाक के सदृश ही एक नाक बनवाकर उसे फिर अपनी सेवा में नियुक्त किया।

वाराणसी नरेश को कोई पुत्र न था। एक लड़की और एक भानजा था। उन दोनों को भी उसने अपने पास ही रखकर पाला था। एक साथ रहने के कारण वह परस्पर प्रेम में बँध गए।

राजा ने आमात्यों को बुलाकर सलाह की कि मेरा भानजा राज्य का उत्तराधिकारी है ही, इसे ही लड़की देकर इसका राज्याभिषेक कर दिया जाए। लेकिन फिर सोचा, भानजा तो हर तरह से आत्मीय है ही, इसके लिए कोई दूसरी राजकुमारी लाकर दी जाए। फिर इसका अभिषेक किया जाए। और अपनी लड़की किसी दूसरे राजा को दी जाए। इस प्रकार हमारे रिश्तेदार बहुत होंगे; और हम ही दोनों राज्यों के स्वामी होंगे। उसने मन्त्रियों की सलाह से निश्चय किया कि दोनों को पृथक पृथक रखना चाहिए; एक को एक घर में दूसरे को दूसरे में रखा। सोलह वर्ष की अवस्था होने पर उनका परस्पर का आकर्षण और भी बढ़ गया।

राजकुमार सोचने लगा कि किस उपाय से मामा की लड़की को राज घर से निकलवाया जा सकता है ? उसे एक उपाय सूझा। एक भाग्य बतानेवाली को बुलवाकर उसने उसे एक हजार मुद्राएँ दीं। भाग्य बतानेवाली ने पूछा— "मैं क्या कर सकती हूँ ?"

"अम्म ! तेरे करने से सफलता निश्चित है। कोई बात कहकर ऐसी विधि लगा जिससे मेरा मामा राज-कन्या को घर से बाहर लाए।"

"स्वामी, अच्छा मैं राजा के पास जाकर कहूँगी कि तुम्हारी कन्या पर ग्रह है। इतने समय के बाद नहीं रहेगा। मैं अमुक दिन राज-कन्या को रथ पर चढ़ाकर हथियार बन्द बहुत से आदमियों को साथ ले, अनेक अनुयायियों सहित श्मशान में जाऊँगी। वहाँ मण्डल-चौकी के नीचे श्मशानशय्या पर मुर्दे को लिटा, ऊपर की शय्या पर राज-कन्या को बिठा सुगन्धित जल के एक सौ आठ घड़ा से स्नान करवाकर ग्रह उतारूँगी, ऐसा कह कर मैं राजकन्या को श्मशान ले जाऊँगी। तू हमारे वहाँ जाने के दिन हमसे भी पहले ही थोड़ा मिर्चों का चूर्ण लेकर, हथियार बन्द अपने आदमियों के साथ रथ पर चढ़कर श्मशान-भूमि में जाना। वहाँ पहुँच रथ को श्मशान-द्वार पर ही एक तरफ छोड़, हथियार बन्द आदमियों को श्मशान-वन में छिपा, स्वयं श्मशान में जाकर वहाँ मण्डलपीठ के पास मुर्दे की तरह पट पड़ रहना। मैं वहाँ आकर तेरे ऊपर मञ्च बिछा राजकन्या को उठा उस पर सुलाऊँगी। तू उस समय मिर्च-चूर्ण को दो तीन बार नाक पर लगा छींकना। तेरे छींकने के समय हमलोग राजकन्या को छोड़कर भाग जाएँगे। तब आकर राजकन्या को सिर से नहला, अपने भी नहा उसे लेकर अपने घर जाना।" उसने अच्छा कह स्वीकार किया।

राजा को जाकर जब उसने सब बात कही, तो राजा ने भी स्वीकार किया। राजकन्या से भी वह रहस्य कहा तो वह भी मान गई। उसने बाहर निकलने के दिन राजकुमार को सूचना दे अनेक अनुयायियों के साथ जाते हुए पहरेदार आदमियों को डराने के लिए कहा—

मेरे, राजकन्या को चारपाई पर लिटाने के समय चारपाई के नीचे पड़ा हुआ मुर्दा छींकेगा, और छींकने के बाद चारपाई के नीचे से निकल जिसे पहले देखेगा उसे ही पकड़ेगा। इसलिए होशियार रहना।

राजकुमार पहले ही पहुँचकर जैसे कहा गया था, वैसे ही लेट रहा।

भाग्य बतानेवाली ने राजकन्या को मण्डलपीठ की जगह पर जाते हुए 'डर मत' इशारा कर चारपाई पर लिटाया।

उसी समय कुमार ने मिर्च-चूर्ण नाक पर फेंक छींक मारी। उसके छींक मारते ही (वह) भाग्य बतानेवाली राजकन्या को छोड बडा शोर मचाती हुई सबसे पहले भागी। उसके भागने पर एक भी न ठहर सका। जिसके पास जो शस्त्र थे उन्हें छोड सभी भाग गए।

राजकुमार जैसे निश्चय किया गया था उसके अनुसार सब करके राजकन्या को अपने घर ले गया। भाग्य बतानेवाली ने जाकर राजा को सब हाल कहा। राजा ने स्वीकार किया, बोला—यूँ भी मैंने उसे उसी के लिए पाला था। दूध म घी पडने जैसा हुआ। आगे चलकर भानजे को राज्य दे अपनी कन्या को उसकी पटरानी बनाया। वह उसके साथ मेल से रहता हुआ धर्म-पूर्वक राज्य करता रहा।

वह तलवार के लक्षण बतानेवाला भी उसी की सेवा में रहता था। एक दिन राज्य-सेवा में आ सूर्य के सामने खडे हो सेवा-कार्य्य करते हुए उसकी नाक की लाख पिघल गई। नकली नाक जमीन पर गिर पडी। वह शर्म के मारे सिर नीचा करके खडा हुआ।

राजा ने हँसते हुए कहा—आचार्य्य सोच मत करो। छींकना एक के लिए कल्याणकर होता है, दूसरे के लिए बुरा। तुम्हारे छींकने पर नाक पृथक हो गई, लकिन हमने छींका तो हमें मामा की लडकी और राज्य मिला। इतना कह यह गाथा कही—

तथेवकस्स कल्याणं तथेवकस्स पापकं,
तस्मा सब्बं न कल्याणं सब्बं वापि न पापकं ॥

[वही किसी के लिए कल्याणकारक है, वही किसी के लिए बुरा। इस लिए न सब कल्याणकारक ही है, न सब बुरा ही है।]

तथेवेकस्स तदेवेकस्स—यह भी पाठ है। दूसरे पद में भी ऐसे ही।

इस प्रकार इस गाथा द्वारा उसने वह बात कही। फिर दान आदि पुण्यकर्म करके यथाकर्म परलोक सिधारा।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश द्वारा लोक में जो बहुत सी अच्छी बुरी मान्यताएँ हैं उन सबका अनैकान्तिक होना प्रकाशित करके जातक का मेल बैठाया।

उस समय का तलवार के लक्षण पढ़नेवाला तो यह अब का तलवार के लक्षण पढ़नेवाला ही था। हाँ भानजा-राजा मैं ही था।

१२७. कलण्डुक जातक

"ते देसा तानि वत्थूनि..." यह (धर्मदेशना) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बकवादी भिक्षु के बारे में कही। दोनों कथाएँ (अतीत कथा तथा वर्तमान कथा) कटाहक जातक[1] की कथा की तरह ही हैं।

हाँ, इस जातक में वाराणसी के सेठ का नाम कलण्डुक था। उसके भाग कर प्रत्यन्त सेठ की लड़की से विवाह कर बड़े ठाट-बाट के साथ रहने के समय, वाराणसी के सेठ के उसे ढुंढवाने पर भी उसके न मिलने पर, वाराणसी सेठ ने अपना पाला-पोसा एक तोते का बच्चा भेजा कि जा कलण्डुक को खोज। तोते का बच्चा इधर-उधर घूमता हुआ उस नगर में पहुँचा।

उस समय कलण्डुक जल क्रीडा करने की इच्छा से बहुत सारे माला-गन्ध-विलेपन तथा खाद्य-भोज्य ले नदी पर जा सेठ कन्या के साथ एक नौका पर बैठ पानी में खेलता था। उस देश में ऐश्वर्य्यशाली लोग जब जल-क्रीडा करते तो कोई तेज औषध मिला हुआ दूध पीते थे। उससे उनके सारा दिन भी जल में क्रीडा करते रहने पर उन्हें शीत नहीं लगता था। यह कलण्डुक उस दूध से मुँह भर उससे कुरला कर उसे थूक देता, लेकिन उसे जल में न थूककर उस सेठ-कन्या के सिर पर थूकता था।

---

[1] कटाहक जातक (१२५)।

उस तोते के बच्चे ने भी नदी के किनारे एक गूलर की शाखा पर बैठ कलण्डुक को पहचान लिया और देखा कि वह सेठ-कन्या के सिर पर थूक रहा है। उसने कहा—"अरे ! कलण्डुक ! दास ! अपनी जाति और (पूर्व) निवास-स्थान को याद कर। दूध से मुँह भर, उसका कुरला कर ऊँची जाति-वाली सुख में पली हुई सेठ की कन्या के सिर पर मत थूक। तू अपनी हैसियत को नहीं देखता ?" फिर यह गाथा कही—

ते देसा तानि वत्थूनि अहञ्च वनगोचरो,
अनुविच्च खो तं गण्हेय्युं पिव खीरं कलण्डुक ॥

[वह देश और वस्तुएँ (=कोख)। मैं वनचर पक्षी। तुझे पहचान कर पकड़ लेंगे। कलण्डुक दूध पी।]

ते देसा तानि वत्थूनि, यह माता की कोख के बारे में कहा है। भावार्थ यह है—जहाँ तू रहा है वह क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नहीं रही है, अथवा जहाँ तू प्रतिष्ठित रहा है वह भी क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नहीं रही है। तू दासी की कोख में रहा और प्रतिष्ठित हुआ। अहञ्च वन गोचरो—मैं तिरश्चीन योनि में पैदा होकर भी यह सब जानता हूँ, यह प्रकट करता है। अनुविच्च खो तं गण्हेय्युं, इस प्रकार अनाचार करते हुए को देख जब मैं जाकर कहूँगा तो पहचानकर वह तेरे स्वामी आकर तुझे ताड़कर और दाग देकर पकड़ कर ले जायेंगे। इसलिए अपनी हैसियत देखकर सेठ की लड़की के सिर पर बिना थूके हुए पिव खीरं कलण्डुक, नाम से सम्बोधन करता है कि (हे कलण्डुक दूध पी)।

कलण्डुक ने भी तोते के बच्चे को पहचानकर 'यह मुझे प्रकट कर रहा है' सोच भयभीत हो कहा—आइए ! स्वामी ! कब आए ? तोते के बच्चे ने सोचा यह मेरा हित चिन्तक होकर नहीं बुला रहा है। यह मेरी गरदन मरोड़कर मार डालना चाहता है। यह समझकर कहा कि मुझे तुझसे काम नहीं है।

तब वह उड़कर वाराणसी गया और जैसे जैसे देखा था सेठ को विस्तार-पूर्वक सब कहा।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश द्वारा लोक में जो बहुत सी अच्छी बुरी मान्यताएँ हैं उन सबका अप्रामाणिक होना प्रकाशित करके जातक का मेल बैठाया।

उस समय का तलवार के लक्षण पहचाननेवाला तो यह अब का तलवार के लक्षण पहचाननेवाला ही था। हाँ भानजा-राजा मैं ही था।

१२७. कलण्डुक जातक

"ते देसा तानि वत्थूनि..." यह (धर्मदेशना) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बकवादी भिक्षु के बारे में कही। दोनों कथाएँ (अतीत कथा तथा वर्तमान कथा) कटाहक जातक[1] की कथा की तरह ही हैं।

हाँ, इस जातक में वाराणसी के सेठ का नाम कलण्डुक था। उसके भाग कर प्रत्यन्त सेठ की लड़की से विवाह कर बड़े ठाट-बाट के साथ रहने के समय, वाराणसी के सेठ के उसे ढुँढवाने पर भी उसके न मिलने पर, वाराणसी सेठ ने अपना पाला-पोसा एक तोते का बच्चा भेजा कि जा कलण्डुक को खोज। तोते का बच्चा इधर-उधर घूमता हुआ उस नगर में पहुँचा।

उस समय कलण्डुक जल-क्रीडा करने की इच्छा से बहुत सारे माला-गन्ध-विलेपन तथा खाद्य-भोज्य ले नदी पर जा सेठ कन्या के साथ एक नौका पर बैठ पानी में खेलता था। उस देश में ऐश्वर्यशाली लोग जब जल-क्रीडा करते तो कोई तेज औषध मिला हुआ दूध पीते थे। उससे उनके सारा दिन भी जल में क्रीडा करते रहने पर उन्हें शीत नहीं लगता था। यह कलण्डुक उस दूध से मुँह भर उससे कुरला कर उसे थूक देता, लेकिन उसे जल में न थूककर उस सेठ-कन्या के सिर पर थूकता था।

---

[1] कटाहक जातक (१२५)।

उस तोते के बच्चे ने भी नदी के किनारे एक गूलर की शाखा पर बैठ कलण्डुक को पहचान लिया और देखा कि वह सेठ-कन्या के सिर पर थूक रहा है। उसने कहा—"अरे! कलण्डुक! दास! अपनी जाति और (पूर्व) निवास-स्थान को याद कर। दूध से मुंह भर, उसका कुरला कर ऊँची जाति-वाली सुख मे पली हुई सेठ की कन्या के सिर पर मत थूक। तू अपनी हैसियत को नहीं देखता?" फिर यह गाथा कही—

ते देसा तानि वत्थूनि अहञ्च वनगोचरो,
अनुविच्च खो त गण्हेय्यु पिव खीर कलण्डुक॥

[वह देश और वस्तुएँ (=कोख)। मैं वनचर पक्षी। तुझे पहचान कर पकड लेंगे। कलण्डुक दूध पी।]

ते देसा तानि वत्थूनि, यह माता की कोख के बारे मे कहा है। भावार्थ यह है—जहाँ तू रहा है वह क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नहीं रही है, अथवा जहाँ तू प्रतिष्ठित रहा है वह भी क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नही रही है। तू दासी की कोख मे रहा और प्रतिष्ठित हुआ। **अहञ्च वन गोचरो**—मैं तिरश्चीन योनि में पैदा होकर भी यह सब जानता हूँ, यह प्रकट करता है। **अनुविच्च खो त गण्हेय्यु,** इस प्रकार अनाचार करते हुए को देख जब मैं जाकर कहूँगा तो पहचानकर वह तेरे स्वामी आकर तुझे ताडकर और दाग देकर पकड कर ले जायेंगे। इसलिए अपनी हैसियत देखकर सेठ की लडकी के सिर पर बिना थूके हुए पिव खीर कलण्डुक; नाम से सम्बोधन करता है कि (हे कलण्डुक दूध पी)।

कलण्डुक ने भी तोते के बच्चे को पहचानकर 'यह मुझे प्रकट कर रहा है' सोच भयभीत हो कहा—आइए! स्वामी! कब आए? तोते के बच्चे ने सोचा यह मेरा हित चिन्तक होकर नही बुला रहा है। यह मेरी गरदन मरोडकर मार डालना चाहता है। यह समझकर कहा कि मुझे तुमसे काम नहीं है।

तब वह उडकर वाराणसी गया और जैसे जैसे देखा था सेठ को विस्तार-पूर्वक सब कहा।

सेठ बोला—उसने अनुचित किया। और आज्ञा दे उसे बाराणसी मँगवा दास बनाकर रक्खा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कलण्डुक यह भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१२८. बिळारवत जातक

"यो वे धम्म धज कत्वा .." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे म कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उसके ढोंग की चर्चा चलने पर 'भिक्षुओ, केवल अब ही नही, पहले भी यह ढोंगी ही रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने चूहे का जन्म ग्रहण किया। बडे होने पर वह बढ़कर सूअर के बच्चे की तरह हो अनेक सौ चूहो के साथ जगल म रहने लगा।

इधर उधर घूमते हुए एक शृगाल ने उस चूहो के समूह को देखकर सोचा कि इन चूहो को ठगकर खाऊँगा। यह सोच वह चूहो के बिल मे थोडी ही दूर पर सूर्याभिमुख हो, मुँह खोल हवा पीते हुए की तरह एक ही पाँव से खडा हुआ।

इधर उधर भोजन के लिए ढूँढ़ते हुए बोधिसत्व ने उसे देख सोचा यह सदाचारी होगा और उसके पास जाकर पूछा—

"आपका, भन्ते ! क्या नाम है ?"

"मेरा नाम है धार्मिक ।"

"चारो पैर पृथ्वी पर न रख, एक ही पैर से क्या खडे है ?"

"मेरे चारो पैर पृथ्वी पर रखने से पृथ्वी के लिए दूभर होगा, इस लिए एक ही पैर से खडा होता हूँ ।"

"मुँह खोले क्यो खडे है ?"

"हम हवा के अतिरिक्त और कुछ नही खाते ?"

"सूर्य्य की ओर मुंह करके क्यो खडे है ?"

'सूर्य्य को नमस्कार कर रहा हूँ ।"

बोधिसत्त्व ने सोचा, यह सदाचारी है। उसके बाद से चूहो के समूह के साथ प्रात साय उसकी सेवा में जाने लगे।

उसकी सेवा कर लौटने के समय शृगाल सबसे पिछले चूहे को पकडकर मास खा, निगल कर, मुंह पोछ खडा हो जाता। क्रम से चूहो का दल कम पड गया। चूहे सोचने लगे कि पहले हम यह बिल पर्य्याप्त नही होता था, सट सट कर खडे होते थे, अब खुलकर खडे होते है तब भी बिल नही भरता। क्या मामला है ? उन्होने बोधिसत्त्व से सारा हाल कहा।

बोधिसत्त्व ने 'चूहे किस कारण कम हो गए' सोचते हुए शृगाल पर शक किया। फिर जाँच करने के लिए (शृगाल की) सेवा (से लौटने) के समय बाकी चूहो को आगे कर स्वय पीछे रहा। शृगाल उस पर उछला। अपने को पकडने के लिए शृगाल को उछलता देख बोधिसत्त्व ने रुककर कहा—

भो शृगाल ! तेरा यह व्रत धार्मिक नही है। तू दूसरो की हिंसा करने के लिए ही धर्म को आगे करके रहता है। इतना कह यह गाथा कही—

यो वे धम्म धजं कत्वा निगूळ्हो पापमाचरे,

विस्सासयित्वा भूतानि बिळार नाम त वत ॥

[जो धर्म की ध्वजा बनाकर, प्राणियो म विश्वास उत्पादन कर छिप कर पाप करता है, उसका व्रत बिल्ला-व्रत है।]

यो वे, क्षत्रिय आदियो में कोई भी। **धम्म धज कत्वा**, दस कुशल धर्मों की ध्वजा बनाकर, उन्हे करता हुआ उठाकर दिखाता हुआ, **विस्सासयित्वा**, यह

सदाचारी है, ऐसा विश्वास पैदा करके बिळार नाम त वत, इस प्रकार धर्म की ध्वजा बनाकर छिपकर पाप करनेवाले का व्रत ढोंग कहलाता है।

चूहों के राजा ने इस प्रकार कहते ही कहते उछलकर उसकी गरदन पर चढ, ठोडी के नीचे की अन्दर की गले की नाली को डसकर गले की नली को फाड मार डाला। चूहों के दल ने एक बार शृगाल को मुर मुर करके खा डाला। पहले आए हुओं को ही शृगाल का मांस मिला, पीछे आए हुओं को नहीं मिला। उसके बाद से चूहों का दल निर्भय हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का शृगाल यह ढोंगी भिक्षु था। चूहों का राजा तो मैं ही था।

१२९. अग्गिक जातक

"नाय सिखा पुञ्ञहेतु ." यह *(गाथा)* भी शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के ही बारे में कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व चूहों के राजा हो जगल में रहते थे।

एक शृगाल जगल में आग लगने पर जब भागने में असमर्थ रहा, तो एक वृक्ष से सिर टिकाकर खडा हो गया। उसके सारे शरीर के बाल जल गए। वृक्ष से लगे हुए सिर पर शिखा की तरह से कुछ बाल बच गए। उसने एक दिन एक पर्वतीय तालाब में पानी पीते हुए अपनी छाया के साथ शिखा को देखकर सोचा अब मुझे पूंजी मिल गई। फिर जगल में घूमते हुए चूहों के बिल

न खा पाएगा। अथवा हमारे साथ तुम्हारा रहना बन्द हुआ; अब हम तेरे साथ न बसेंगे। शेष पहले ही की तरह से है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय भी शृगाल यही भिक्षु था। चहों का राजा तो मैं ही था।

१३०. कोसिय जातक

"यथावाचाव भुञ्जस्सु..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती-निवासी एक स्त्री के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक श्रद्धालु ब्राह्मण उपासक की ब्राह्मणी थी; बहुत दुश्चरित्र, पापिन। रात को दुराचार करती। दिन में कुछ न कर रोग का बहाना बना बडबडाती हुई लेट रहती।

वह ब्राह्मण उससे पूछता—"भद्रे! तुझे क्या कष्ट है?"

"मुझे वायु बींधती है।"

"तो तुझे क्या क्या चाहिए?"

"चिकने, मीठे, अच्छे, स्वादिष्ट यागु-भात-तैल आदि।"

जो जो वह इच्छा करती, ब्राह्मण ला लाकर देता। दास की तरह सब काम करता। लेकिन वह ब्राह्मण के घर आने के समय लेट रहती, बाहर जाने के समय जारों के साथ गुजारती। ब्राह्मण सोचता कि इसके शरीर में चुभनेवाली वायु का अन्त ही होता दिखाई नहीं देता।

एक दिन वह गन्ध माला आदि ले जेतवन जा शास्ता की वन्दना तथा पूजा

कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—"क्यों ब्राह्मण दिखाई नहीं देता ?"

"भन्ते ! मेरी ब्राह्मणी के शरीर को वायु बाँधती है। सो मैं उसके लिए घी-तेल तथा अच्छे अच्छे भोजन खोजता हूँ। इससे शरीर मोटा गया है। चमड़ी निखर आई है। लेकिन वात-रोग का अन्त होता नहीं दिखाई देता। मैं उसकी सेवा में ही लगा रहता हूँ। इसी लिए यहाँ आने का अवसर नहीं मिलता।"

शास्ता ने ब्राह्मणी के दुश्चरित्र होने की बात जान कहा—"ब्राह्मण ! इस प्रकार पड़ी हुई स्त्री के रोग के न शान्त होने पर पूर्व-जन्म में भी तुझे बुद्धिमानों ने बताया था कि यह यह औषधि करनी चाहिए, लेकिन यह पूर्व-जन्म की बात होने के कारण तू उस पर ध्यान नहीं देता।"

उस ब्राह्मण के पूछने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मणों के एक बड़े कुल में पैदा हुए। सयाने होने पर तक्षशिला जा, वहाँ सब विद्याएँ सीख लौटकर बनारस में प्रसिद्ध आचार्य हुए। एक सौ राज-धानियों के क्षत्रिय ब्राह्मण कुमार प्रायः उसी के पास विद्याएँ सीखते।

एक जनपदवासी ब्राह्मण ने बोधिसत्व से तीनों वेद और अट्ठारह विद्याएँ सीखीं। वह वाराणसी में ही बस कर प्रतिदिन दो तीन बार बोधिसत्व के पास आता। उसकी ब्राह्मणी दुश्चरित्र थी, पापिन थी। शेष सारी कथा वर्तमान कथा ही की तरह है। हाँ, बोधिसत्व ने यह सुन कि 'इस कारण से उपदेश सुनने आने का समय नहीं मिलता' और यह समझकर कि यह लड़की उसे धोखा देकर लेट रहती है, उसके अनुकूल औषधि बताने का विचार कर कहा—

"तात ! अब से तू उसे दूध, घी, रस आदि मत दे। गोमूत्र में त्रिफला आदि और पाँच प्रकार के पत्ते रखकर उनका काढ़ा बनाकर औषधि में ताँबे की गन्ध आने तक ताँबे के नए बर्तन में रख रस्सी, जोत या किसी वृक्ष की ही लता ले उसे जाकर कहना—यह तेरे रोग के लिए उचित दवाई है। या तो इसे पी; नहीं तो जो भोजन तू करती है उसके अनुसार काम कर। और यह गाथा भी कहना। यदि दवाई न पीए तो उसे रस्सी से या जोत से अथवा लता से वृक्ष

प्रहार लगाकर, केशों से पकड़कर, खींचकर कोहनी से पीटना। उसी समय उठकर वह काम करने लगेगी।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर कथनानुसार औषधि बना कहा—भद्रे! यह औषधि पी।'

"यह औषधि तुझे किसने कही?"

"आचार्य्य ने, भद्रे!"

"इसे ले जाओ, नहीं पीऊँगी।"

ब्राह्मण ने कहा, तू स्वेच्छा से नहीं पीएगी। रस्सी लेकर बोला, या तो रोग के अनुसार दवाई पी अथवा यवागु-भात के अनुसार काम कर।

इतना कह यह गाथा कही—

> यथावाचाव भुञ्जस्सु यथाभुत्तञ्च ब्याहर,
> उभयं ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये॥

[जैसे कहती है, वैसे दवाई पी, अथवा जैसे खाती है वैसे काम कर,। कोसिये! तेरी वाणी और तेरे भोजन का मेल नहीं बैठता।]

ली। अब मैं ऐसा नहीं कर सकती। आचार्य्य के प्रति गौरव होने से उसने पाप-कर्म करना छोड दिया और शीलवान् हो गई।

उस ब्राह्मणी ने भी सोचा कि अब मुझे सम्यक् सम्बुद्ध ने जान लिया। उसने भी फिर शास्ता के प्रति गौरव का भाव होने से दुराचार नहीं किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-पत्नी अब के पति-पत्नी थे। आचार्य्य मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१४. असम्पदान वर्ग

१३१. असम्पदान जातक

"असम्पदानेनितरीतरस्स..." यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु धर्मसभा में बैठे बातचीत कर रहे थे—आयुष्मानो! देवदत्त अकृतज्ञ है। तथागत के सद्गुणो को नही जानता। शास्ता न आकर पूछा—

"भिक्षुओ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नही है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है।"

—इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल मे मगधदेश के राजगृह नगर में किसी मगधनरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस (राजा) के ही सेठ थे। उनके पास अस्सी करोड धन था। नाम था सङ्खसेठ। वाराणसी में भी पिळिय सेठ नामक सेठ था। उसके पास भी अस्सी करोड धन था। वे दोनो परस्पर मित्र थे।

उनमें से वाराणसी के पिळिय सेठ को किसी कारण से कोई खतरा आ पडा। तमाम जायदाद नष्ट हो गई। वह दरिद्र हो गया। आश्रयरहित

रह गया। तब वह अपनी स्त्री को ले, सङ्खसेठ के पास आने के विचार से वाराणसी से निकल पैदल ही राजगृह पहुँच सङ्खसेठ के घर गया।

उसने उसे देखते ही 'मेरा मित्र आया है' पहचान गले मिल आदर सत्कार करवाया। फिर कुछ दिन बिताकर पूछा—"मित्र कैसे आए ?"

"सौम्य, मुझ पर खतरा आ पडा। मेरा सब धन नष्ट हो गया। मुझे सहारा दे।"

"मित्र, अच्छा डरें मत" कह उसने खजाना खुलवा चालीस करोड हिरण्य दिलवा उसके साथ अपने पास जो कुछ भी वस्त्र आदि तथा जानदार और बेजान वस्तु थी सभी बाँटकर आधी आधी दी। वह उस धन को ले फिर वाराणसी लौट रहने लगा।

आगे चलकर सङ्खसेठ पर भी वैसा ही खतरा आ पडा। उसने अपने लिए सहारा ढूँढते हुए सोचा—मैंने अपने मित्र का बहुत उपकार किया। आधी जायदाद दे दी। वह मुझे देखकर त्यागेगा नहीं। मैं उसके पास चलूँ।

उसने अपनी स्त्री के साथ पैदल ही बाराणसी पहुँचकर कहा—भद्रे, तेरे लिए यह अच्छा नहीं है कि तू मेरे साथ गली गली भटके। मैं जाकर सवारी भेजूँगा, तू पीछे उस पर बडे ठाट से आना। उसे एक शाला में बिठा स्वय नगर में दाखिल हुआ। सेठ के घर पहुँच सूचना भिजवाई कि राजगृह से तुम्हारा मित्र आया है। सेठ बोला—आ जाए। उसे देखकर न वह आसन से उठा न स्वागत ही किया, केवल इतना पूछा—"क्यो आया है ?"

"तुम्हें देखने आया हूँ।"

"निवास स्थान कहाँ ठीक किया है ?"

"अभी कही ठीक नही हुआ है। सेठानी को शाला में बिठाकर आया हूँ।"

"यहाँ तुम्हारे ठहरने को जगह नही। सीधा लेकर किसी जगह पका खाकर चले जाओ। फिर मेरे पास न आना"—इतना कह अपने एक दास को आज्ञा दी कि मेरे मित्र के पल्ले में एक तूम्बा भर भूसा बाँध दो।

उसी दिन उसने एक हजार गाडी लाल चावल छटवाकर कोठे भरे थे। चालीस करोड धन लेकर आए अकृतज्ञ महाचोर ने मित्र को केवल एक तूम्बा भर भुस दिलवाया। दास एक टोकरी मे तूम्बा भर भुस डाल बोधिसत्व के पास गया।

बोधिसत्व ने सोचा—यह असत्पुरुष मेरे पास से चालीस करोड़ धन पाकर अब तूम्बा भर भूसा दे रहा है। इसे लूँ अथवा न लूँ? उसे विचार हुआ—यह तो अकृतज्ञ है, मित्रद्रोही है, कृत उपकार को भूलकर इसने मेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध तोड़ डाला है। यदि मैं इसका दिया तूम्बा भर भूसा बुरा होने के कारण नही ग्रहण करता हूँ, तो मैं भी मैत्री सम्बन्ध को तोड़नेवाला होता हूँ। इसलिए मैं इसके दिए तूम्बा भर भूसे को ग्रहण कर अपनी ओर से मैत्री-भाव की प्रतिष्ठा करूँगा।

उसने तूम्बा भर भूसे को अपने पल्ले मे बाँध लिया और महल से उतर शाला को गया।

स्त्री न पूछा—आर्य्य, तुम्हें क्या मिला?

"भद्रे! हमारे मित्र पिळिय सेठ ने हमें तूम्बा भर भूसा दे आज ही बिदा कर दिया।"

उसने रोना आरम्भ किया—आर्य्य! इसे लिया ही क्यो? क्या चालीस करोड़ धन का बदला यही है?

बोधिसत्व ने कहा—भद्रे, रो मत। मैंने अपनी ओर से मैत्री-सम्बन्ध न टूटने देने के लिए, अपनी ओर से उसे बनाए रखने के लिए ग्रहण किया है। तू क्यों सोच करती है।

—इतना कह यह गाथा कही—

असम्पदानेनितरीतरस्स
बालस्स मित्तानि कली भवन्ति,
तस्मा हरामि भुसं अड्ढमानं
मा मे मित्ति जीयित्थ सस्सतायं॥

[ऐसी वैसी वस्तु स्वीकार न करने से मूर्ख आदमी के मित्र मित्र नहीं रहते। इसीलिए मैं अर्धमान भूसा ले आया हूँ। मेरा मैत्री-सम्बन्ध न टूटे। वह शाश्वत बना रहे।]

असम्पदानेन, परस्पर का लोप होकर सन्धि हुई है, अर्थ है ग्रहण न करने से। इतरीतरस्स, जिस किसी अच्छी बुरी चीज के। बालस्स मित्तानि कली भवन्ति, मूढ, अप्रज्ञावान् के मित्र स्खलित हो जाते हैं, मनहूस से हो जाते हैं,

मतलब टूट जाते हैं। तस्मा हरामि भुसं अडठमानं, इसी कारण से प्रकट करता हूँ कि मैं मित्र का दिया हुआ तूम्बा भर भुस ले आया हूँ। आठ नाळि को मान कहते हैं। चार नाळियों को अर्ध-मान; और चार ही नाळियों को तूम्बा; इसी लिए यहा तूम्बा भर भूसा। मा मे मित्ति जीयित्य सस्मलाय, मेरे मित्र से मेरा मैत्री भाव न टूटे। हमेशा बना रहे।

ऐसा कहने पर भी सेठानी रोती ही रही। उसी समय सङ्खसेठ द्वारा पीळिय सेठ को दिया गया एक दास शाला के दरवाजे के पास से गुजर रहा था। उसने सेठानी के रोने की आवाज सुनी। अन्दर जाकर जब उसने देखा कि उसके स्वामी हैं तो पैरों पर गिर पडा और रोने-चिल्लाने लगा। उसने पूछा—"स्वामी ! यहाँ कैसे आए ?" सेठ ने सब हाल कह दिया। दास बोला —स्वामी, हो, चिन्ता न करें। इस प्रकार दोनो को दिलासा दे अपने घर ले गया। वहाँ सुगन्धित जल से नहलाया, खिलाया। फिर अन्य सब दासों को खबर कर दी कि स्वामी आए हैं। कुछ दिन बिताकर सभी दासों को साथ ले वह राजा के यहाँ पहुँचा और शोर किया।

राजा ने बुलवाकर पूछा—यह क्या है ?

उन्होने यह सब हाल राजा को कह दिया। राजा ने उनकी बात सुन दोनों सेठों को बुलवा सङ्खसेठ को पूछा—

"महासेठ ! क्या तूने सचमुच पिळिय सेठ को चालीस करोड धन दिया ?"

"महाराज ! मेरी आशा लगा जब मेरा मित्र मेरे पास राजगृह आया तो मैंने उसे न केवल चालीस करोड धन ही दिया बल्कि जितना भी मेरे पास धन था, चाहे जानदार चाहे बेजान सभी के दो बराबर हिस्से कर एक हिस्सा दिया।"

राजा ने पिळिय सेठ से पूछा—क्या यह सच है ?

"देव ! हाँ ठीक है।"

"तेरी ही आशा लगाकर तेरे पास आनेपर तूने भी इसका कोई सत्कार सम्मान किया ?"

वह चुप रहा।

"तूने तूम्बा भर भूसा इसके पल्ले में डलवाकर दिया है ?"

उसे भी सुनकर वह चुप ही रहा।

राजा ने मन्त्रियों के साथ सलाह करके कि क्या करना चाहिए, सेठ की निन्दा कर आज्ञा दी—जाओ, पिळिय सेठ के घर में जितना धन है, वह सब सङ्ख सेठ को दे दो।

बोधिसत्त्व ने कहा—महाराज ! मुझे पराया धन नहीं चाहिए। जितना धन मैंने दिया है, उतना ही दिलवा दें।

राजा ने बोधिसत्त्व का धन दिलवा दिया।

बोधिसत्त्व ने अपना दिया हुआ सब धन ले दास-समूह सहित राजगृह जाकर कुटुम्ब बसाया। फिर दान आदि पुण्य कर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिळिय सेठ देवदत्त था। सङ्खसेठ तो मैं ही था।

१३२. पञ्चगरुक जातक

"कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अजपाल न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे मार-कुमारियों द्वारा प्रलोभित किए जाने के सूत्र के बारे में कही। भगवान् आरम्भ से ही ऐसे थे—

दद्दल्लमाना आगञ्छु तण्हा च अरती रगा,
ता तत्थ पनुदी सत्था तुलं भट्ठंव मालुतो ॥[1]

[तण्हा, अरति और रगा (मारकन्याएँ) प्रकाश फैलाती हुई आई। शास्ता ने उनको ऐसे दूर भगा दिया जैसे हवा उड़ती हुई रुई को।]

---

[1] संयुत्त-निकाय, मार-संयुत्त।

इस प्रकार उस सूत्र को अन्त तक कहने के समय धर्म-सभा म एकत्र हुए भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो, सम्यक् सम्बुद्ध के पास मारकन्याएँ सैकडो प्रकार के दिव्य रूप बनाकर लुभाने के लिए आई। लेकिन उन्होने आँख खोलकर भी नही देखा। अहो! बुद्ध-बल अद्भुत है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, इस समय मेरे सभी आश्रवो को नष्ट कर सर्वज्ञता प्राप्त किए रहने पर मार कन्याओ के न देखने में कुछ भी आश्चर्य नहीं है। पूर्व समय में बुद्धत्व प्राप्ति की खोज में लगे हुए रहने पर चित्त मैल के रहते हुए भी निर्मित दिव्य रूप को आँख उघाडकर कामुक भाव से न देख, जाकर महाराज्य प्राप्त किया था। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सौ भाइयो में सबसे छोटे थ। सारी कथा उपरोक्त तक्कसिला जातक[1] के अनुसार विस्तारपूर्वक कहनी चाहिए।

उस समय तक्षशिला नगर निवासियो ने नगर के बाहर शाला में (बैठे हुए) बोधिसत्त्व के पास जा, स्वीकृति ले उन्हें राज्य का भार सौंप अभिषेक किया। फिर उन्होने नगर को देवनगर की तरह तथा राजभवन को इन्द्रभवन की तरह अलङ्कृत किया।

उस समय बोधिसत्त्व नगर में प्रविष्ट हो राजभवन के महल के ऊँचे तल पर श्वेत छत्र के नीचे श्रेष्ठ रतन सिंहासन पर चढ देवेन्द्र की तरह बैठे। आमात्य, ब्राह्मण गृहपति आदि तथा सभी अलङ्कारो से अलङ्कृत क्षत्रियकुमार उसे घेर कर खडे थ। देव अप्सराओ के समान नृत्य-गीत तथा वाद्य में कुशल, उत्तम हाव भाव वाली सोलह हजार नर्तकियो ने गाना बजाना किया।

---

[1] तक्कसिला—तेलपत्त जातक (६६)

गाने बजाने के शब्द से सारा राजभवन ऐसा गूँज गया जैसे मेघ के शब्द से महासमुद्र की कोख भर जाए।

तब बोधिसत्त्व को विचार हुआ—यदि मैं उन यक्षिणियों के बनाए हुए दिव्य-रूप को देखता तो मैं मृत्यु को प्राप्त होता और मुझे यह वैभव न देखना मिलता। प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार चलने से मुझे इसकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार सोच उल्लास-वाक्य कहते हुए यह गाथा कही—

> कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च
> अवत्थितत्ताभयभीरुताय च,
> न रक्खसीनं वसमागमिम्हा
> स सोत्थिभावो महता भयेन मे॥

[सदुपदेश पर दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहने से, तथा भय भीरुता को मन में स्थान न देने से हम राक्षसियों के वश में नहीं आए। मैं बड़े भारी भय से बच गया (सकुशल रहा)।]

कुसलूपदेसे; समर्थ लोगों के उपदेश से; प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार (चलकर)। धितिया दळ्हाय च, दृढ़ धृति से या स्थिर अखण्डित वीर्य्य से। अवत्थितत्ताभयभीरुताय च, भय-भीरुता को मन में स्थान न देने से, भय कहते हैं चित्त का डर मात्र और भीरुता शरीर को कँपा देनेवाला भय। यह दोनों बोधिसत्त्व को यह देखकर भी कि यक्षिणियाँ मनुष्यों को खा जाती हैं—इस भय के कारण के उत्पन्न होने पर भी नहीं हुए। इसी लिए कहा है अवत्थितत्ताभयभीरुताय च। भयभीरुता के न होने से अर्थात् भयभीरुता का कारण उपस्थित होने पर भी पीछे न लौटने से। नरक्खसीनं वसमागमिम्हा, यक्ष-कान्तार में उन राक्षसियों के वश में नहीं आया। क्योंकि सदुपदेश में हमारी स्थिति स्थिर और दृढ़ थी। भयभीरुता के न होने से पीछे न लौटने वाले हुए, इसलिए राक्षसियों के वश में नहीं आए—यही भाव है। स सोत्थि भावो महता भयेन मे, सो आज मुझे यह बड़े भारी भय से, राक्षसियों से प्राप्त होनेवाले दुःख दौर्मनस्य से छुटकारा मिला, कल्याण हुआ, प्रीतिसौमनस्य-भाव पैदा हुआ।

गाने बजाने के शब्द से सारा राजभवन ऐसा गूंज गया जैसे मेघ के शब्द से महासमुद्र की कोख भर जाए।

तब बोधिसत्त्व को विचार हुआ—यदि मैं उन यक्षिणियों के बनाए हुए दिव्य-रूप को देखता तो मैं मृत्यु को प्राप्त होता और मुझे यह वैभव न देखना मिलता। प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार चलने से मुझे इसकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार सोच उल्लास-वाक्य कहते हुए यह गाथा कही—

> कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च
> अवत्थितत्ताभयभीरुताय च,
> न रक्खसीन वसमागमिम्हा
> स सोत्थिभावो महता भयेन मे॥

[सदुपदेश पर दृढता पूर्वक स्थिर रहने से, तथा भय भीरुता को मन में स्थान न देने से हम राक्षसियों के वश में नहीं आए। मैं बड़े भारी भय से बच गया (सकुशल रहा)।]

कुसलूपदेसे; समर्थ लोगों के उपदेश से, प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार (चलकर)। धितिया दळ्हाय च, दृढ धृति से वा स्थिर अखण्डित वीर्य्य से। अवत्थितत्ताभयभीरुताय च, भय-भीरुता को मन में स्थान न देने से, भय कहते हैं चित्त का डर मात्र और भीरुता शरीर को कँपा देनेवाला भय। यह दोनों बोधिसत्त्व को यह देखकर भी कि यक्षिणियाँ मनुष्यों को खा जाती हैं—इस भय के कारण के उत्पन्न होने पर भी नहीं हुए। इसी लिए कहा है अवत्थितत्ताभयभीरुताय च। भयभीरुता के न होने से अर्थात् भयभीरुता का कारण उपस्थित होने पर भी पीछे न लौटने से। नरक्खसीन वसमागमिम्हा, यक्ष-कान्तार में उन राक्षसियों के वश में नहीं आया। क्योंकि सदुपदेश में हमारी स्थिति स्थिर और दृढ थी। भयभीरुता के न होने से पीछे न लौटने वाले हुए, इसलिए राक्षसियों के वश में नहीं आए—यही भाव है। स सोत्थि भावो महता भयेन मे. सो आज मुझे यह बड़े भारी भय से, राक्षसियों से प्राप्त होनेवाले दुःख दौर्मनस्य से छुटकारा मिला, कल्याण हुआ, प्रीतिसौमनस्य-भाव पैदा हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से धर्मोपदेश कर धर्मानुसार राज्य कर दानादि पुण्य करते हुए कर्मानुसार परलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। मैं उस समय तक्षशिला जाकर राज्य प्राप्त करनेवाला कुमार था।

१३३. घतासन जातक

"**खेम यहिं...**" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु बुद्ध से **कर्मस्थान** ग्रहण कर प्रत्यन्त देश मे जा एक गाँव के पास एक आरण्यक निवासस्थान मे रहने लगा। पहले ही महीने में जब वह भिक्षा माँगने गया था, उसकी पर्णकुटी में आग लग गई। निवासस्थान के अभाव में कष्ट पाते हुए उसने उपस्थायको से कहा। वे बोले—'अच्छा, भन्ते पर्णशाला बनाएँगे। अभी तो हल जोत रहे हैं। अभी बो रहे हैं, इस प्रकार कहते कहते उन्होने तीन महीने बिता दिए।'

निवासस्थान की अनुकूलता न होने से वह भिक्षु कर्मस्थान को पूरा नही कर सका। उसे **निमित्त**[1] तक प्राप्त नही हुआ। वर्षावास की समाप्ति पर वह जेतवन गया और वहाँ शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—क्या भिक्षु! तेरा कर्मस्थान सफल

---

[1] ध्यान के विषय (object) का आँख बन्द कर लेने पर दिखाई देने वाला आकार।

गाने बजाने के शब्द से सारा राजभवन ऐसा गूंज गया जैसे मेघ के शब्द से महासमुद्र की कोख भर जाए।

तब बोधिसत्त्व को विचार हुआ—यदि मैं उन यक्षिणियों के बनाए हुए दिव्य रूप को देखता तो मैं मृत्यु को प्राप्त होता और मुझे यह वैभव न देखना मिलता। प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार चलने से मुझे इसकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार सोच उल्लास-वाक्य कहते हुए यह गाथा कही—

> कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च
> अवत्थितत्ताभयभीरुताय च,
> न रक्खसीनं वसमागमिम्हा
> स सोत्थिभावो महता भयेन मे॥

[सदुपदेश पर दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहने से, तथा भय भीरुता को मन में स्थान न देने से हम राक्षसियों के वश में नहीं आए। मैं बड़े भारी भय से बच गया (सकुशल रहा)।]

कुसलूपदेसे; समर्थ लोगों के उपदेश से, प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार (चलकर)। **धितिया दळ्हाय च**, दृढ़ धृति से या स्थिर अखण्डित वीर्य्य से। **अवत्थितत्ताभयभीरुताय च**, भय-भीरुता को मन में स्थान न देने से, भय कहते हैं चित्त का डर मात्र और भीरुता शरीर को कँपा देनेवाला भय। यह दोनों बोधिसत्त्व को यह देखकर भी कि यक्षिणियाँ मनुष्यों को खा जाती हैं—इस भय के कारण के उत्पन्न होने पर भी नहीं हुए। इसी लिए कहा है **अवत्थितत्ताभयभीरुताय च**। भयभीरुता के न होने से अर्थात् भयभीरुता का कारण उपस्थित होने पर भी पीछे न लौटने से। **नरक्खसीनं वसमागमिम्हा**, यक्ष-कान्तार में उन राक्षसियों के वश में नहीं आया। क्योंकि सदुपदेश में हमारी स्थिति स्थिर और दृढ़ थी। भयभीरुता के न होने से पीछे न लौटने वाले हुए, इसलिए राक्षसियों के वश में नहीं आए—यही भाव है। **स सोत्थि भावो महता भयेन मे** सो आज मुझयह बड़े भारी भय से, राक्षसियों से प्राप्त होनेवाले दुःख-दौर्मनस्य से छुटकारा मिला, कल्याण हुआ, प्रीतिसौमनस्य-भाव पैदा हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से धर्मोपदेश कर धर्मानुसार राज्य कर दानादि पुण्य करते हुए कर्मानुसार परलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। मैं उस समय तक्षशिला जाकर राज्य प्राप्त करनेवाला कुमार था।

१३३. घतासन जातक

"खेमं यहि..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु बुद्ध से कर्मस्थान ग्रहण कर प्रत्यन्त देश मे जा एक गाँव के पास एक आरण्यक निवासस्थान में रहने लगा। पहले ही महीने में जब वह भिक्षा माँगने गया था, उसकी पर्णकुटी में आग लग गई। निवासस्थान के अभाव में कष्ट पाते हुए उसने उपस्थायकों से कहा। वे बोले—'अच्छा, भन्ते पर्णशाला बनाएँगे। अभी तो हल जोत रहे हैं। अभी बो रहे हैं; इस प्रकार कहते कहते उन्होंने तीन महीने बिता दिए।'

निवासस्थान की अनुकूलता न होने से वह भिक्षु कर्मस्थान को पूरा नहीं कर सका। उसे निमित्त[1] तक प्राप्त नहीं हुआ। वर्षावास की समाप्ति पर वह जेतवन गया और वहाँ शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—क्यों भिक्षु! तेरा कर्मस्थान सफल

---

[1] ध्यान के विषय (object) का आँख बन्द कर लेने पर दिखाई देने वाला आकार।

हुआ ? उसने आरम्भ से लेकर प्रतिकूलता की सब बात कही। शास्ता ने कहा—भिक्षु ! पूर्व समय में जानवरों ने भी अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता देख, अनुकूल रहने पर उस जगह रह, प्रतिकूल प्रतीत होने पर उसे छोड़ दिया और दूसरी जगह चले गए। तू ने क्यों अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता न समझी ? फिर उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व पक्षी होकर पैदा हुए। बड़े होने पर सौभाग्यशाली पक्षि-राजा हो एक जंगल में एक तालाब के किनारे शाखा प्रशाखाओं से युक्त तथा बहुत पत्तोंवाले एक महान्-वृक्ष पर अनेक अनुचरों सहित रहने लगे। बहुत से पक्षी पानी पर फैली हुई शाखाओं पर रहते हुए अपनी बीट पानी में गिरा देते थे।

उस तालाब में एक प्रचण्ड नाग-राज रहता था। उसके मन में आया कि यह पक्षिगण मेरे निवासस्थान तालाब में बीट गिराते हैं। मैं पानी में से आग पैदा कर इस वृक्ष को जला इन्हें यहाँ से भगाऊँ। उसने क्रुद्ध हो रात को जिस समय सब पक्षिगण इकट्ठे हो वृक्ष की शाखाओं पर सो रहे थे, पहले चूल्हे पर रक्खे पानी की तरह बुलबुले पैदा कर, दूसरी बार धुआँ उठा, तीसरी बार ताड़ के वृक्ष जितनी ऊँची ज्वाला उठाई। बोधिसत्व ने कहा—"पक्षिगण ! आग से जलने पर पानी से बुझाया जाता है, लेकिन अब पानी ही जलने लगा है इसलिए यहाँ नहीं रह सकते। अन्यत्र चलें।" इतना कह, यह गाथा कही—

> खेमं यहिं तत्थ अरी उदीरितो
> उदकस्स मज्झे जलते घतासनो,
> न अज्ज वासो महिया महीरुहे
> दिसा भजव्हो सरणज्ज नो भयं ॥

[जहाँ कल्याण था, वहीं शत्रु पैदा हो गया। पानी में आग जलने लगी। आज पृथ्वी से उगे वृक्ष पर रहना नहीं होगा। (किसी दूसरी) दिशा को चलो। जिस जगह हम ने शरण ली थी वहाँ से भय पैदा हो गया।]

खेमं यहिं तत्थ ग्ररी उदीरित्तो, जिस पानी में हमारा कल्याण था, जहाँ निर्भयता थी, वहीं से विरोधी, शत्रु पैदा हो गया। उदकस्स, पानी के, घतासनो, ग्रग्नि। वह घृत खाती है, इसी लिए घतासन कहलाई। न ग्रज्ज वासो, ग्राज हमारा रहना नहीं है। महिया महीरुहे, महीरुह कहते हैं वृक्ष को, उस इस पृथ्वी में से पैदा हुए वृक्ष में। दिसा भजव्हो, दिशाग्रो में जाग्रो। सरणज्ज नो भय, ग्राज हमारे शरणस्थान से ही भय पैदा हो गया। ग्रनिशरणस्थान ही भय का जनक हो गया।

ऐसा कह बोधिसत्व ग्रपना कहना मानने वाले पक्षियों को लेकर ग्रन्यत्र चले गए। बोधिसत्व का कहना न मान जो पक्षिगण वहीं रहे वह मर गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला चार ग्रार्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। ग्रार्य-सत्यों के प्रकाशन के ग्रत में वह भिक्षु ग्रर्हत् हो गया।

उस समय बोधिसत्व का कहना मानने वाले पक्षिगण बुद्ध परिषद हुई। पक्षि-राजा तो मैं ही था।

१३४. झानसोधन जातक

"ये सञ्ञिनो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सङ्कस्स नगर द्वार पर सक्षेप से पूछे गए प्रश्न की धर्मसेनापति (सारिपुत्र) द्वारा विस्तृत व्याख्या के बारे में कही। ग्रतीत कथा इस प्रकार है—

ख. ग्रतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने एकान्त जंगल में मृत्यु को प्राप्त होते समय शिष्यों के पूछने पर सक्षेप से उत्तर

दिया—नेवसञ्ञानासञ्ञी....तपस्वियों को ज्येष्ठ-शिष्य की बात समझ में नहीं आई। बोधिसत्व ने आभास्वर (-लोक) से आ आकाश में ठहर यह गाथा कही—

ये सञ्ञिनो तेपि दुग्गता
येपि असञ्ञिनो तेपि दुग्गता,
एतं उभयं विवज्जय
तं समापत्तिसुखं अनङ्गणं ॥

[जो सञ्ज्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। जो असञ्ज्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। इन दोनो को छोड़कर समापत्ति सुख दोष रहित है।]

ये सञ्ञिनो, नेवसञ्ञानासञ्ञी प्राणियो को छोड शेष चित्त वाले प्राणियो से मतलब है। तेपि दुग्गता, उस समापत्ति के न होने से वह भी दुर्गति-प्राप्त है। येपि असञ्ञिनो, असञ्ञा-भव में पैदा होनेवाले चित्त-रहित प्राणियो से मतलब है। तेपि दुग्गता, वे भी इसी समापत्ति को प्राप्त किए न रहने से दुर्गति-प्राप्त हैं। एतं उभयं विवज्जय। इन दोनो सञ्ज्ञि-भाव तथा असञ्ज्ञिभाव को छोड, त्याग—यह शिष्यो को उपदेश देता है। तं समापत्ति सुखं अनङ्गणं—नेवसञ्ञानासञ्ञायतन को प्राप्त करने वालो के शान्त होने के कारण उसे सुख कहा, ध्यान सुख अङ्गण-रहित, दोष रहित होता है। चित्त की बहुत एकाग्रता होने से भी वह अङ्गण-रहित कहलाया।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश दिया। फिर शिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक गए। तब बाकी के तपस्वियो की ज्येष्ठ-शिष्य के प्रति श्रद्धा बढ़ी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठ शिष्य सारिपुत्र था; महाब्रह्मा तो मैं ही था।

१३५. चन्दाभ जातक

"चन्दाभं...", यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कङ्कस्स नगर के द्वार पर स्थविर की प्रश्न-की-व्याख्या के ही बारे में कही—

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने एकात जगल में मृत्यु को प्राप्त होने के समय शिष्यो के पूछने पर **चन्दाभं सुरियाभं** कहा। वह मरकर आभस्वर लोक में उत्पन्न हुए। तपस्वियो ने ज्येष्ठ-शिष्य की बात पर विश्वास नही किया। बोधिसत्व ने आकर आकाश में उपस्थित हो यह गाथा कही—

चन्दाभं सुरियाभञ्च योध पञ्जाय गाधति,
अवितक्केन झानेन होति आभस्सरूपगो ॥

[जो प्रज्ञा से सूर्य्याभा तथा चन्द्राभा पर स्थिर होता है। वह वितर्क-रहित ध्यान से आभस्वर-लोक में उत्पन्न होता है।]

चन्दाभं का मतलब है श्वेत-कसिण। **सुरियाभं** का पीत-कसिण। **योध पञ्जाय गाधति,** जो आदमी इस ससार में इन दोनो कसिनों की प्रज्ञा से भावना करता है, उन्हें आलम्बन बनाकर उनमें प्रवेश करता है, उनमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा **चन्दाभं सुरियाभञ्च योध पञ्जाय भावति,** जहाँ तक सूर्य्य तथा चन्द्रमा की आभा फैली है, उस सारे स्थान में परिभाग-कसिन[1] को बढाकर उसी को आलंबन बनाकर ध्यान का अभ्यास करनेवाला दोनों आभाओ की प्रज्ञा से भावना करता है। इसलिए यह भी ठीक अर्थ है। **वितक्केन झानेन होति**

---

[1]परिभाग-कसिण=पटिभाग निमित्त (अभिधम्मत्थ संगहो ६।१८)

ग्राभस्सरूपगो, वह मनुष्य वैसा अभ्यास करने से द्वितीय-ध्यान को प्राप्त हो ग्राभस्वर-ब्रह्मलोक को प्राप्त होता ही है।

इस प्रकार बोधिसत्व तपस्वियों को समझाकर तथा ज्येष्ठ शिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठ शिष्य सारिपुत्र थे और महाब्रह्मा तो मैं ही था।

१३६. सुवण्णहंस जातक

"यं लद्ध तेन तुट्ठब्ब...", यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय थुल्ल नन्दा भिक्षुणी के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक उपासक ने भिक्षुणी संघ को लहसुन लेने का निमन्त्रण दिया और अपने खेत वाले को आज्ञा दी कि यदि भिक्षुणियाँ आएँ तो एक एक भिक्षुणी को दो तीन गाठ लहसुन दे। उसके बाद से भिक्षुणियाँ उसके घर भी और खेत पर भी लहसुन के लिए जाने लगीं।

एक उत्सव के दिन उस (उपासक) के घर में लहसुन समाप्त हो गया। थुल्लनन्दा भिक्षुणी औरों को साथ ले घर गई और बोली—आयुष्मानो, लहसुन की आवश्यकता है।

—आर्ये, लहसुन नहीं है। लाया हुआ समाप्त हो गया। खेत पर जाएँ।

वह खेत पर गई और बेअन्दाज लहसुन लिवा लाई।

खेत वाला खीझा—यह क्या है कि भिक्षुणियाँ अन्दाज न कर बे अदाज लहसुन ले जाती हैं।

उसे यह कहता सुन जो अल्पेच्छ भिक्षुणियाँ थी वह असन्तुष्ट हुई और उनसे सुनकर भिक्षु भी असन्तुष्ट हुए। उन्होंने जाकर भगवान् से यह बात कही। भगवान् ने थुल्लनन्दा भिक्षुणी की निन्दा कर कहा—

"भिक्षुओ, लालची (=महेच्छ) आदमी जिस माँ ने जन्म दिया है, उसके लिए भी अप्रिय हो जाता है। वह अप्रसन्न को प्रसन्न नहीं कर सकता। प्रसन्नों को अधिक प्रसन्न नहीं कर सकता। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता। प्राप्त वस्तु को सँभाल कर नहीं रख सकता। अल्पेच्छ आदमी अप्रसन्नों को प्रसन्न कर सकता है। प्रसन्नों को अधिक प्रसन्न कर सकता है। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त कर सकता है। प्राप्त वस्तु को बनाए रख सकता है।" —इस प्रकार भिक्षुओं को उनके योग्य उपदेश दे फिर कहा 'भिक्षुओ, थुल्लनन्दा अभी लोभी नहीं है, पहले भी लोभी ही रही है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनके बड़े होने पर उनके समान जाति-कुल से उन्हें एक भार्य्या ला दी गई। उससे उसे नन्दा, नन्दवती और नन्दसुन्दरी तीन लड़कियाँ हुई। उनका विवाह होने से पूर्व ही बोधिसत्व मर कर स्वर्ण-हंस होकर पैदा हुए। उन्हें पूर्व-जन्म-स्मृति का ज्ञान भी रहा।

उसने बड़े होने पर सोने के परों से ढके हुए परम सौभाग्यवान् अपने शरीर को देखकर विचार किया कि मैं कहाँ से मरकर यहाँ पैदा हुआ हूँ? उसे मालूम हुआ कि मनुष्य-लोक से। फिर विचार किया कि ब्राह्मणी और लड़कियों का जीवन-यापन कैसे होता है? उसे पता लगा कि दूसरों की मजदूरी करके बड़े कष्ट से जीवन-यापन करती है। तब उसने सोचा कि मेरे शरीर के पर ठोस[1] हैं। इनमें से मैं एक एक पर उन्हें दूँ। इस से मेरी भार्य्या और लड़कियाँ सुखपूर्वक जीएँगी।" वह वहाँ पहुँच कर के शहतीर के एक सिरे पर बैठ।

---

[1] कूटे और रगड़े जा सकते हैं।

ब्राह्मणी और लड़कियों ने बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—स्वामी, कहाँ से आए ?

"मैं तुम्हारा पिता हूँ। मरकर स्वर्ण हंस होकर पैदा हुआ हूँ। तुम्हें देखने के लिए आया हूँ। इसके बाद तुम्हें दूसरों की मजदूरी करते हुए कष्ट-पूर्वक जीवन-यापन करने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें अपना एक एक पर दिया करूँगा। उसे बेच-बेच कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना।"

इतना कह वह एक पर देकर उड़ गया। इसी प्रकार वह बीच बीच में आकर एक एक पर देता। ब्राह्मणियाँ धनी और सुखी हो गईं।

एक दिन उस ब्राह्मणी ने लड़कियों से बुलाकर सलाह की—'अम्म ! जानवरों के दिल का पता नहीं। हो सकता है कि कभी तुम्हारा पिता न आए। इसलिए उसके इस बार आने पर हम उसके सभी पर उखाड़ लें।'

उन्होंने अस्वीकार किया। वे बोलीं—इस प्रकार हमारे पिता को कष्ट होगा।

ब्राह्मणी ने लालची होने के कारण फिर एक दिन स्वर्ण-राजहंस के आने पर कहा—स्वामी आएँ।

जब उसने देखा कि वह उसके पास आ गया है, तो दोनों हाथों से पकड़कर उसके सब पर नोच लिए। सभी पर बोधिसत्त्व की इच्छा के बिना जबर्दस्ती लिए जाने के कारण बगले के पंख सदृश हो गए।

अब बोधिसत्त्व पंख पसारकर उड़ न सके। उसने उन्हें मटके में रखकर पाला। उनके जो नए पर निकले वह श्वेत ही निकले। पंख निकलने पर वह उड़कर अपने स्थान पर चले आए, और फिर वहाँ नहीं गए।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात सुनाकर कहा—भिक्षुओ, थुल्लनन्दा अभी लालची नहीं रही है। पहले भी लालची रही है। लालच के ही कारण स्वर्ण से हाथ धोया। अब अपने लालच के कारण लहसुन से भी हाथ धोएगी। इसके बाद अब लहसुन खाना न मिलेगा। जैसे थुल्लनन्दा को वैसे ही उसके कारण दूसरी भिक्षुणियों को भी। इस लिए बहुत मिलने पर भी अपना [illegible] जानना चाहिए। थोड़ा मिलने पर जितना मिले उसी से सन्तोष [illegible] चाहिए। अधिक की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

इतना कह यह गाथा कही—

य लद्ध तेन तुट्ठब्बं अतिलोभो हि पापको,
हंसराजं गहेत्वान सुवण्णा परिहायथ ॥

[जो मिले उससे संतुष्ट रहना चाहिए। अतिलोभ करना पाप है। हंसराज को पकड़कर स्वर्ण से हाथ धोया।]

तुट्ठब्बं का मतलब है संतोष करना चाहिए।

इतना कह शास्ता ने अनेक प्रकार से निन्दा कर नियम बना दिया कि जो भिक्षुणी लहसुन खाए उसे पाचित्तिय (-दोष) लगे।[1]

फिर जातक का मेल बैठाया। उस समय की ब्राह्मणी यह थुल्लनन्दा हुई। तीन लड़कियाँ इस समय की तीन बहनें। स्वर्ण-राजहंस तो मैं ही था।

१३७. बब्बु जातक

"यत्थेको लभते बब्बु...", शास्ता ने इसे जेतवन में विहार करते समय काणमाता के शिक्षा-पद[2] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में अपनी कानी लड़की के कारण काण माता कहलाने वाली एक स्रोतापन्न आर्य-श्राविका थी। उसने अपनी कानी लड़की को एक गामड़े

---

[1] भिक्खुणी-पातिमोक्ख।

[2] पाचित्तिय के भोजन-वर्ग का चौथा शिक्षापद।

में समान जाति के किसी आदमी को दिया। काणा किसी काम से माँ के घर आई।

कुछ दिन बीतने पर उसके स्वामी ने दूत भेजा—मैं चाहता हूँ कि काणा आवे। काणा चली आवे।

काणा ने दूत की बात सुन, माँ से पूछा—माँ! जाती हूँ।

काण-माता ने सोचा कि इतने दिन रहकर खाली हाथ कैसे जाएगी, इस लिए पुए पकाने लगी।

उस समय एक पिण्डपातिक[1] भिक्षु उसके घर आया। उपासिका ने उसे बिठाकर पात्रभर पुए दिलवाए। उसने निकल दूसरे (भिक्षु) से कहा। उसे भी वैसे दिलवाए। उसने भी निकलकर दूसरे से कहा। उसे भी वैसे ही। इस प्रकार चार जनों को पुए दिलवाए। सब तैयार पुए समाप्त हो गए। काणा का जाना नहीं हुआ।

उसके स्वामी ने दूसरा दूत भेजा और दूसरे के बाद तीसरा भेजा। तीसरे दूत के हाथ उसने कहला भेजा कि यदि काणा नहीं आएगी तो मैं दूसरी भार्या ले आऊँगा। तीनों बार उसी तरह जाना न हो सका। काणा का स्वामी दूसरी स्त्री ले आया। काणा ने जब यह सुना तो रोने लगी।

शास्ता को पता लगा तो पहन कर पात्र-चीवर ले काण-माता के घर जा बिछे आसन पर बैठकर पूछा—

"यह क्यों रोती है?"

"इस कारण से।"

शास्ता ने धर्मकथा कह काण-माता को दिलासा दिया। फिर उठकर विहार को गए।

उन चार भिक्षुओं को तीन बार तैयार पुए ले आकर काणा के गमन में बाधक होने की बात भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! चार

---

[1] जो भिक्षु केवल भिक्षा से ही निर्वाह करता है, निमन्त्रण आदि ग्रहण नहीं करता।

नक्षु तीन बार काण-माता के यहाँ तैयार किए सब पुए खा गए। इससे काणा ा जाना रुक गया। स्वामी ने लडकी को छोड दिया। अब इससे महा-पासिका के मन को बहुत दु:ख हुआ है।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" अमुक बातचीत।"

भिक्षुओ, उन चार भिक्षुओ ने काण-माता का खाकर केवल अब ही उसे ुःख नहीं दिया है, पहले भी दिया है। इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पत्थर-कट कुल में पैदा हुए। बडे होने पर वह अपने शिल्प में पारङ्गत हो गए।

काशी देश के एक कस्बे में एक बडा धनवान् सेठ था। उसका गडा हुआ खजाना ही चालीस करोड का सोना था।

उसकी स्त्री मरी तो वह धन के स्नेह से चुहिया होकर पैदा हुई और उस खजाने पर रहने लगी। इस प्रकार वह कुल नष्ट हो गया। वश उजड गया। वह गाँव भी ध्वस्त हो नामशेष रह गया।

उन दिनो बोधिसत्त्व जहाँ पहले गाँव था उसी जगह के पत्थर उखाडकर उन्हे तराशते थे। उस चुहिया ने अपने आसपास बोधिसत्त्व को बार बार आते-जाते देखा तो उसके मन में स्नेह पैदा हो गया। उसने सोचा मेरा बहुत सा धन निष्प्रयोजन नष्ट हुआ जाता है। मै और यह इकट्ठे मिलकर इस धन को खाएँगे। एक दिन वह मुँह में एक कार्पापण पकड हुए बोधिसत्त्व के पास पहुँची। बोधिसत्त्व ने प्रिय वाणी का प्रयोग करते हुए पूछा—

"अम्म! कार्षापण लेकर क्यो आई है?"

"तात! इसे लेकर स्वय भी खाएं और मेरे लिए भी मास लाएं।"

बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर कार्षापण ले घर जाकर एक मासे का मास खरीदकर उसे लाकर दिया। उसने उसे ले अपने निवासस्थान पर जा जी भरकर खाया।

उसके बाद से वह इसी तरह प्रतिदिन बोधिसत्त्व को कार्षापण देती। वह भी इससे मास ला देता।

एक दिन उस चुहिया को बिल्ले ने पकड़ लिया। वह बोली—स्वामी! मुझे न मारें।"

"क्यों? मुझे भूख लगी है! मैं मास खाना चाहता हूँ। मैं बिना मारे नहीं रह सकता।"

"क्या केवल एक दिन एक ही बार मास खाना चाहते हैं, अथवा नित्य प्रति?"

"मिले तो नित्य खाना चाहूँगा।"

"यदि ऐसा है, तो मुझे छोड़ दें। मैं नित्य प्रति मांस दिया करूँगी।"

"अच्छा तो ध्यान रखना" कह बिल्ले ने उसे छोड़ दिया।

उसके बाद से उसके लिए जो मास आता उसके वह दो हिस्से करके एक बिल्ले को देती एक स्वयं खाती।

फिर एक दिन उसे एक दूसरे बिल्ले ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह मनाकर अपने आप को छुड़ाया। उसके बाद से तीन हिस्से करके खाने लगी। फिर एक और ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह मनाकर अपने को छुड़ाया उसके बाद से चार हिस्से करके खाने लगी। फिर एक ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह समझाकर अपने को छुड़ाया। उसके बाद से पाँच हिस्से करके खाने लगी।

केवल पाँचवाँ हिस्सा मिलने से वह चुहिया आहार की कमी से कनाल्त तथा कृश हो गई। उसका मांस और रक्त कम पड़ गया। बोधिसत्व ने उसे देखकर पूछा—"अम्म! म्लान क्यों पड़ गई है?"

"इस कारण से।"

चुहिया बोली—अरे दुष्ट बिलार ! क्या मैं तेरी नौकर हूँ कि मांस लाकर दूँ। अपने पुत्रों का मास खा।

बिल्ला नहीं जानता था कि चुहिया स्फटिक गुहा के अन्दर है। उसने क्रोध से सहसा आक्रमण किया कि चुहिया को पकड़ूँगा। उसका हृदय स्फटिक गुहा से टकराया और उसी समय चूर चूर हो गया। आँखें निकल आई सी हो गईं। वह वहीं मरकर एक छिपे हुए स्थान पर गिरा। इस प्रकार दूसरे चार जने भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

उसके बाद से चुहिया निर्भय हो गई। वह बोधिसत्त्व को प्रतिदिन दो तीन कार्षापण देती। इस प्रकार उसने सारा धन बोधिसत्त्व को ही दे दिया। वे दोनों जीवन भर मित्र-भाव से रह यथाकर्म (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह पूर्वजन्म की कथा कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही—

> यत्थेको लभते बब्बु दुतियो तत्थ जायति,
> ततियो च चतुत्थो च इदं ते बब्बुका बिलं॥

[जहाँ एक बिल्ले को (मास) मिलता है दूसरा वहीं जाता है। तीसरा भी वहीं जाता है और चौथा भी वहीं। हे बिल्ले ! यह तेरा बिल[1] है।]

यत्थ जिस जगह। बब्बु, बिल्ला। दुतियो तत्थ जायति, जहाँ एक को चुहिया अथवा मास मिलता है, दूसरा बिल्ला भी वहीं जाता है। वैसे ही ततियो च चतुत्थो च, इस प्रकार वहाँ चार बिल्ले हुए। वे दिन प्रति दिन मास खाते हुए। ते बब्बुका इदं स्फटिक का बना हुआ बिल पेट में गडाकर सभी मर गए।

इस प्रकार शास्ता ने धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाया।

उस समय के चारो बिल्ले चार भिक्षु हुए। चुहिया काण-माता हुई। पत्थर तराशनेवाला जौहरी तो मैं ही था।

---

[1] प्रतीत होता है कि यह गाथा चुहिया द्वारा कही गई थी। इस में 'बिल' शब्द का अर्थ 'हिस्सा' होना चाहिए। जातककार ने यह गाथा बुद्ध-भाषित बनाई है; और बिल का जो अर्थ किया है वह मेल नहीं खाता।

१३८. गोध जातक

"किं ते जटाहि दुम्मेध..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

वर्तमान-कथा जैसी कथा पहले आई है,[1] वैसी ही है।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व गोह के रूप में पैदा हुए।

उस समय पाँच-अभिज्ञा प्राप्त (एक) उग्र तपस्वी एक गाँव के समीप जंगल में पर्ण-कुटी में रहता था। ग्रामवासी तपस्वी की अच्छी तरह सेवा करते थे। बोधिसत्व उसके चङ्क्रमण करने की जगह के पास एक बिल में रहते थे। प्रतिदिन दो तीन बार तपस्वी के पास आकर धर्म तथा अर्थपूर्ण बातें सुन तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवासस्थान को लौट जाते। आगे चलकर तपस्वी ग्रामवासियों को पूछकर वहाँ से चला गया। उस शीलव्रतसम्पन्न तपस्वी के चले जाने पर एक दूसरा कुटिल तपस्वी आकर उसी आश्रम में रहने लगा। बोधिसत्व उसे भी पहले ही तपस्वी की तरह सदाचारी समझ उसके पास गए।

एक दिन ग्रीष्मऋतु में अकाल वर्षा बरसने पर बिलों में से मक्खियाँ निकलीं। उन्हें खाने के लिए गोह घूमने लगी। ग्रामवासियों ने बाहर निकल बहुत सी गोहें पकड़ चिकनी भोजन सामग्री के साथ खट्टा-मीठा गोह-मांस तैयारकर उस तपस्वी को दिया।

---

[1] भीमसेन जातक (८०)

तपस्वी ने गोह का मास खाया तो उसे बहुत स्वादिष्ट लगा । उसने पूछा —यह मास बडा मीठा है । किसका मास है ? जब उसे पता लगा कि किसका मास है, तो वह सोचने लगा कि मेरे पास बडी गोह आती है । उसे मारकर उसका मास खाऊँगा । उसने पकाने के बरतन और उनके साथ घी, नमक आदि मँगवा कर एक ओर रख लिए । स्वय मुद्गर ले काषाय वस्त्र से ढँक पर्ण-कुटी के सामने शान्त-चित्त की तरह बैठ बोधिसत्त्व की प्रतीक्षा करने लगा ।

बोधिसत्त्व शाम को तपस्वी के पास जाने के लिए निकले । समीप पहुँचते ही उसकी इन्द्रियो मे विकार देखकर सोचने लगे—यह तपस्वी उस तरह नही बैठा है जैसे और दिना बैठा रहता था । आज यह मेरी ओर दूषित दृष्टि से देख रहा है । इसकी परीक्षा करूँगा । वे जिधर से तपस्वी की देह को छूकर हवा आ रही थी उधर खडे हुए । गोह के मास की गन्ध आई । उसे सूँघकर बोधिसत्त्व ने सोचा—इस कुटिल तपस्वी ने आज गोह मास खाया होगा । इसी से यह रस-तृष्णा में आसक्त हो गया । आज मेरे समीप पहुँचने पर मुझे मुद्गर से मार मास पकाकर खाना चाहता होगा । वह उसके पास न जा वापिस लौटकर घूमने लगे ।

तपस्वी ने बोधिसत्त्व को न आता देख समझा कि यह जान गया होगा कि मैं इसे मारना चाहता हूँ । इसी से नही आता है । न आने पर भी यह कहाँ बचकर जाएगा । उसने मुद्गर निकाल फेंककर मारा । वह उसकी पूँछ के सिरे मे ही लगा ।

बोधिसत्त्व जल्दी से बिल में प्रविष्ट हो दूसरे छेद से सीस निकालकर बोले —'कुटिल जटिल ! मैं तुझे सदाचारी समझ कर तेरे पास आया । लेकिन अब मैंने तेरा कुटिल स्वभाव जान लिया । तेरे जैसे महाचोर को इस प्रव्रजित भेष से क्या ?" इस प्रकार उसकी निन्दा करते हुए यह गाथा कही—

किं ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिन साटिया,
अब्भन्तर ते गहन बाहिर परिमज्जसि ॥[1]

---

[1] धम्मपद (२६ । २२)

[हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ) ? और मृगचर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तो तू मैला है, बाहर से धोता है।]

किं ते जटाहि दुम्मेध, भो, दुर्बुद्धि ! मूर्ख ! यह जटाएँ प्रव्रजित को धारण करनी चाहिएँ। प्रव्रज्या गुण से तू रहित है। तुझे इन जटाओं से क्या लाभ ? किं ते अजिन साटिया, मृग-चर्म के अनुकूल सयम का अभाव है, तब इस मृग-चर्म से क्या ? अब्भन्तर ते गहन—तेरा भीतर राग, द्वेष तथा मोह से मलिन है, ढका हुआ है। बाहिर परिमज्जसि, सो तू अभ्यन्तर को मैला ही रख स्नान आदि से तथा (श्रमण-) चिह्न धारण करके बाहर को साफ करता है। तू वैसा ही है जैसे काञ्जी से भरा हुआ तूम्बा हो, विष से भरा घडा हो, साँप से भरी हुई बाँबी हो अथवा गूह से भरा हुआ चित्रित घडा हो। तुझ चोर के यहाँ रहने से क्या ? शीघ्र भाग। यदि नहीं जाएगा तो ग्रामवासियों को कहकर तेरा निग्रह करवाऊँगा।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उस कुटिल तपस्वी को धमकाकर बिल में चले गए। कुटिल तपस्वी भी वहाँ से चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कुटिल तपस्वी यह ढोंगी था। पहला शीलवान् तपस्वी सारिपुत्र था। गोहपण्डित तो मैं ही था।

१३९. उभतोभट्ठ जातक

"अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो. ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

वह पीडा से पगला हो हाथ से आँखो को दबाए हुए पानी से बाहर निकल काँपता हुआ कपडे खोजने लगा।

उसकी भार्य्या ने भी सोचा कि मैं झगडा करके ऐसा कर दूँ कि कोई कुछ आशा न रखे। उसने एक कान में ताड का पत्ता पहना, एक आँख में हाँडी का काजल लगाया और गोद में कुत्ता ले पडौसी के घर गई। उसकी एक पडौसन बोली—"तूने एक ही कान में ताड का पत्ता डाला है, एक ही आँख में कज्जल लगाया है और गोद में कुत्ते को ऐसे लेकर जैसे यह तेरा प्यारा पुत्र हो एक घर से दूसरे घर घूम रही है। क्या तू पगली हो गई है?"

"मै पगली नही हूँ? तू मुझे व्यर्थ ही गाली देती है, मजाक करती है। अब मैं मुखिया[1] के पास जाकर तुझपर आठ कार्षापण जुर्माना करवाऊँगी।"

इस प्रकार परस्पर झगडकर दोनो मुखिया के पास गईं। दोषी का पता लगाने से वही दण्डित हुई।

लोग उसे बाँधकर पीटने लगे कि जुर्माना दे।

वृक्षदेवता ने गाँव मे उसका यह हाल और जगल में उसके पति की विपत्ति को देख एक टहने पर खडे होकर कहा—भो! पुरुष! जल मे भी तेरा काम बिगडा, स्थल पर भी। तू दोनो ओर से भ्रष्ट होगया। इतना कह यह गाथा कही—

अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो सखीगेहे च भण्डन,
उभतो पदुट्ठकम्मन्तो उदकम्हि थलम्हि च॥

[आँख फूट गई। वस्त्र खोया गया। सखी के घर में झगडा हुआ। जल और स्थल दोनो ही में तेरा काम बिगड गया।]

सखीगेहे च भण्डन, सखी का मतलब है सहायिका, उसके घर में तेरी भार्य्या ने झगडा किया। झगडा करके बाँधी गई, पीटी गई और दण्डित हुई। उभतो पदुट्ठ कम्मन्तो, इस प्रकार दोनो जगह में तेरा काम बिगडा ही। कौन से दो स्थानो में? उदकम्हि थलम्हि च, आँख फूटने से और वस्त्र नष्ट

---

[1] ग्रामभोजक।

होने से जल में काम बिगडा, सखी के घर पर झगडा होने से स्थल पर काम बिगडा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मछुआ देवदत्त था । वृक्षदेवता तो मैं ही था ।

१४०. काक जातक

"निच्चं उब्बिग हदया..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय जाति-सेवा के बारे में कही। वर्तमान कथा बारहवें निपात की भद्दसाल जातक[1] में आएगी ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कौए की योनि म पैदा हुए ।

एक दिन राजा का पुरोहित नगर के बाहर नदी पर स्नान कर, सुगन्धित लेप कर, मालाएँ पहन सुन्दर वस्त्र धारण किए नगर में प्रविष्ट हुआ । नगर-द्वार के तोरण पर दो कौए बैठे थे । उनमें से एक ने दूसरे को कहा—

"मित्र ! मैं इस ब्राह्मण के सिर पर बीट करूँगा ।"

"यह अच्छा नही है । यह ब्राह्मण ऐश्वर्य्यशाली है । ऐश्वर्य्यशालियो के साथ वैर करना बुरा है । यह क्रुद्ध होने पर सभी कौओ को भी नष्ट कर सकता है ।"

---

[1] भद्दसाल जातक (४६५)

उसके बाद से कौवे मारे जाने लगे, और चर्बी न पाकर जहाँ तहाँ उनका ढेर लगाया जाने लगा। कौवो पर बडी भारी विपत्ति आई।

उस समय बोधिसत्त्व अस्सी हजार कौओ के साथ महाश्मशान वन में रहते थे। एक कौवे ने जाकर बोधिसत्त्व को कौओ पर आई विपत्ति का समाचार कहा। उसने सोचा—"मेरे अतिरिक्त कोई मेरी जातिवालो के दु ख को दूर नही कर सकता। मै दूर करूँगा।"

बोधिसत्त्व दस पारमिताओ का ख्यालकर, मैत्री पारमिता को प्रमुख कर एक ही उडान में उड खुले हुए बडे रोशनदान में प्रविष्ट हो राजा के आसन के नीचे जा बैठे। उन्हें एक मनुष्य पकडने लगा। राजा ने रोका—शरण में आए को मत पकडो। बोधिसत्व ने थोडा विश्राम ले मैत्री-पारमी का ध्यान कर आसन के नीचे से निकल राजा से कहा—महाराज! राजा को चाहिए कि वह उत्तेजना के वशीभूत होकर राज्य न करे। जो भी कार्य्य करना हो वह सोच विचार कर करना चाहिए। जो करने से हो सके, वही कार्य्य करना चाहिए, दूसरा नही। यदि राजा ऐसा कार्य्य करते है जिसका कोई फल नही होता तो वह जनता के लिए मरण होता है, महान् भय का कारण होता है। पुरोहित ने वैर के वश हो झूठ कहा है। कौओ की चर्बी होनी ही नही।

राजा प्रसन्न हुआ। उसने बोधिसत्त्व को सोने का सुन्दर पीढा दिया। वहाँ बैठने पर उसके परो को सौ-पाक सहस्र-पाक तैल लगवाया। सोने के थाल में राज-भोजन दिलवाया। पानी पिलवाया। अच्छी तरह से खा चुकने पर जब बोधिसत्त्व सुखपूर्वक बैठे तब राजा ने पूछा—"पण्डित, तू कहता है, कौवो की चर्बी नही होती। उनको चर्बी क्यो नही होती?"

बोधिसत्त्व ने इन इन कारणो से नही होती बताते हुए सारे घर को अपने शब्द से गुँजाते हुए धर्म-कथा की, और यह गाथा कही—

निच्च उब्बिग्गहदया सब्बलोकविहेसका,
तस्मा तेसं वसा नत्थि काकानस्माकजातिन ॥

[हृदय नित्य उद्विग्न रहता है। सारे ससार को कष्ट देते हैं। इसलिए राजा! हमारी जाति के लोग—जो कौए हैं—चर्बी-रहित होते हैं।]

महाराज ! कौवे सदैव उद्विग्न हृदय होते हैं, भयभीत ही विचरते हैं। सारे ससार को कष्ट देते है—क्षत्रिय आदि को भी, स्त्री-पुरुष को भी, लडके लडकियो को भी—सभी को तकलीफ पहुँचाते है। इसलिए इन दो कारणो से हमारे जातिवालो को चर्बी नहीं होती। पहले भी नही हुई। आगे भी नहीं होगी।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने यह बात स्पष्ट कर राजा को समझाया—महाराज ! राजा किसी भी बात को बिना सोचे-विचारे नही करते।

राजा ने प्रसन्न हो राज्य बोधिसत्त्व को भेंट किया। बोधिसत्त्व ने राज्य राजा को लौटा दिया। फिर उसे पञ्चशीलो में प्रतिष्ठित कर उनसे सभी प्राणियो को अभय-दान देने के लिए कहा। राजा ने धर्मोपदेश सुन सभी प्राणियो को अभय-दान दे कौओ के लिए नित्य-भोजन बाँध दिया। प्रतिदिन अम्मण भर चावल का भात पकाकर नाना प्रकार के रसो से मिलाकर कौओ को दान दिया जाता। बोधिसत्त्व को राज-भोजन ही मिलता।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बाराणसी राजा आनन्द था। कौओ का राजा तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१५. ककण्टक वर्ग

१४१. गोध जातक (२)

"न पापजनससेवी..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विपक्षी भिक्षु की सगत करने वाले भिक्षु के बारे में कही। वर्तमान कथा महिलामुख जातक[1] की कथा के ही समान है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गोह के रूप में पैदा हुए। बडे होने पर वह नदी के किनारे एक बडे बिल मे सैकडो गोहो के साथ रहने लगे।

उनके पुत्र गोह-पिल्ले की एक गिरगिट के साथ दोस्ती हो गई। वह उसके साथ आनन्द मनाता और गले लगाने के लिए उस पर आ पडता।

उस गिरगिट के साथ उसकी दोस्ती की बात गोहराज से कही गई। गोहराज ने पुत्र को बुलाकर कहा—

"तात! तू अनुचित स्थान में विश्वास कर रहा है। गिरगिट की जाति नीच होती है। उनका विश्वास नही करना चाहिए। यदि तू उसका विश्वास करेगा, तो तेरे और गिरगिट के कारण यह सारा गोह-कुल विनाश को प्राप्त होगा। अब से इसके साथ दोस्ती मत रख।' उसने दोस्ती नही ही छोडी।

---

[1] महिलामुख जातक (२६)

जब बोधिसत्व के बार बार कहने से भी उनकी मित्रता जैसी की तैसी रही, तब बोधिसत्व ने सोचा कि इस गिरगिट के कारण हमको अवश्य खतरा होगा। खतरे के समय के लिए भागने का मार्ग तैयार होना चाहिए। उसने एक तरफ हवा आने का रास्ता बनवा लिया।

बोधिसत्व का पुत्र भी शनै शनै बडे शरीर वाला हुआ, गिरगिट पहले ही जितना रहा। वह समय समय पर उसका आलिङ्गन करने के लिए गिरगिट पर आ पडता। गिरगिट को ऐसा मालूम देता कि मानो उस पर पर्वत आ पडा है। उसने कष्ट पाते हुए सोचा कि यदि यह और कुछ दिन इस प्रकार मेरा आलिङ्गन करता रहा तो मै जीवित नही रहूँगा। इसलिए किसी शिकारी के साथ मिलकर इस गोह-कुल को ही नष्ट करवाऊँ।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होने पर बाँबी से मक्खियाँ निकली। जहाँ तहाँ से गोह निकलकर मक्खियो को खाने लगे। एक गोह-शिकारी गोह के बिल को फाडने के लिए कुदाल और कुत्ते साथ में ले जगल में घूम रहा था। गिरगिट ने उसे देखकर सोचा कि आज अपना मनोरथ पूरा करूँगा? उसने पास आ, थोडी दूर पर ठहर पूछा—हे! पुरुष! जगल में क्यो घूम रहे हो?" उसने कहा—गोहो के लिए। गिरगिट बोला—"मै कई सौ गोहो का निवास-स्थान जानता हूँ। आप आग और पुआल लेकर आएँ।" उसे वहाँ ले जाकर कहा, "यहाँ पुआल रख, आग लगाकर धुआँ करें। चारो तरफ कुत्तों को बिठाएँ। अपने आप मुद्गर लेकर बैठें। जो जो गोह निकले उन्हें मार मारकर ढेर लगाएँ फिर स्वय एक जगह पर सिर उठाकर पड रहा—आज शत्रु की पीठ[1] देखने को मिलेगी।

शिकारी ने पुआल का धुआँ किया। धुआँ बिल में घुसा। गोह जब धुएँ से अधे हुए तब मृत्यु भय से भयभीत हो भागने लगे। शिकारी ने जो जो गोह निकले उन्हें मारा। उसके हाथ से बचो को कुत्तो ने लिया। गोहो के लिए महाविनाश उपस्थित हुआ।

---

[1]शत्रु की पीठ देखना मिलने का भावार्थ है पलायन; यहा विनाश से तात्पर्य्य है।

बोधिसत्त्व को मालूम हुआ कि गिरगिट के कारण महान् खतरा पैदा हो गया। वह सोचने लगे कि पापी का साथ नहीं ही करना चाहिए। पापी की सगत से सुख नही हो सकता। एक पापी गिरगिट के कारण इतने गोह नाश को प्राप्त हुए। इस प्रकार सोचते हुए हवा आने के बिल से भागते हुए यह बात कही—

न पापजनससेवी अच्चन्तसुखमेधति,
गोधाकुल ककण्टाव कलि पापेति अत्तान ॥

[पापी की सगत करने वाले को निरन्तर सुख कभी नही मिलता। जैसे गिरगिट के कारण गोह-कुल नष्ट हुआ, इसी प्रकार वह अपना विनाश करता है।]

पापजनससेवी, (पापी की सगत करनेवाला) आदमी **अच्चन्तसुख,** केवल सुख ही सुख वा निरन्तर सुख **न एधति,** नही प्राप्त करता, जैसे क्या ? **गोधा कुल ककण्टाव,** जैसे गिरगिट से गोह-कुल को सुख नहीं मिला। इसी प्रकार पापी जन की सगत करनेवाले को सुख नही मिलता। पापी जन की सगत करने वाला निश्चय से **कलि पापेति अत्तान,** कलि कहते है विनाश को, पापी जन की सगत करने वाला निश्चयपूर्वक अपने को और अपने साथ रहने वालो को नष्ट करता है।

पालि में **फल पापेति** पाठ है। वह पाठ अट्ठकथा में नही है। उस अर्थ का भी यहाँ मेल नहीं बैठता। इसलिए जैसे यहाँ कहा गया, वैसे ही ग्रहण करना चाहिए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गिरगिट देवदत्त था। बोधिसत्व का पुत्र उपदेश न माननेवाला गोह पिल्ला विपक्ष-सेवी भिक्षु था। गोह-राज तो मैं ही था।

१४२. सिगाल जातक

"एत हि ते दुराजानं . . ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के (तथागत को) मारने का प्रयत्न करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में भिक्षुओं की बातचीत सुनकर तथागत ने कहा—भिक्षुओ! देवदत्त ने केवल अभी मेरे वध की कोशिश नहीं की। पहले भी की ही है। लेकिन मुझे मार नहीं सका। स्वयं ही दुखी हुआ। यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीदड होकर पैदा हुए। वह शृगाल-राजा बन शृगाल गण सहित श्मशान में रहने लगे।

उस समय राजगृह में उत्सव था। अधिकांश मनुष्य सुरा पीते थे, वह था ही सुरा-उत्सव। अनेक धूर्त बहुत सी सुरा और मांस ले आए, और मस्त होकर सुरा पीने तथा मांस खाने लगे। रात्रि के पहले पहर में ही उनका मांस समाप्त हो गया, सुरा तो बहुत थी।

एक बोला—"मांस का टुकड़ा दो।"

दूसरे ने कहा—"मांस तो समाप्त हो गया।" "मेरे खड़े रहते कहीं मांस समाप्त हो सकता है?" वह उसने सोचा कि कच्चे श्मशान में मृत मनुष्यों को खाने के लिए आए हुए शृगालों को मारकर मांस लाऊँगा। वह एक मोगरी ले नाली के रास्ते शहर से निकल श्मशान में जा मोगरी सहित मृतक की तरह सीधा ही लेट रहा।

१४३. विरोचन जातक

"लसी च ते निप्फलिता...", इसे शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के गयाशीर्ष[1] पर सुगत (तथागत) की नक्ल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त का ध्यान (-बल) जाता रहा और उसको लोगो से जो प्राप्ति होती थी वह बन्द हो गई तथा लोगो ने उसका सत्कार करना छोड दिया तो उसने सोचकर एक उपाय निकाला। उसने बुद्ध से पाँच बातो[2] की याचना की, जिन्हें शास्ता ने अस्वीकार किया। तब उसने दोनो अग्रश्रावको[3] के पाँच सौ शिष्यो को जो अभी प्रव्रजित हुए तथा धर्म विनय से सुपरिचित न थे बहकाया और उन्हें गयाशीर्ष पर ले जाकर सघ म भेद पैदा कर एक सीमा[4] में पृथक विनय-कर्म[5] करने लगा।

शास्ता ने उन भिक्षुओ के आने का समय देख दोनो अग्रश्रावको को भेजा। उन्हें देख देवदत्त प्रसन्न हुआ। रात को धर्मोपदेश देते समय उसने सोचा कि मैं बुद्ध की नकल करूँगा। वह बोला—सारिपुत्र! भिक्षु-सघ

---

[1] गया का ब्रह्मयोनि पर्वत।

[2] पाच बातें यह है—(१) जिन्दगी भर वन में ही रहा करें (२) जिन्दगी भर भिक्षा मांग कर ही खाएँ (३) जिन्दगी भर फेंके चीथडों के ही चीवर पहनें (४) जिन्दगी भर पेड़ के नीचे ही रहें (५) जिन्दगी भर मछली मास न खाएँ (चुल्लवग्ग, द्वितीय भाणवार)।

[3] सारिपुत्र और मौद्गल्यायन।

[4] सीमित-प्रदेश।

[5] साधिक कर्म।

आलस्य रहित है। तुम भिक्षु-संघ को बुद्ध धर्मोपदेश करो। मेरी पीठ में दर्द होता है। मैं इसे जरा तानूंगा।

इतना कह देवदत्त सो गया।

दोनों अग्रश्रावक उन भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे (आर्य-) मार्ग और फल[1] के प्रति उनका ध्यान जागृत कर सभी को वेळुवन साथ ले गए।

कोकालिक ने जब देखा कि विहार खाली हो गया तब वह देवदत्त के पास गया और बोला—"आयुष्मान् देवदत्त ! तेरे अनुयायियों में भेद पैदा कर अग्रश्रावक तेरा विहार खाली कर चले गए। तू पड़ा सो ही रहा है।" उसने उसकी चादर हटा दीवार में कील ठोकने की तरह उसकी छाती में एड़ी से एक ठोकर लगाई। उसी समय उसके मुंह से खून गिर पड़ा। उसके बाद से वह रोगी हो गया।

शास्ता ने स्थविर से पूछा—सारिपुत्र ! तुम्हारे जाने के समय देवदत्त ने क्या किया ?

"भन्ते ! हमें देखकर देवदत्त ने सोचा कि बुद्ध की तरह व्यवहार करूँगा। बुद्ध की नकल करता हुआ वह विनाश को प्राप्त हुआ।"

"सारिपुत्र ! देवदत्त केवल अभी मेरी नकल करने जाकर विनाश को प्राप्त नहीं हुआ, पहले भी हुआ है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व केसरी (सिंह) होकर पैदा हुए और हिमालय की कञ्चनगुफा में रहने लगे।

एक दिन वे कञ्चनगुफा से निकल जम्हाई ले, चारों दिशाओं की ओर नजर उठा, सिंहनाद कर शिकार के लिए निकले। उन्होंने एक बड़े भारी भैंसे को मारा। उसका मांस खाया। फिर एक तालाब में उतर मणि-वर्ण जल की कोख पूर्ण करते हुए की तरह गुफा की ओर प्रस्थान किया।

---

[1] स्रोतापत्ति मार्ग आदि चार आर्य-मार्गों के चार फल।

शिकार के लिए निकले एक गीदड ने उन्हे एकाएक देखा। जब वह भाग न सका तो वह केसरी के पैरो में जाकर गिर पडा।

"जम्बुक ! क्या बात है ?"

"स्वामी ! मै आपके चरणो की सेवा करना चाहता हूँ।"

"अच्छा, आ मेरी सेवा कर। मैं तुझे अच्छे अच्छे मास खिलाऊँगा।" वह जम्बुक को कञ्चनगुफा में ले गया।

गीदड तब से सिंह का मारा हुआ मास ही खाता रहा। कुछ ही दिन में वह मोटा हो गया।

एक दिन गुफा मे पडे ही पडे उसे केसरी ने कहा—"जम्बुक ! जा, पर्वत की चोटी पर चढकर पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी, घोडे तथा भैसे आदि में से जिस किसी का मास खाना चाहे, आकर मुझसे कह कि मै अमुक पशु का मास खाना चाहता हूँ। और मुझे प्रणाम कर यह भी कह कि 'हे स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ।' मैं उसे मार, उसका मास खा, तुझे भी दूँगा।"

गीदड पर्वत की चोटी पर चढ नाना प्रकार के पशुओ को देख जिसका भी मास खाना चाहता कञ्चनगुफा में आकर सिंह से निवेदन कर उसके पाँव में गिरकर कहता—स्वामी ! अपना पराक्रम प्रकट करें। सिंह जल्दी से छलाँग मारकर चाहे मस्त हाथी ही होता उसकी हत्या कर उसका मास स्वय खाता और शृगाल को भी देता। गीदड पेट भर कर मास खा, गुफा में जा सो रहता।

इस प्रकार ज्यो ज्यो समय व्यतीत हुआ उसके दिल में अभिमान पैदा हो गया। मेरे भी तो चार पैर है। मै क्यो रोज रोज दूसरे पर निर्भर रहता हूँ। अब से मै भी हाथी आदि को मारकर मास खाऊँगा। सिंह भी 'हे मृगराज ! स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ' कहने पर ही हाथियो को मारता है, मै भी सिंह से यह कहलवाऊँगा कि 'हे जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा' और एक बढिया हाथी को मार उसका मास खाऊँगा।

उसने शेर से कहा—स्वामी ! मैने बहुत देर तक आपके मारे हुए हाथियो का मास खाया। मैं भी एक हाथी को मारकर उसका मास खाना चाहता हूँ। जिस जगह आप कञ्चनगुफा में लेटते है, मै वहाँ लेट रहूँगा। आप पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी को देख मेरे पास आकर कहें 'जम्बुक ! अपना पराक्रम

दिया।' इतनी सी बात के लिए अनुदार न हो।

सिंह ने कहा—जम्बुक! तेरी सामर्थ्य हाथी मारने की नहीं है। गीदड-कुल में पैदा होकर कोई गीदड हाथी को मारकर उसका मास खा सके, ऐसा गीदड दुनिया में नही है। तू ऐसी इच्छा मत कर। मेरे द्वारा मारे जाने वाले हाथियो का मास खाकर ही रह।

ऐसा कहने पर भी वह नहीं माना। बार बार कहता ही रहा।

सिंह ने जब देखा कि वह नही मानता तो स्वीकार कर कहा—अच्छा! तो मेरी रहने की जगह पर जाकर लेट रह। जम्बुक को कञ्चनगुफा में लिटा पर्वत की चोटी पर चढ मस्त हाथी को देख गुफा के द्वार पर जाकर कहा—जम्बुक! अपना पराक्रम दिखा।

शृगाल कञ्चनगुफा से निकला, जम्हाई ली, चारो ओर देखकर तीन बार आवाज की। फिर मस्त हाथी के सिर पर आक्रमण करने जाकर उसके पाँव में गिरा। हाथी ने दाहिना पाँव उठाकर उसके सिरपर रख दिया। सिर की हड्डियाँ चूर चूर हो गईं।

उसके शरीर को हाथी ने पाँव से इकट्ठा किया, और उस पर लीद करके चिंघाडता हुआ जगल मे चला गया।

बोधिसत्त्व ने यह हाल देख, 'जम्बुक! अब अपना पराक्रम दिखा' कह, यह गाथा कही—

> लसी च ते निप्फलिता मत्थको च विदालितो,
> सब्बा ते फासुका भग्गा अज्ज खो त्वं विरोचसि॥

[तेरे सिर का भीजा निकल गया है। मस्तक फट गया है। तेरी सभी हड्डियाँ टूट गई हैं। आज तू अपना पराक्रम दिखा रहा है।]

लसी का मतलब है माथे का भीजा। निप्फलिता, निकल आई।

बोधिसत्त्व ने यह गाथा कही। जब तक जीवन था तब तक जीवित रह कर्मानुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड देवदत्त था। सिंह मैं ही था।

१४४. नङ्गुट्ठ जातक

"बहुम्पेत असर्भि जातवेद..." इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आजीवकों[1] के मिथ्या-मत के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन की पिछली तरफ आजीवक नाना प्रकार की मिथ्या-तपस्याएँ करते थे। बहुत से भिक्षुओं ने उनके उकडूँ-बैठना, चिमगादड-व्रत, काँटों पर सोना, तथा पञ्चाग्नि ताप आदि मिथ्या तपों के भेदों को देखकर भगवान से पूछा—भन्ते! इस मिथ्या तप से कुछ भी उन्नति होती है?

शास्ता ने उत्तर दिया—"भिक्षुओ, इस प्रकार के मिथ्या तप से न कल्याण ही होता है, न उन्नति ही होती है। पूर्व समय में पण्डितों ने यह समझा कि इस प्रकार के तप से कल्याण होगा या उन्नति होगी। वे जन्म दिन पर रक्खी हुई अग्नि लेकर जंगल गए। वहाँ अग्नि-पूजा आदि से कुछ भी लाभ न देख, आग को पानी से बुझा के कसिण अभ्यास कर अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुए।" इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उनके पैदा होने के दिन माता पिता ने जन्म-अग्नि लेकर रक्खी। सोलह वर्ष की आयु होने पर वे बोले—

'पुत्र! तेरे जन्म के दिन हमने आग रक्खी है। यदि गृहस्थ होना चाहता

---

[1] नग्न-साधुओं का एक सम्प्रदाय।

है तो तीनों वेद सीख। यदि ब्रह्मलोक जाना चाहता है तो आग लेकर जंगल चला जा, वहाँ अग्नि की पूजा करते हुए महाब्रह्मा को प्रसन्न कर ब्रह्मलोक गामी होना।"

उसने कहा, मुझे गृहस्थी से काम नहीं। वह आग ले जंगल में प्रवेश कर, वहाँ आश्रम बना अग्नि-पूजा करता हुआ आरण्य में रहने लगा।

उसे एक दिन किसी प्रत्यन्त-ग्राम से दक्षिणा में एक बैल मिला। उस बैल को आश्रम पर लेजाकर उसने सोचा—अग्नि-भगवान को गो-मांस खिलाऊँगा। तभी उसे ख्याल आया—यहाँ नमक नहीं है। अग्नि भगवान् बिना नमक के खा न सकेंगे। गाँव से नमक लाकर अग्नि-भगवान को नमक सहित खिलाऊँगा।

वह बैल को वैसे ही बाँध नमक लेने के लिए गाँव गया। उसके जाने पर बहुत से शिकारी वहाँ आए। उन्होंने बैल को देख उसे मार डाला और उसका मांस पका खाकर उसकी पोंछ, जाँघ तथा चर्म वहीं छोड़कर शेष मांस लेकर चले गए।

ब्राह्मण ने लौटकर जब केवल पूँछ आदि को देखा तो सोचने लगा—यह अग्नि भगवान् अपनी चीज की भी रक्षा नहीं कर सके। मेरी तो क्या रक्षा करेंगे? यह अग्नि-पूजा निरर्थक है। इससे कल्याण या उन्नति नहीं है।

उसका मन अग्नि-पूजा की ओर से उदासीन हो गया। वह बोला—भो! अग्नि-भगवान्! तुम अपनी चीज की भी रक्षा नहीं कर सके। मेरी क्या रक्षा करोगे? मांस तो नहीं है, इतने से ही सन्तुष्ट होओ।' यह कह पूँछ आदि को आग में फेंकते हुए यह गाथा कही—

बहुम्पेतं असब्भि! जातवेद! यं तं वालधिनाभिपूजयाम,
मंसारहस्स नत्थज्ज मंसं नङ्गुट्ठम्पि भवं पटिग्गहातु॥

[हे असत्पुरुष! अग्निदेव! यह भी बहुत समझें कि हम पूँछ से तेरी पूजा कर रहे हैं। तुझे मांस मिलना योग्य था, लेकिन मांस नहीं है। इसलिए आप जनाब पोंछ ग्रहण करें।]

बहुम्पेतं, इतना भी बहुत है, असब्भि, असत्पुरुष! असाधुजातिक। जातवेद, अग्नि को सम्बोधन करता है। अग्नि जात होने ही पैदा होने ही अनुभव होती है, ज्ञात होती है, प्रकट होती है—इसलिए जातवेद कहलाती है।

य त बालधिनाभिपूजयाम, आज हम तुझे जो अपनी पास की चीज भी सुरक्षित नहीं रख सकता उसकी पूँछ मे पजा कर रहे है। यही प्रकट करता है कि यह भी तेरे लिए बहुत कर रहे है। मसारहस्स, तुझे मास चाहिए था। आज तेरे लिए मास नही है। नङ्गुट्ठम्पि भव परिग्गहातु, अपनी चीज को रख सकने में असमर्थ आप यह खुरसहित जाँघ का चर्म और पोछ भी ग्रहण कर।

इस प्रकार कह बोधिसत्व आग को पानी से बुझा ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

आग को बुझानेवाला तपस्वी उस समय मैं ही था।

१४५. राध जातक

"न त्व राध ! विजानासि. . ." यह शास्ता ने जतवन में विहार करते हुए पूर्व-भार्या के प्रति आसक्ति के बारे म कही। वर्तमान-कथा इन्द्रिय-जातक[1] में आएगी।

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर कहा—भिक्षु स्त्रियो को बचाया नही जा सकता। पहरेदार रखने से भी उनकी देखभाल नही हो सकती। तू भी पहले पहरेदार रखकर भी नहीं बचा सका। अब कैसे बचा सकेगा? इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तोते की योनि में पैदा हुए। काशी देश के एक ब्राह्मण ने बोधिसत्व और उसके छोटे भाई को पुत्र की तरह पाला। उन दोनों में से बोधिसत्व का नाम हुआ पोट्ठपाद, दूसरे का राध।

हाँ, उस ब्राह्मण की ब्राह्मणी अनाचारिणी थी, दुःशीला। वह व्यापार के लिए जाने लगा तो दोनो भाइयों से बोला—तात ! यदि माता ब्राह्मणी अनाचार करे, तो उसे रोकना। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—तात ! अच्छा ! यदि रोक सकेंगे रोकेंगे नहीं रोक सकेंगे तो चुप रहेंगे।

इस प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मणी को तोतों को सौंपकर व्यापार करने गया। उसके जाने के दिन से ब्राह्मणी ने अनाचार करना आरम्भ किया। (घर में) प्रवेश करनेवालों की और बाहर निकलने वालों की गिनती नहीं रही। उसकी करतूत देख राध ने बोधिसत्व से कहा—"भाई ! हमारा पिता हमें कह गया था कि यदि माता अनाचार करे तो उसे रोकना। अब वह अनाचार कर रही है। हम उसे रोकें।" बोधिसत्व ने कहा—तात ! तू अपनी बे-समझी के कारण, मूर्खता के कारण, ऐसा कह रहा है। स्त्रियों को उठाए लेकर फिरा जाए, तब भी उनकी देखभाल नहीं हो सकती। जो काम किया नहीं जा सकता, उसे न करना चाहिए। इतना कह यह गाथा कही—

> न त्वं राध ! विजानासि अड्ढरत्ते अनागते,
> अब्यायतं विलपसि विरत्ता कोसियायने ॥

[राध ! तू नहीं जानता। अभी आधी रात भी नहीं हुई। न जानने के कारण ही तू बकवास करता है। उसका (अपने पति की ओर से) मुँह मुड़ा है।]

न त्वं राध ! विजानासि अड्ढरत्ते अनागते, तात ! राध ! तू नहीं जानता, आधी रात न होने पर ही पहले पहर में ही इतने आदमी आए। अब कौन जानता है कि और कितने आदमी आएँगे ? अब्यायतं विलपसि, तू व्यर्थ बकवास करता है। विरत्ता कोसियायने, माता कोसियायनि ब्राह्मणी का दिल

विरक्त है। हमारे पिता के प्रति प्रेम नहीं है। यदि उसका उसमें प्रेम या स्नेह होता तो इस प्रकार अनाचार न करती। इन शब्दों से इस बात को प्रकट किया।

इस प्रकार कह राध को ब्राह्मणी के साथ बोलने नहीं दिया।

वह भी जब तक ब्राह्मण नहीं आया तब तक यथारुचि अनाचार करती रही। ब्राह्मण ने लौटकर पोट्ठपाद से पूछा—तात! तेरी माँ कैसी है? बोधिसत्व ने ब्राह्मण को जो जो हुआ सब कह दिया। फिर कहा—"तात! इस प्रकार की दुश्चरित्रा से तुम्हें क्या प्रयोजन? माता का दोष प्रकट करने के बाद से अब हम यहाँ नहीं रह सकते।" वह ब्राह्मण के पाँव में गिरकर राध के सहित उड़कर जंगल चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला चार आर्य-सत्य प्रकाशित किए। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जने थे। राध आनन्द था। पोट्ठपाद मैं ही था।

१४६. काक जातक

"अपि नु हनुका सन्ता..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बहुत से वृद्ध भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे गृहस्थ होने के समय श्रावस्ती के धनी परिवार के थे। एक दूसरे के मित्र थे। परस्पर मिलकर पुण्य करते थे। बुद्ध का उपदेश सुनकर उन्होंने

सोचा कि हम बूढे हुए। हमें गृहस्थी से क्या लाभ ? शास्ता के पास रमणीय बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो हम दुख का अन्त करें।

वे अपनी सारी जायदाद लडके लडकियो को दे, रोते हुए रिश्तेदारो को छोड शास्ता से प्रव्रज्या की याचना कर प्रव्रजित हुए। लेकिन प्रव्रजित होने पर प्रव्रज्या के अनुकूल श्रमण धर्म की पूर्ति नही की। बूढे होने से धर्म भी नही सीख सके। गृहस्थ रहने के समय की तरह प्रव्रजित होने पर भी विहार के एक कोने मे पर्ण-शाला बनवाकर उसमें इकट्ठे ही रहते थे। भिक्षा माँगने के लिए भी प्राय और कही न जाकर अपने लडके लडकियो के घर जाकर वही खाते थे।

उनमे से एक की पहली भार्य्या सभी वृद्ध भिक्षुओ का उपकार करनेवाली थी। इसलिए बाकी जनो को जो भिक्षा मिलती उसे लेकर भी उसी के घर जा बैठकर खाते। वह भी उनको जो सूप व्यञ्जन तैयार होता देती। किसी बीमारी से वह मर गई।

वह वृद्ध स्थविर विहार आकर एक दूसरे के गले मिल विहार के आसपास यह कहते हुए रोने लगे—"जिसके हाथो मे मधुर-रस था, वह उपासिका मर गई।" उनकी आवाज सुनकर इधर-उधर से भिक्षुओ ने आकर पूछा—"आयुष्मानो! क्यो रो रहे हो ?" वे बोले—"हमारे मित्र की पहली भार्य्या मर गई है। उसके हाथ में मधुर रस था। वह हमारा बहुत उपकार करने वाली थी। अब वैसी स्त्री कहाँ मिलेगी ? इसी वजह से रो रहे है।"

उनको विलाप करते देख भिक्षुओ ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—"आयुष्मानो! इस कारण से वृद्ध स्थविर एक दूसरे के गले में हाथ डाल रोते हुए घूम रहे है।"

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, यह केवल अभी उसके मरने पर रोते हुए नही घूम रहे है। पहले भी इन्होने इसके कौए की योनि में पैदा हो समुद्र में मरने पर सोचा कि समुद्र का पानी उलीचकर इसे निकाल लाएँगे। वे परिश्रम करते हुए (कठिनाई से) पण्डितो द्वारा जीवित बचाए गए।"—इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व
द्र-देवता होकर पैदा हुए।

एक कौवा अपनी कौवी को लेकर चोगा खोजता हुआ समुद्र के किनारे
। उस समय मनुष्य समुद्र तट पर दूध की खीर, मत्स्य-मास तथा सुरा
द से नाग को बलि चढ़ा चले गए थे। कौवे ने बलि की जगह पहुँच, खीर
द देख कौवी के साथ दूध-खीर, मत्स्य-मास आदि खाकर बहुत सी सुरा
ली। सुरापान से वे दोनों नशे में मस्त हो गए। उन्होंने सोचा कि समुद्र-
ा करें। इस उद्देश्य से वह किनारे पर बैठकर स्नान करने लगे। एक लहर
ई और कौवी को समुद्र में बहा ले गई। उसे एक मच्छ मास खाकर निगल
।। कौआ रोने पीटने लगा—मेरी भार्य्या मर गई।

उसके रोने पीटने की आवाज सुन बहुत से कौवे इकट्ठे होकर पूछने लगे—
ो रोते हो? किनारे पर नहाती हुई मेरी भार्य्या को लहर ले गई। वे
एक स्वर से रोने लग गए।

उनको यह ख्याल हुआ कि हमारे सामने इस समुद्र-जल की क्या सामर्थ्य
? हम पानी को उलीचकर समुद्र को खाली कर अपनी सहायिका को निकाल
।। वे मुँह भर भरकर पानी बाहर छोड़ने लगे। निमक के पानी से गला
खने पर वह स्थल पर जाकर विश्राम लेते।

जब उनकी दाढ़ें थक गईं, मुख सूख गए, आँखें लाल पड़ गईं तो उन्होंने
न दुखी होकर एक दूसरे को सम्बोधन कर कहा—"भो! हम तो समुद्र से
नी लाकर बाहर गिराते हैं; लेकिन जिस जिस जगह से पानी लाते हैं वह
र पानी से भर जाती है। हम समुद्र को खाली न कर सकेंगे।" इतना कह,
ह गाथा कही—

> अपि नु हनुका सन्ता मुखञ्च परिसुस्सति,
> ओरमाम न पारेम पूरतेव महोदधि॥

[हमारी दाढ़ें थक गई और मुँह सूखता है। हम प्रयत्न करते हैं, लेकिन
र नहीं पाते। महासमुद्र भरता ही जाता है।]

अपि नु हनुका सन्ता, हमारी दाढ थक गई। ओरमाम न पारेम, हम अपना बल लगाकर समुद्र का पानी निकाल बाहर करना चाहते हैं, लेकिन हम खाली नही कर सकते, यह पूरतेव महोदधि।

इस प्रकार कहते हुए वे सभी कौए रोने लगे—उस कौवी की ऐसी चोच थी! ऐसी गोल गोल आँखें थी! ऐसा सुन्दर आकार-प्रकार था! ऐसा मधुर शब्द था! वह इस चोर समुद्र के कारण नष्ट हो गई।

उन्हे इस प्रकार विलाप करते देख समुद्र-देवता ने भयानक रूप दिखाकर भगाया। इस प्रकार उनका कल्याण हुआ।

शास्ता न यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कौवी यह पूर्व की भार्य्या थी। कौवा बूढा स्थविर था। बाकी कौवे अन्य बूढे स्थविर थे। समुद्र-देवता तो मै ही था।

१४७. पुप्फरत्त जातक

"नयिद दुक्ख अदु दुक्ख..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् ने उससे पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उद्विग्न चित्त है? वह बोला—हाँ, सचमुच। "तुझे किसने उत्तजित किया?" पूछने पर उसने कहा—"मेरी पहली भार्य्या ने। भन्ते! उस स्त्री के हाथ में मधुर रस है। मै उसके बिना नही रह सकता।"

शास्ता ने कहा—'भिक्षु! यह तेरा अनर्थ करनेवाली है। तू इसके कारण पहले भी सूली पर चढाया गया। इसी के कारण रोता हुआ मरकर

तू नरक मे पैदा हुआ। अब फिर तू उसे ही क्यो चाहता है ?" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व आकाश-स्थित देवता हुए।

वाराणसी में कार्तिक मास की रात्रि का उत्सव हुआ। नगर देवनगर की तरह सजाया गया। सब लोग उत्सव मनाने में मस्त थे।

एक दरिद्र आदमी के पास केवल एक ही मोटे कपड़े का जोडा था। उसने उसे अच्छी तरह धुलवाकर स्त्री कराके उसमें सैकड़ो, हजारो चुनन देकर रक्खा था।

उसकी भार्य्या बोली—"स्वामी! मेरी इच्छा है कि केसर के रग का एक वस्त्र पहन तेरे गले से लग कार्तिक रात्रि के उत्सव में विचरूँ।"

स्वामी बोला—"भद्रे! हम दरिद्रो के पास केसर कहाँ से आएगा? शुद्ध वस्त्र पहन कर खेल।"

"केसर रग न मिलने पर उत्सव न खेलूँगी। तू दूसरी स्त्री लेकर खेल।"

"भद्रे! मुझे क्यो कष्ट देती है। हम दरिद्रो के पास केसर कहाँ?"

"स्वामी! पुरुष की इच्छा हो तो क्या नहीं है? क्या राजा के केसर-बाग में बहुत केसर नहीं है?"

"भद्रे! वह स्थान राक्षसो से सुरक्षित तालाव की तरह बहुत बलवान आदमियो से सुरक्षित है। वहाँ नहीं जा सकता। तू उसकी इच्छा मत कर। जो है उसी से सन्तुष्ट रह।"

"स्वामी! रात को अन्धकार होने पर क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ आदमी नहीं जा सकता।"

उसके बार बार कहने से आसक्ति होने के कारण उसने उसकी बात स्वीकार कर कहा—"अच्छा, भद्रे! चिन्ता मत कर।"

इस प्रकार उसे आश्वासन दे, रात को, जीवन का मोह छोड नगर से निकल राजा के केसर-बाग पर जा वहाँ बाड को तोड़ बाग में दाखिल हुआ। पहरे-दारो ने बाड के शब्द को सुन 'चोर है' समझ घेर कर पकड लिया। फिर गाली

दे, पीट, बाँधकर दिन होने पर राजा के पास ले गए। राजा ने आज्ञा दी—जाओ इसे सूली पर चढा दो।

वे उसकी बाहो को पीछे बाँध बध्य-भेरी के बजते हुए उसे नगर से बाहर ले गए और वहाँ सूली पर चढा दिया। बडी वेदना हुई। कौवे सिर पर बैठ कर बर्छी की नोक सदृश चोच से उसकी आँखें निकालने लगे। वैसे कष्ट को भी भूलकर वह यही सोचता रहा—'ओह ! मै घने पुष्प के रग से रगे वस्त्र पहने, गले मे दोनो हाथ डाले उस स्त्री के साथ कार्तिक रात्रि के उत्सव में न घूम सका।" इस प्रकार चिन्ता करते हुए यह गाथा कही—

नयिद दुक्ख अदु दुक्ख य म तुदति वायसो,
यं सामा पुप्फरत्तेन कत्तिक नानुभोस्सति ॥

[*न मै इसे ही दु ख समझता हूँ, न उसे ही जो कि कौआ मुझे ठोगे मारता है। मुझे दु ख है तो यह है कि मेरी श्यामा फूल के रँगे वस्त्र से कार्तिक के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी।*]

नयिद दुक्ख अदु दुक्ख य म तुदति वायसो, यह जो सूली पर चढने का शारीरिक और मानसिक दु ख है और यह जो लोहे जैसी चोच से कौआ मुझे ठोगे मारता है, यह सब मेरे लिए दु ख नही है। केवल वही दु ख मेरे लिए दु ख है। कौनसा ? **य सामा पुप्फ रत्तेन कत्तिक नानुभोस्सति,** जो वह प्रियङ्गु श्यामा मेरी भार्य्या एक केसरी वस्त्र पहन, एक ओढ, इस प्रकार घने रगीन लाल वस्त्र जोडे को धारण कर मुझे गल लगा कार्तिक रात्रि के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी। *यही मेरा दु ख है। यही मुझे कष्ट देता है।*

वह इस प्रकार उस स्त्री के बारे में विलाप करता हुआ ही मरकर नरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति पत्नी इस समय के पति-पत्नी। उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला आकाश-देवता मैं ही था।

१४८. सिगाल जातक

"नाहं पुन न च पुन..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामुकता का निग्रह करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ महाधनवान्, सेठों के पुत्र, जिनकी परस्पर मित्रता थी शास्ता का धर्मोपदेश सुन शासन में दिल से प्रव्रजित हो जेतवन के उस हिस्से में रहने लगे जिसमें अनाथपिण्डिक ने कार्षापण बिछवाए थे।

एक दिन आधी रात के समय उनके मन में कामुकता का भाव पैदा हुआ। उन्होंने उद्विग्न होकर एक बार छोड़े हुए कामुकता के विचार को फिर अपनाने की सोची।

शास्ता ने आधी रात के समय अपने सर्वज्ञता रूपी ज्ञान-दण्ड-प्रदीप को उठाकर देखा कि इस समय जेतवन के भिक्षुओं के मन में क्या विचार उत्पन्न हो रहे हैं। उन्हें पता लगा कि उन भिक्षुओं के मन में कामुकता का भाव पैदा हुआ है।

बुद्ध अपने शिष्यों की उसी तरह रक्षा करते हैं जैसे एक ही पुत्रवाली स्त्री अपने पुत्र की अथवा एक ही आँखवाला अपनी आँख की। पूर्वाह्न आदि जिस किसी समय में भी उनके मन में बुरे विचार आते हैं, वे उन्हें अधिक न बढ़ने देकर तुरन्त निग्रह करते हैं। इसलिए उनके मन में ऐसा हुआ कि यह तो चक्रवर्ती राजा के नगर के अन्दर ही चोरों के दाखिल हो जाने जैसी बात है। मैं अभी उन्हें धर्मोपदेश कर, उनके बुरे संकल्पों का निग्रह कर उन्हें अर्हत्व दूंगा।

उन्होंने सुगन्धित गन्धकुटी से निकल आयुष्मान् आनन्द स्थविर को जो कि धर्म के खजानची थे, मधुर स्वर से बुलाया—"आनन्द!"

स्थविर "क्या आज्ञा है भन्ते!" कह प्रणाम करके खड़े हुए।

"आनन्द ! करोडो कार्षापण फैलाए जाने की सीमा के अन्दर जितने भिक्षु हैं, उन सब को गन्धकुटी के आँगन में एकत्र कर !"

बुद्ध ने सोचा कि यदि मैं केवल उन पाँच सौ भिक्षुओ को बुलवाऊँगा, तो उनके मन में होगा कि शास्ता ने हमारे मन के बुरे विचारो को जान लिया। वे उद्विग्न हो जाएँगे और धर्मोपदेश ग्रहण न कर सकेंगे। इसलिए कहा कि सभी को इकट्ठा कर।

"अच्छा भन्ते !" कह स्थविर ने चाबी[1] ले, एक आँगन से दूसरे आँगन घूम, सभी भिक्षुओ को गन्धकुटी के आँगन में इकट्ठा कर बुद्ध के लिए आसन बिछाया। शास्ता बिछे हुए आसन पर पालथी मार, शरीर को सीधा रख वैसे ही बैठ मानो शिला रूपी पृथ्वी पर सुमेरु पर्वत प्रतिष्ठित हुआ हो। बारी बारी करके छ वर्ण की घनी बुद्ध रश्मिएँ निकल रही थी। वह रश्मियाँ भी हाथ जितनी ऊँची हो, छत्र जितनी ऊँची हो, कगूरे जितनी ऊँची हो छीज छीज कर आकाश म बिजली की तरह फैली। ऐसा हुआ जैसे समुद्र की कोख को क्षुब्ध करके उसमें से बाल-सूर्य्य निकला हो।

भिक्षुसघ भी शास्ता को प्रणाम करके बडे आदर के साथ उन्हे घेरकर इस प्रकार बैठा जैसे शास्ता लाल कम्बल की कनात से घिरे हुए हो। बुद्ध ने भिक्षुओ को ब्रह्मस्वर से सम्बोधन कर कहा—

'भिक्षुओ, भिक्षु को काम-भोग सम्बन्धी वितर्क, क्रोध सम्बन्धी वितर्क, विहिसा सम्बन्धी वितर्क—इन तीन बुरे सकल्पो को मन में जगह नही देनी चाहिए। यदि मन में कोई बुरा विचार आ जाए तो उसे छोटा न समझना चाहिए। बुरा विचार शत्रु की तरह होता है। शत्रु कभी छोटा नही होता। मौका मिलने से वह नाश ही कर डालता है। इसी प्रकार थोडा सा भी बुरा विचार यदि उसे बढने का मौका मिले तो महाविनाश कर डालता है। बुरा विचार हलाहल विष की तरह होता है, ऐसे फोडे की तरह होता है, जिसने चमडी और रोएँ उखाड लिए हो, विषैल साँप की तरह होता है, बिजली और आग की तरह होता है। इससे चिमटना ठीक नहीं। डरते रहना चाहिए। जिस समय पैदा हो

---

[1] अवापुरण—दरवाजा खोलने का लकडी का कोई औजार।

उसी समय ज्ञानबल से अथवा भावनाबल से उसे इस तरह त्याग देना चाहिए जिस तरह कमल के पत्ते पर पड़ी हुई बूंद उसे छोड़ देती है। पुराने पण्डितों ने थोड़े से भी बुरे विचार को असहन कर उसका इस प्रकार निग्रह कर दिया कि वह फिर पैदा न हो।" इतना कह बुद्ध ने पूर्वजन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सियार की योनि में पैदा हो जगल मे नदी के किनारे बसने लगे।

एक बूढ़ा हाथी गङ्गा के किनारे मर गया। शिकार की खोज में घूमते हुए सियार ने हाथी के शरीर को देखकर सोचा कि मुझे बड़ा शिकार मिला है। उसने सूँड पर जाकर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो हल की फाल पर मुँह लगा। यहाँ कुछ खाने योग्य नहीं है, समझ उसने दाँतों पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो खम्भे पर मुँह लगा हो। कान पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो छाज के कोने पर मुँह लगा हो। पेट पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो धान की कोठी पर मुँह लगा हो। पैरों पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो ऊखल पर मुँह लगा हो। पूँछ पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो मूसल पर मुँह लगा हो। यहाँ भी कुछ खाने योग्य नहीं है, सोच कहीं भी कुछ मजा न आने पर उसने गुदा-मार्ग में मुँह मारा। ऐसा लगा मानो नरम नरम पूए हों।

उसने सोचा कि अब मुझे इस शरीर में खाने योग्य कोमल जगह हाथ लग गई। उसके बाद से वह खाता हुआ पेट के अन्दर घुस, वहाँ वृक्क, हृदय आदि को खाकर प्यास के समय रक्त पी, लेटने की इच्छा होने पर पेट में ही फैलकर लेटा। वह सोचने लगा कि यह हाथी का शरीर मुझे रहने का सुख देता है इसलिए घर की तरह है, खाने की इच्छा होने पर मांस की कमी नहीं, मुझे किसी दूसरी जगह जाने की क्या आवश्यकता? वह किसी दूसरी जगह न जा हाथी के पेट में ही मांस खाता हुआ रहने लगा।

जैसे जैसे समय गुजरता गया ग्रीष्म ऋतु की वायु के तथा सूर्य की किरणों के स्पर्श से वह लाश सूखकर उसमें बल पड़ गए। जिस द्वार से सियार ने प्रवेश किया था, वह दरवाजा बन्द हो गया। पेट में अन्धेरा छा गया। सियार को

तथा हि भय तज्जितो, मैं इसी बार प्रवेश करने से भी भयभीत हो गया; मरण भय से त्रास को तथा उद्विग्नता को प्राप्त हुआ।

इतना कह और वहाँ से भाग फिर उस अथवा अन्य किसी भी हाथी के शरीर को खड़े होकर देखा तक नहीं। उस के बाद से लोभ के वशीभूत नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला कर कहा—भिक्षुओ, अन्दर जो मैल पैदा हो जाए उस चित्त के मैल को बढ़ने न देकर वहीं निग्रह करना चाहिए। इतना कह आर्य-सत्यों का प्रकाशन कर, जातक का सारांश निकाला। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह पाँच सौ भिक्षु अर्हत् हो गए। शेष में से कुछ स्रोतापन्न, कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनागामी हुए।

उस समय सियार तो मैं ही था।

१४६. एकपण्ण जातक

"एक पण्णो अयं रुक्खो..." यह शास्ता ने वैशाली के पास महावन की कूटागार शाला में रहते हुए वैशाली के एक दुष्ट-स्वभाव लिच्छवि-कुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वैशाली में गावुत गावुत[1] की दूरी पर तीन प्राकारें बनी थीं। तीनों जगहों पर गोपुर थे, अट्टालिकाएँ थीं तथा कोठे थे। इस प्रकार अत्यन्त शोभायमान था।

---

[1] गव्यूति=२ मील।

वहाँ सदैव राज्य करवाते हुए रहनेवाले राजाओ की सख्या सात हजार सात सौ सात होती थी। उतने ही उपराजा होते थे। उतने ही सेनापति। उतने ही भण्डारी।

उन राजकुमारो में एक कुमार **दुष्ट लिच्छवि कुमार** कहलाता था। वह क्रोधी था, प्रचण्ड था, कठोर था। डण्डे से छेडे गए जहरीले साँप की तरह क्रोध से सदैव जलता रहता था। कोई भी उसके सामने दो तीन शब्द भी नही बोल सकता था। उसे न उसके माता पिता, न रिश्तेदार और न यार-दोस्त ही समझा सके। तब उसके माता पिता ने सोचा—"यह कुमार अत्यन्त कठोर स्वभाव का है दुस्साहसी है। सम्यक् सम्बुद्ध को छोड और कोई इसे विनयी नही बना सकता। हो सकता है कि यह उन्ही लोगो में से हो जो बुद्ध के विनीत बनाने से ही विनीत बनते है।" वे उसे शास्ता के पास ले गए और प्रणाम करके बोले—भन्ते ! यह कुमार प्रचण्ड है, कठोर है, क्रोध से जलता है। इसे उपदेश दे।

शास्ता ने उस कुमार को उपदेश दिया—"कुमार ! प्राणियो के प्रति प्रचण्ड नही होना चाहिए, दुस्साहसी नही होना चाहिए, कष्ट देने वाला नही होना चाहिए। कठोर वाणी जिस माता ने जन्म दिया है उसको भी, पिता को भी, पुत्र को भी, भाई बहन को भी, भार्य्या को भी, मित्र बन्धुओ को भी अप्रिय होती है, अच्छी नही लगती। जो आदमी डसने के लिए आए सर्प की तरह, जगल म लूटमार करने के लिए तैयार चोर की तरह, खाने के लिए आए यक्ष की तरह उद्विग्न होता है, वह दूसरे जन्म म नरक आदि मे पैदा होता है। इस जन्म म क्रोधी आदमी सजा धजा रहन पर भी दुर्वर्ण ही होता है। इसका पूर्ण चन्द्र की सी शोभा वाला भी चेहरा आग से जल कमल के सदृश अथवा मैले कञ्चन के शीशे की तरह भोडा हो जाता है, देखने में बुरा लगता है। क्रोध के कारण ही प्राणी शस्त्र लेकर स्वय अपने को मार डालते हैं। विष खा लेते है। रस्सी से फाँसी लटक जाते है। प्रपात से गिर पडते है। इस प्रकार क्रोध के वशीभूत हो मरकर वह नरक आदि मे पैदा होते है। दूसरो को कष्ट देनेवाले भी इस जन्म में निन्दा को प्राप्त हो मरने पर नरक आदि म उत्पन्न होते है। फिर जब मनुष्य होकर पैदा होते है तो पैदा होने के ही समय से लेकर प्राय रोगी रहते है। आँख की बीमारी तथा कान की बीमारी आदि रोगो में एक से उठने पर दूसरी बीमारी में फँस

जाते हैं। रोग से मुक्त न हो सकने के कारण नित्य दुखी रहते हैं। इसलिए सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना रखनी चाहिए। सभी का हित चिन्तक होना चाहिए। सभी के प्रति कोमल चित्त वाला होना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार का (क्रोधी) आदमी नरक आदि के भय से मुक्त नहीं होता।

वह कुमार शास्ता का एक ही उपदेश सुनकर मान-रहित हो गया, शान्त इन्द्रिय हो गया, क्रोध-रहित हो गया, मैत्री-चित्त वाला हो गया तथा कोमल चित्त का हो गया। उसे कोई गाली देता, मारता तो भी वह उसकी ओर रुक कर न देखता। वह ऐसा साँप हो गया जिसके दाँत उखाड़ दिए गए हों, ऐसा केकड़ा हो गया जिसके डंक जाते रहे हों, ऐसा बैल हो गया जिसके सींग न हों।

उसका समाचार जानकर भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! दुष्ट लिच्छवि कुमार को चिर काल तक उपदेश देते रहकर भी न माता पिता न रिश्तेदार-मित्र आदि ही उसे विनीत बना सके। सम्यक् सम्बुद्ध ने उसे एक ही उपदेश से ऐसा कर दिया जैसे किसी मस्त हाथी को शान्त कर दिया हो। यह ठीक ही कहा गया है—भिक्षुओ! हाथी-दमन करने वाला जब हाथी को दमन करता है तो दमन किया हुआ हाथी एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम दिशा में, चाहे उत्तर दिशा में अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, घोड़ा-दमन करनेवाला जब घोड़े को दमन करता है तो दमन किया हुआ घोड़ा एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम में, चाहे उत्तर में, अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, बैल को दमन करने वाला जब उसे दमन करता है, तो दमन किया हुआ बैल एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम में, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण में। लेकिन भिक्षुओ, जिसे तथागत अर्हत्सम्यक् सम्बुद्ध शिक्षित करते हैं वह आठ दिशाओं में जाता है रूपवान रूपों को देखता है, यह एक दिशा है . . . संज्ञा तथा वेदना का जो निरोध है उसे प्राप्त कर विचरता है, यह आठवीं दिशा है। वह शिक्षितों में अनुपम पुरुष-दम्य-सारथि कहलाते हैं।[1] आयुष्मानो! सम्यक् सम्बुद्ध के समान पुरुषों का दमन करनेवाला सारथि नहीं है।

---

[1] मज्झिम निकाय (३)

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ ! मैंने इसे केवल अब ही एक ही उपदेश से शिक्षित नहीं किया है, पहले भी एक ही उपदेश से शिक्षित किया है ।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय म वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व ने उदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बडे होने पर तक्षशिला मे तीनो वेद और सभी शिल्प सीखे । फिर कुछ समय घर म रहकर माता पिता के मरने पर ऋषियो की प्रव्रज्या के ढग से प्रव्रजित हो अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय में प्रवेश किया । चिरकाल तक वहाँ रहन के बाद नमक और खटाई खाने के लिए जनपद म आकर वाराणसी पहुँच राजा के उद्यान म रहा । फिर एक दिन अच्छी तरह से वस्त्र पहन, आच्छादित हो, तपस्वी के रूपरग मे भिक्षा माँगने के लिए नगर में प्रविष्ट हो राजा के आँगन में पहुँचा ।

राजा ने झरोखे से देखा तो उसकी चाल-ढाल से मन प्रसन्न हुआ । उसने देखा कि यह तपस्वी शान्त इन्द्रिय तथा शान्त मनवाला है । चलता है तो नीची नजर करके युग मात्र[1] देखता हुआ चलता है । मालूम होता है कि कदम कदम पर एक एक हजार की थैली रखता हुआ सिंह की तरह चला आ रहा है । 'यदि कहीं पर शान्त धर्म नाम की कोई चीज है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी' सोच एक आमात्य की ओर देखा ।

'देव ! क्या आज्ञा है ?'

'इस तपस्वी को ले आओ ।'

वह 'देव ! अच्छा' कह बोधिसत्त्व के पास गया । वहाँ पहुँचकर बोधिसत्त्व को प्रणाम कर उनके हाथ से भिक्षा-पात्र लिया । बोधिसत्त्व ने पूछा—

"महापुण्यवान् ! क्या बात है ?"

"भन्ते ! महाराज आपको याद कर रहे हैं ।"

---

[1] युग, दो हाथ तक ।

"हम राजकुल में आने जाने वाले नही हैं, हम हिमवन्त निवासी हैं।"

आमात्य ने जाकर राजा से यह बात कही। राजा बोला—हमारे यहाँ आने जाने वाला कोई भिक्षु नहीं है। उन्हे जाकर ले आओ।

आमात्य ने जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, प्रार्थना कर, साथ लिवा राज-भवन में पहुँचाया।

राजा ने बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, श्वेत छत्र लगे हुए सोने के सिंहासन पर बिठा, अपने लिए तैयार किए गए नाना प्रकार के भोजन खिलाकर पूछा—'भन्ते ! कहाँ रहते है ?'

'महाराज ! हम हिमवन्त-निवासी हैं।'

'अब कहाँ जा रहे है।"

'महाराज ! वर्षा-ऋतु के अनुकूल निवास स्थान की खोज है।'

'तो भन्ते ! हमारे ही उद्यान मे रहें।'

उनसे स्वीकृति ले अपना भी भोजन समाप्त कर राजा बोधिसत्त्व के साथ उद्यान गया। वहाँ पर्णशाला बनवा, उसमें रात के रहने योग्य तथा दिन में रहने योग्य स्थान तैयार करवा, प्रव्रजितों की आवश्यकताएँ दे, उनकी सेवा आदि के लिए उद्यानपाल को भार सौंप स्वय नगर को लौटा। उस समय से बोधिसत्त्व उद्यान में रहने लगे। राजा भी दिन में दो तीन बार उनकी सेवा में जाता।

उस राजा का दुष्ट कुमार नाम का पुत्र था। वह क्रोधी था, कठोर था। न उसे राजा ही विनीत बना सका, न बाकी रिश्तेदार। आमात्यो और ब्राह्मण गृहपतियों ने क्रुद्ध होकर इतना कहा कि 'हे स्वामी ! ऐसा न करें। ऐसा न कर सकेंगे।' इतने से भी वह उसे कुछ न समझा सके।

राजा ने सोचा मेरे शीलवान् तपस्वी के अतिरिक्त कोई दूसरा इस कुमार को विनीत नहीं बना सकता।

वह कुमार को बोधिसत्त्व के पास ले गया और उन्हे सौंपते हुए कहने लगा—भन्ते ! यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है। हम इसे विनीत नहीं कर सकते। आप इसे किसी ढंग से शिक्षा दें। इतना कह चला गया।

बोधिसत्त्व ने कुमार के साथ उद्यान मे घूमते हुए नीम का एक पौदा देखा जिसके एक ओर एक पत्ता, दूसरी ओर दूसरा पत्ता—इस प्रकार कुल दो पत्ते थे। बोधिसत्त्व ने कुमार से कहा—कुमार ! इस पौदे के पत्ते खाकर इसका

रस चखो। उसने उसका एक पत्ता मुँह में रखते ही उसका रस चख "थू" करके जमीन पर थूका। "कुमार यह क्या?" "भन्ते! यह पौदा अभी हलाहल विष के समान है, बडे होने पर तो यह बहुत मनुष्यो की जान लेगा।" इतना कहते हुए उसने नीम के पौदे को उखाडकर हाथो से मल डाला और यह गाथा कही—

> एकपण्णो अयं रुक्खो न भुम्या चतुरङ्गुलो,
> फलेन विस कप्पेन महाय किं भविस्सति॥

[इस पौदे का केवल एक पत्ता है और यह भूमि से चार अगुल ऊँचा नही। विष जैसे पत्तेवाला यह बडा होकर क्या होगा।]

एक पण्णो, दोनो ओर एक एक पत्ता है। न भुम्या चतुरङ्गुलो, भूमि से चार अगुल भी ऊँचा नही बढा है। फलेन, अर्थात् पत्ते से। विसकप्पेन, हलाहल विष जैसे से। इतना छोटा होता हुआ भी ऐसे कडवे फल वाला है। महायं किं भविस्सति, जब यह वृद्धि पाकर बडा होगा तब कैसा होगा? निश्चय से मनुष्य की जान लेने वाला होगा। इसी से उखाड कर हाथ से मलकर फेंक दिया—यह कहा।

तब बोधिसत्त्व ने उसे कहा—'कुमार! तूने इस पौदे को यह सोचकर कि यह अभी से इतना तीता है, बडे होने पर इससे किसी की क्या उन्नति होगी, तोड कर, मरोड कर फेंक दिया। जैसे तूने इसके प्रति बरताव किया, ठीक इसी तरह तेरे राष्ट्र के वासी भी यह सोचेंगे कि यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है, बडा होने पर राज्य प्राप्त करके क्या करेगा? इससे हमारी उन्नति कहाँ होगी? वह तुझे राज्य न दे, नीम के पौदे की तरह उखाडकर तुझे राष्ट्र से निकाल देंगे। इसलिए नीम के पौदे के स्वभाव को छोड अब से शान्ति, मैत्री तथा दया से युक्त हो।

उस समय से उसने अभिमान छोड दिया। नम्र हो गया। शान्ति, मैत्री और दया से युक्त हो बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार आचरण कर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त किया। फिर दान आदि पुण्य कर्म करता हुआ यथाकर्म (परलोक) सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना "भिक्षुओ ! मैंने केवल अभी इस दुष्ट लिच्छवि कुमार को सीधा नहीं किया, पहले भी सीधा किया है" कह जातक का मेल बैठाया।

उस समय दुष्ट कुमार यह लिच्छवि कुमार था। राजा आनन्द था। उपदेश देनेवाला तपस्वी मैं ही था।

१५०. सञ्जीव जातक

"असन्तं यो पग्गण्हाति " यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय अजातशत्रु राजा द्वारा किए गए दुर्गुणी के आदर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने बुद्धों के विरोधी, दुश्चरित्र, पापी देवदत्त के प्रति श्रद्धावान् हो, उस दुष्ट असत्पुरुष को ऊँचा स्थान दे उसका आदर करने की इच्छा से बहुत सा धन खर्च करके गया-सीस पर एक विहार बनवा दिया। उसी की बात मान अपने पिता को जो कि श्रोतापन्न आर्य-श्रावक था मरवा डाला। इस प्रकार अपने श्रोतापन्न होने की सम्भावना में बाधा डाल विनाश को प्राप्त हुआ।

जब उसने सुना कि देवदत्त को जमीन निगल गई तो उसे डर हुआ कि कहीं उसे भी जमीन न निगल जाए। भयभीत होने से उसका राज्य-सुख जाता रहा। शय्या पर सोता तो उसे सोने में मजा न आता। तीव्र वेदना से पीडित हाथी के बच्चे के समान वह इधर उधर विचरता। उसे ऐसा दिखाई देने लगा जैसे पृथ्वी फट गई हो, उसमें से अवीचि-ज्वाला[1] निकल रही हो, और पृथ्वी

---

[1] अवीचि नरक से निकलने वाली ज्वाला।

उसे निगले जा रही हो, तप्त लोह शय्या पर लिटाकर लोहे की कीलें ठोकी जा रही हों। इससे उस राजा को चोट खाए मुर्गे की तरह क्षण भर के लिए भी शान्ति न थी, कांपता ही रहता था।

उसने सम्यक् सम्बुद्ध के दर्शन कर उनसे क्षमा माँगने की तथा शका मिटाने की इच्छा की। लेकिन अपने अपराध के भार के कारण उसकी जाने की हिम्मत न हुई।

राजगृह नगर में कार्तिकोत्सव था। नगर देवनगर की तरह अलङ्कृत था। महल पर अमात्यगणो से घिरा राजा स्वर्ण सिंहासन पर बैठा था। उसने देखा कि कौमारभृत्य जीवक पास ही बैठा है। उसके मन मे आया कि मै जीवक को लेकर सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाऊँ। लेकिन उसने साथ ही सोचा कि मैं जीवक को सीधा तो यह नही कह सकता कि हे जीवक ! मै सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाना चाहता हूँ। अकेला नही जा सकता। मुझे बुद्ध के पास ले चल। मै उसे एक ढग से कहूँगा—रात्रि के सौन्दर्य की प्रशसा करके पूछूँगा कि आज हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्सग करें, जिसका सत्सग करने से मन प्रसन्न हो। इसे सुन कर आमात्य अपने अपने शास्ता की प्रशसा करेंगे। जीवक भी सम्यक् सम्बुद्ध की प्रशसा करेगा। तब उसे लेकर बुद्ध के पास जाऊँगा।

उसने पाँच पदो से रात्रि की प्रशसा की—"भो ! चाँदनी रात्रि लक्षण-सम्पन्ना है। भो ! चाँदनी रात्रि सुन्दर है। भो ! चाँदनी रात्रि दर्शनीय है। भो ! चाँदनी रात्रि मन को प्रसन्न करने वाली है। भो ! चाँदनी रात्रि रमणीय है। आज की रात हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्सग करें, जिसका सत्सग करने से चित्त प्रसन्न हो ?"

एक आमात्य ने पूरण कश्यप की प्रशसा की। एक ने मक्खलि गोशाल की। एक ने अजित केश कम्बल की। एक ने प्रबुध कात्यायन की। एक ने वेलट्ठिपुत्र सञ्जय की। एक ने निर्ग्रन्थनाथपुत्र की।

राजा उनकी बातचीत सुन चुप रहा। वह महामात्य जीवक के कहने का ही विश्वास करता था। जीवक ने भी यह सोचकर कि जब राजा मेरे प्रति कुछ कहेगा, तभी देखूँगा मौन ही रक्खा। राजा ने पूछा—"जीवक ! तू क्यो चुप है ?" तब जीवक ने आसन से उठ जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़कर कहा—देव ! यह भगवान् अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध हमारे आम्रवन में रहते हैं।

उनके साथ साढे बारह सौ भिक्षु हैं। उन भगवान् की इस प्रकार की कीर्ति है कि वह अर्हत हैं ...इस प्रकार नौ तरह[1] के गुण हैं, यह और उनके जन्म के समय से पूर्व निमित्त आदि भेद तथा भगवान् के प्रताप को प्रकाशित कर कहा कि देव! उन भगवान् बुद्ध का सत्संग करें, धर्म सुनें तथा शकाएँ मिटाएँ।

राजा का मनोरथ पूरा हुआ। वह बोला—सौम्य! जीवक! हाथियो को सजवाओ। हाथियो को सजवा बड राजसी ठाट-बाट से जीवक के आम्रवन में पहुँच राजा ने देखा सुगन्धित बडे भवन में तथागत भिक्षु सघ से घिरे बैठे हैं। जैसे महान् सरोवर हो, किन्तु उसकी लहरें शान्त हो, वैसे ही भिक्षु-सघ को इधर उधर से देखकर राजा ने सोचा—ऐसी शान्त परिषद् तो मैंने इससे पहले कभी देखी ही नही। उसने भिक्षु-परिषद् के उठने-बैठने के तरीके से ही प्रसन्न हो सघ को प्रणाम किया। फिर सघ की स्तुति करते हुए उसने भगवान् को प्रणाम किया और एक ओर बैठकर श्रमणत्व के फल के बारे में प्रश्न किया। भगवान् ने उसे दो भाणवारो में विस्तार करके सामञ्ञफल सूत्र[2] का उपदेश दिया। सूत्र का उपदेश हो चुकने पर वह प्रसन्न हो भगवान् से क्षमा माँग आसन से उठकर चला गया।

राजा के चले जाने के थोडी ही देर बाद बुद्ध ने भिक्षुओ को बुलाकर कहा—भिक्षुओ, यह राजा जख्मी होगया समझो। भिक्षुओ, राजा को आहत हो गया समझो। यदि यह ऐश्वर्य्य के लोभ मे पडकर अपने धार्मिक, धर्म से राज्य करने वाल पिता को जान से न मरवाता, तो इसे इसी आसन पर रज रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु, उत्पन्न हो जाता। देवदत्त के कारण, दुष्ट को बडा स्थान देने से वह श्रोतापत्ति फल को न प्राप्त कर सका।

किसी दूसरे दिन भिक्षुओ ने धर्म-सभा म बातचीत चलाई—'आयुष्मानो! अजातशत्रु ने दुष्ट का आदर करके, दुश्चरित्र, पापी देवदत्त की प्रेरणा से पितृ-

---

[1] इति पि सो भगवा,[1] अरह,[2] सम्मासम्बुद्धो,[3] विज्जाचरणसम्पन्नो,[4] सुगतो,[5] लोकविदू,[6] अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि,[7] सत्था देवमनुस्सान,[8] बुद्धो भगवाति[9]॥

[2] दीघ निकाय, (दूसरा सूत्र)।

हत्या करके श्रोतापत्ति फल से हाथ धोया। देवदत्त ने राजा का नाश कर दिया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, केवल अभी अजातशत्रु दुष्ट का सम्मान करके विनाश को प्राप्त नही हुआ पहले भी इसने दुष्ट का आदर कर अपना नाश किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महा सम्पत्तिशाली ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जाकर सब शिल्प सीख आए। फिर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ विद्यार्थियो को विद्या सिखाने लगे।

उन विद्यार्थियो मे एक सञ्जीव नाम का विद्यार्थी था। बोधिसत्त्व ने उसे मुर्दे को जिलाने का मन्त्र सिखाया। उसने मुर्दे को जिलाने का ही मन्त्र सीखा, फिर सुलाने का नही सीखा। एक दिन विद्यार्थियो के साथ जब वह लकडी बटोरने जगल गया तो उसने एक मृत-व्याघ्र को देखा। उसने अपने साथियो से कहा—मैं इस मृत-व्याघ्र को जिलाऊँगा।

विद्यार्थी—"नही जिला सकेगा।"

सञ्जीवक—"तुम लोगो के देखते ही देखते जिलाऊँगा।"

विद्यार्थी—"यदि जिला सकता है तो जिला।"

इतना कहकर वे विद्यार्थी वृक्ष पर चढ गए। सञ्जीवक ने मन्त्र पढकर मृत-व्याघ्र पर ककर फेंके। व्याघ्र उठकर जल्दी से आया और सञ्जीवक का गला काट उसे मार स्वय भी वही गिर पडा। सञ्जीवक भी वही गिर पडा। दोनो एक ही स्थान पर मुर्दे हो गए।

विद्यार्थियो ने लकडी ले आकर आचार्य्य को वह समाचार सुनाया। आचार्य्य ने विद्यार्थियो को बुलाकर कहा—तात! दुष्ट को बडप्पन देनेवाले, जहाँ सम्मान नही करना चाहिए, वहाँ सम्मान प्रदर्शित करनेवाले इस प्रकार वे दुख को अवश्य प्राप्त होते हैं। इतना कह यह गाथा कही—

असन्त यो पग्गण्हाति असन्तञ्चुपसेवति,
तमेव घास कुरुते व्यग्घो सञ्जीविको यथा॥

[जो दुश्चरित्र को बड़प्पन देता है, जो दुराचारी की सगत करता है, उसे वह दुराचारी वैसे ही खा जाता है जैसे जीवन-प्राप्त व्याघ्र ।]

असन्तं—तीन प्रकार[1] के दुश्चरित्र से युक्त, दुश्शील, पापी। **यो पग्गण्हाति,** क्षत्रिय आदि में जो कोई इस प्रकार के दुराचारी प्रव्रजित को चीवर आदि देकर अथवा गृहस्थ को उपराज या सेनापति आदि का पद देकर बड़प्पन देता है, सत्कार तथा सम्मान प्रदर्शित करता है। **असन्तञ्चुपसेवति,** जो इस प्रकार के दुश्शील की सगति करता है। **तमेव घासं कुरुते,** उसी दुष्ट आदमी को, बड़प्पन देनेवाले को वह दुराचारी खा जाता है, नष्ट करता है। कैसे? **व्यग्घो सञ्जीविको यथा,** जैसे सञ्जीवक नाम के विद्यार्थी ने मृत-व्याघ्र को मन्त्र पढकर जिलाया, जीवन-दान दे आदृत किया। उसने उस जीवन-दान देनेवाले सञ्जीवक का ही प्राण ले लिया। इस प्रकार जो कोई भी दुष्ट आदमी का आदर करता है, वह दुष्ट अपना आदर करनेवाले ही को नष्ट करता है। इस तरह दुष्टो को बड़प्पन देनेवाले नाश को प्राप्त होते हैं।

बोधिसत्त्व इस गाथा द्वारा विद्यार्थियो को उपदेश दे दानादि पुण्य करके कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने भी यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मृत-व्याघ्र को जिलानेवाला विद्यार्थी अजातशत्रु था। चारो दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था।

---

[1] काय, वाक् तथा मन के पाप-कर्म।

दूसरा परिच्छेद

१. दळ्ह वर्ग

१५१. राजोवाद जातक

"दळ्हं दळ्हस्स खिपति...." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय राजा को दिए गए उपदेश के बारे मे कही। वह उपदेश तेसकुण जातक[1] में आएगा।

क. वर्तमान कथा

एक दिन कोशल-नरेश किसी पाप-कर्म सम्बन्धी ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नही था, फैसला करके प्रात काल का भोजन कर चुकने पर गीले हाथो ही अलकृत रथ में बैठ शास्ता के पास गया। वहाँ पुष्पित कमल सदश चरणो में गिर कर प्रणाम किया और एक ओर बैठा।

शास्ता ने पूछा—हन्त ! महाराज ! दिन चढ तुम कहाँ से आए ?

राजा—भन्ते ! आज पापकर्म सम्बन्धी एक ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नही था, फैसला करने में लगे रहने के कारण समय नही मिला। अभी उसका फैसला कर, भोजन करके गीले हाथो ही आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।

शास्ता—महाराज ! धर्म से, न्याय से, मुकद्दमे का फैसला करना शुभ-कर्म है। यह स्वर्ग का मार्ग है। लेकिन इसमे आश्चर्य्य की क्या बात है यदि तुम मेरे जैसे सर्वज्ञ से उपदेश लेते हुए भी धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमे का फैसला करते हो। आश्चर्य्य तो इसी में है कि पूर्व के राजा लोग जिन्होने ऐसे पण्डितो का ही उपदेश सुना जो सर्वज्ञ नही थे धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमे के फैसले करते

---

[1] जातक (५२१)

हुए चार अगतियों[1] से बचकर दस राजधर्मों से विरुद्ध न जा धर्मानुसार राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरनेवाले हुए।

इतना कह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख में रह गर्भ की सम्यक् रक्षा होने पर माता की कोख से बाहर निकले। नाम-करण के दिन उसका नाम ब्रह्मदत्तकुमार ही रक्खा गया।

क्रम से बढते हुए सोलह वर्ष की आयु होने पर वह तक्षशिला जाकर सब शिल्पों में निष्णात हो पिता के मरने पर राजा हो धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगा। राग आदि के वशीभूत न हो वह मुकद्मो का फैसला करता। उसके धर्म से राज्य करने से अमात्य भी धर्म से ही व्यवहारो (=मुकद्मो) का फैसला करते। मुकद्मो का धर्म से फैसला होने के कारण झूठे मुकद्मे करनेवाले भी नही रहे। उनके न होने से राजाङ्गण में मुकद्मे करनेवालो का शोर नही होता था। अमात्य सारा दिन न्यायालय में बैठे रहकर भी जब किसी को मुकद्मा लिए आता न देखते तो उठकर चले जाते। न्यायालय खाली कर देने योग्य हो गए।

बोधिसत्त्व सोचने लगे कि मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुकद्मा करने वाले नही आते। शोर नही होता। न्यायालय छोड़ने योग्य हो गए। अब मुझे अपने दुर्गुणो की खोज करनी चाहिए। जब मुझे यह पता लग जाएगा कि यह यह मेरे दुर्गुण हैं तो उन्हे छोड़कर गुणवान बनकर ही रहूँगा।

उसके बाद से वह खोजने लगे कि कोई मेरे दोष कहने वाला है? उन्हे महल के अन्दर कोई ऐसा नही मिला जो उनके दोष कहे। जो मिला प्रशसा करने वाला ही मिला। 'यह मेरे भय से भी केवल मेरी प्रशसा ही करते होगे' सोच महल के बाहर रहने वालो की परीक्षा की। वहाँ भी कोई न मिला, तो नगर के अन्दर खोज की। नगर के बाहर चारो दरवाजो पर स्थित गाँवो में

---

[1] छन्द, द्वेष, भय तथा मोह के वशीभूत हो पक्षपात करना।

राजा। वहाँ भी कोई दोष कहने वाला न मिला। प्रशंसा ही सुनने को मिली। तब बोधिसत्व ने जनपद में खोजने का निर्णय किया। अमात्यों को राज्य सँभाल वह रथ पर चढ़ केवल सारथि को साथ ले भेष बदल नगर से निकला। जनपद में खोजते हुए वह राज्य की सीमा तक चला गया। जब वहाँ भी उसे कोई दोष दिखाने वाला नहीं मिला, प्रशंसा ही सुनाने वाले मिले तो प्रत्यन्त-देश[1] की सीमा पर से महामार्ग से नगर की ओर लौटा।

उसी समय मल्लिक नाम का कोशल-नरेश भी धर्म से राज्य करता हुआ अपने दोष कहने वाले को ढूँढने के लिए निकला था। जब उसे महल के अन्दर रहने वालों आदि में कोई दोष कहनेवाला नहीं मिला, प्रशंसा करने वाले ही मिले तो वह जनपद में खोजता हुआ वहाँ पहुँचा। वे दोनों गाड़ियों के एक नीचे रास्ते पर आमने सामने हुए। रथों के लिए एक दूसरे को गुजरने देने की जगह नहीं थी।

मल्लिक राजा के सारथि ने वाराणसी राजा के सारथि से कहा—अपने रथ को लौटा ले।

वाराणसी राजा के सारथि ने कहा—तू अपने रथ को लौटा ले। मेरे रथ में वाराणसी राज्य के स्वामी महाराज ब्रह्मदत्त बैठे हैं।

दूसरे ने भी कहा—इस रथ में कोशल राज्य के स्वामी मल्लिक महाराज बैठे हैं। तू अपने रथ को मोड़ कर हमारे राजा के रथ को जगह दे।

वाराणसी राजा के सारथि ने सोचा—यह भी राजा है। अब क्या करना चाहिए? उसे एक उपाय सूझा कि राजा की आयु पूछकर जो आयु में छोटा होगा उसका रथ लौटवाकर जो बड़ा होगा उसके रथ के लिए जगह करवाऊँगा। ऐसा निश्चय कर उसने दूसरे सारथि से कोशल राजा की आयु पूछी। मिलान करने पर दोनों राजा समान आयु वाले निकले। फिर राज्य-विस्तार, सेना, धन, यश, जाति, गोत्र, कुल-भेद आदि के बारे में पूछा। दोनों तीन तीन सौ योजन राज्य के स्वामी निकले। दोनों की सेना, धन, यश, जाति, गोत्र तथा कुल-भेद सब एक सदृश था। तब सोचा जो अधिक शीलवान् होगा उसे

---

[1] राज्य-सीमा के बाहर।

जगह दी जायगी। उसने पूछा—सारथि! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?"

उसने अपने राजा के दुर्गुणों को भी गुण बताते हुए कहा कि हमारे राजा में यह गुण है, यह गुण है, और यह गाथा कही—

दळ्हं दळ्हस्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं
साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना,
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि॥

[मल्लिक कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का। भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से। सारथि! यह राजा ऐसा है। तू मार्ग छोड दे।]

दळ्हं दळ्हस्स खिपति, जो बहुत कठोर होता है उसे कठोर वचन से या प्रहार से ही जीतना चाहिए। ऐसे आदमी के प्रति यह कठोर व्यवहार करता है अथवा कठोर वचन का प्रयोग करता है। इस प्रकार कठोर होकर ही उसे जीतता है—यही प्रगट करता है। **मल्लिको**, उस राजा का नाम है। **मुदुना मुदुं**, कोमल स्वभाव वाले को स्वय भी कोमल होकर जीतता है। **साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना**, जो सज्जन है, उनके प्रति स्वय भी सज्जन बनकर उन्हे सज्जनता से और जो दुर्जन है उनके प्रति स्वय भी दुर्जन बनकर उन्हें दुर्जनता से जीतता है। **एतादिसो अयं राजा**, इस हमारे कोशल राजा का ऐसा सदाचरण है। *मग्गा उय्याहि सारथि*, अपने रथ को लौटाकर छोटे रास्ते से जा। हमारे राजा को रास्ता दे।

तब वाराणसी राजा के सारथि ने पूछा—"भो! क्या तुमने अपने राजा के गुण कह लिए?"

"हाँ।"

"यदि यही गुण है, तो अवगुण कैसे होते है?"

"अच्छा! यह अवगुण ही सही। तुम्हारे राजा में कौन से गुण है?"

"अच्छा तो सुनो" कह दूसरी गाथा कही—

अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं,
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि[1] ॥

[क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कजूस को दान से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है। इसलिए सारथि ! तू मार्ग छोड़ दे।]

एतादिसो, इन **अक्कोधेन जिने** कोध आदि कहे गए गुणों से युक्त। यह क्रोधी आदमी को स्वय शान्त रहकर अक्रोध को जीतता है। **असाधु** को स्वय भला होकर साधुता से। **कदरियं**, अत्यन्त कजूस को स्वय दाता बनकर दान से। **अलिक वादिन**, भूठ बोलनेवाले को स्वय सत्यवादी बनकर। **सच्चेन** जिनाति मित्र सारथि ! मार्ग से हट जा। इस प्रकार के सदाचार से युक्त हमारे राजा को मार्ग दे। हमारा राजा ही मार्ग पाने के योग्य है।

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसके सारथि, दोनों ने उतर कर, घोड़ो को खोल रथ को हटा बाराणसी के राजा को मार्ग दिया। बाराणसी राजा ने मल्लिक राजा को उपदेश दिया कि राजा को यह यह करना चाहिए। फिर बाराणसी जा वहाँ दानादि पुण्य-कर्म करके जीवन समाप्त होने पर स्वर्ग-मार्ग ग्रहण किया।

मल्लिक राजा ने भी उसका उपदेश ग्रहण कर जनपद में जा अपने दोष बताने वाले को बिना खोजे ही अपने नगर पहुँच दानादि पुण्य-कर्म करके स्वर्ग को प्रयाण किया।

शास्ता ने कोशल-नरेश को उपदेश देने के लिए यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मल्लिक राजा का सारथि मोग्गल्लान था। राजा आनन्द था। बाराणसी राजा का सारथि सारिपुत्र था। राजा तो मैं ही था।

---

[1] धम्मपद (१०।३)।

१५२. सिगाल जातक

"असमेक्खित कम्मन्त...." यह शास्ता ने कूटागार शाला में रहते समय वैशाली निवासी एक नाई के लडके के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

उसका पिता राजाओ, रानियो, राजकुमारो तथा राजकुमारियो की हजामत बनाता, केश ठीक करता, शतरज[1] बिछाता तथा और भी सभी कार्य्य करता था। वह श्रद्धावान था। उसने बुद्ध धर्म तथा सघ की शरण गही थी। वह पचशीलो की रक्षा करता था। बीच बीच में वह शास्ता का धर्मोपदेश सुनता हुआ, अपना समय व्यतीत करता था।

एक दिन वह राजा के यहाँ काम करने जाते समय अपने पुत्र को साथ ले गया। पुत्र ने वहाँ एक देवप्सरा सदृश सजी हुई लिच्छवि कुमारी को देखा। वह उस पर आसक्त हो गया। पिता के साथ राजभवन से लौटने पर उसने कहा कि यह कुमारी मिलगी तो बचूँगा, नहीं तो यही मेरा मरण होगा। इतना कह वह खाना पीना छोड चारपाई पर पड रहा।

उसके पिता ने पास आकर कहा—तात! अनधिकार इच्छा मत कर। तू नाई का लडका है। तेरी जाति छोटी है। लिच्छवि कुमारी क्षत्री की लडकी है। ऊँची जाति वाली। वह तेरे लिए योग्य नहीं है। तेरे लिए तेरी समान जाति और गोत्र की कोई दूसरी लडकी ला दूँगा।

उसने पिता का कहना नहीं माना। उसके माता, भाई, बहन, चाची, चाचा

---

[1] दोनो ओर आठ आठ मोहरों के स्थान होने से शतरंज का पुराना नाम अट्ठपद है।

सभी रिश्तेदारो तथा मित्रो आदि ने समझाने की कोशिश की। वे नही समझा सके। वह वही सूख सूख कर मर गया।

उसका पिता शरीर का दाह-कर्म आदि कृत्य करके जब शोक कम हुआ तो शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से बहुत सा गन्ध-माला-लेप आदि ले महावन पहुँच शास्ता की पूजा कर, प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

"उपासक ! क्यो इन दिनो दिखाई नही देता ?"

उसने वह हाल कहा।

शास्ता बोले—"उपासक ! तेरा लड़का केवल अभी अनधिकार इच्छा करके विनाश को प्राप्त नही हुआ, पहले भी हुआ है।"

उपासक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय-प्रदेश मे सिंह होकर पैदा हुए। उनसे छोटे छ भाई थे और एक बहन थी। सभी काञ्चन-गुफा में रहते थे।

उस गुफा से थोडी ही दूर रजत पर्वत पर एक स्फटिक गुफा थी। उसमें एक सियार रहता था। समय गुजरने पर उन सिंहो के माता पिता मर गए। वह अपनी बहन सिंह बच्ची को गुफा में छोड जाते और स्वय शिकार के लिए बाहर निकल मास ला कर उसे देते। वह सियार उस सिंह बच्ची को देखकर उस पर आसक्त हो गया। उसके माता पिता जब थे, तब तो उसे अवसर न मिलता था। अब इन सातो जनों के शिकार के लिए चले जाने पर स्फटिक गुफा से उतर काञ्चन-गुफा के द्वार पर जा सिंह बच्ची के सामने इस प्रकार कुछ लौकिक ढग की गुप्त बातचीत कहता—

'सिंह की बच्ची ! मैं भी चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। तू मेरी भार्य्या बन। मैं तेरा पति बनूँगा। हम मिलकर प्रसन्नता पूर्वक रहेंगे। अब से तू मेरी प्रेमिका हो जा।"

वह उसकी बातचीत सुन सोचने लगी—

"यह सियार चौपायो म सबसे निचले दर्जे का निकृष्ट प्राणी है, वैसे ही जैसे चाण्डाल। हम उत्तम राजकुल के हैं। यह मुझसे असभ्य अनुचित बात

चीत करता है । मैं इस प्रकार की बात चीत सुनकर जीकर ही क्या करूँगी ? साँस रोक कर मर जाऊँगी।"

फिर उसने सोचा—

"मेरा इस प्रकार यूँ ही मरना ठीक नही । मेरे भाई आते हैं । उन्हें कहकर मरूँगी ।"

सियार को भी जब उसकी ओर से कोई उत्तर न मिला तो उसने सोचा यह मुझसे सम्बन्ध नही करेगी । वह अफसोस करता हुआ स्फटिक गुफा में जाकर पड रहा ।

एक सिंह बच्चा भैंस या हाथी में से किसी को मार मास खा, बहन का हिस्सा लाकर बोला—"मास खा ।"

"भाई ! मैं मास नही खाऊँगी । मैं मरूँगी ।"

"क्यो ?"

उसने वह हाल कहा ।

"अब वह सियार कहाँ है ?"

उसने स्फटिक गुफा में पडे हुए सियार को आकाश मे है समझा और बोली—"भाई ! क्या नही देखते हो ? यह रजत पर्वत पर आकाश में स्थित है ।"

सिंह बच्चा नही जानता था कि वह स्फटिक गुफा में लेटा है । उसने उसे आकाश मे लेटा हुआ समझ सोचा "इसे मारूँगा" और सिंह-वेग के साथ उछल कर, स्फटिक गुफा पर छाती से चोट की । उसका हृदय फट जाने से वह मर कर वहीं गिर पडा ।

तब दूसरा आया । उसने उसे भी वैसा ही कहा । उसने भी वैसा ही किया और मरकर पर्वत के नीचे गिर पडा । इस प्रकार छओ भाइयो के मरो पर सबसे अन्त में बोधिसत्त्व आए । उसने उन्हें भी वह हाल कहा और यह पूछने पर कि अब वह कहाँ है बताया कि वह रजत पर्वत पर आकाश में लेटा है ।

बोधिसत्त्व ने सोचा—सियार आकाश मे नही ठहर सकते । वह स्फटिक गुफा में पडा होगा । वे पर्वत के नीचे उतरे तो देखा कि छओ भाई मरे पडे हैं । वे समझ गए कि अपनी मूर्खता के कारण विचार न कर सकने के कारण स्फटिक-

गुफा न जानने से उसी से हृदय टकराकर मरे होगे। 'बिना विचारे जल्दबाजी करने वालो का काम ऐसा ही होता है' कह पहली गाथा कही—

असमेक्खितकम्मन्तं तुरिताभिनिपातिनं,
सानि कम्मानि तप्पेन्ति उण्हं वज्झोहितं मुखे ॥

[जो आदमी बिना विचारे जल्दबाजी में काम करता है, उसके वह काम ही उसे तपाते हैं; जैसे मुँह में डाला हुआ गर्म भोजन।]

असमेक्खितकम्मन्तं तुरिताभिनिपातिनं, जो आदमी जिस काम को करना चाहता है, यदि वह उसके दोषो का ख्याल न कर, उन पर विचार न कर जल्दबाज होकर जल्दी में ही उस काम को करने को तैयार होता है, कूद पडता है, लग जाता है, उस बिना विचारे जल्दबाजी में काम करने वाले को वे इस प्रकार किए गए **सानि कम्मानि तप्पेन्ति,** सोच में डाल देते हैं कष्ट देते हैं। कैसे? **उण्हं वज्झोहितं मुखे** जिस तरह खाते समय यदि इसका विचार न कर कि यह ठण्डा है, यह गर्म है गर्म भोजन मुख में डाल दिया जाए तो मुँह भी जलता है, गला भी जलता है और पेट भी जलता है; चिन्ता होती है तथा कष्ट होता है। इसी प्रकार उस तरह के आदमी को वह कर्म तपाते हैं।

उस सिंह ने यह गाथा कह सोचा—मेरे भाई उपाय-कुशल नहीं रहे। सियार को मारने जाकर वह बडे जोर से कूद कर स्वय मर गए। मैं ऐसा न कर गुफा में पडे हुए ही सियार के हृदय को फाड डालूँगा।

उसने सियार के चढने-उतरने के रास्ते का ख्याल कर उसके सामने खडे हो तीन बार सिंह नाद किया। पृथ्वी सहित आकाश गूँज उठा। सियार का हृदय स्फटिक गुफा में लेटे ही लेटे डर के मारे फट गया। वह वहीं मर गया। शास्ता ने कहा—इस प्रकार वह सियार सिंहनाद सुनकर मर गया।

शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त किए रहने पर यह गाथा कही—

सीहोच सीहनादेन दद्दरं अभिनादयि
सुत्वा सीहस्स निग्घोसं सिगालो दद्दरे वसं
भीतो सन्तासमापादि हृदयं चस्स अप्फलि ॥

[सिंह ने सिंह नाद से गुफा को गुंजा दिया । गुफा मे रहने वाले सियार जब सिंह की आवाज सुनी तो वह डर कर त्रास को प्राप्त हुआ और उसका हृद फट गया ।]

सीहो, सिंह चार प्रकार के होते है (१) तृण-सिंह (२) पाण्डु-सिं (३) काळ-सिंह (४) लाल हाथ पैर वाला केसरी । उनमें से यहाँ केसरं सिंह से ही मतलब है । ददूरं अभिनादयि सो बिजलियो के शब्द से भी भयानक सिंहनाद से उस रजत पर्वत को निनादित कर दिया, गुंजा दिया । ददूरे वसं स्फटिक मिले रजत पर्वत पर रहते हुए । भीतो सन्तासमापादि मृत्यु-भय से डरकर चित्त-त्रास को प्राप्त हुआ । हृदयं चस्स अप्फलि, उस भय से उसका हृदय फट गया ।

इस प्रकार सिंह उस सियार का प्राणान्त कर, भाइयो को एक जगह छिपाकर बहन को उनके मरने का वृत्तान्त कह, उसे दिलासा दे जन्म भर काञ्चन गुफा में ही रह कर्मानुसार परलोक सिधारा ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो का प्रकाशन हो चुकने पर उपासक श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय सियार नाई का लडका था । सिंह-बच्ची लिच्छवि-कुमारी, छः छोटे भाई कोई स्थविर हुए । ज्येष्ठ-भ्राता सिंह तो मैं ही था ।

१५३. सूकर जातक

"चतुप्पदो अहं सम्म...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढ़े स्थविर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन रात में जब धर्म-देशना हो रही थी, जब शास्ता गन्धकुटी के दरवाजे पर मणिमय सीढी पर खडे होकर भिक्षुसघ को उपदेश दे गन्धकुटी में चले गए थे, धर्मसेनापति (सारिपुत्र) शास्ता को प्रणाम कर अपने परिवेण में गए। महामोग्गल्लान भी अपने परिवेण मे जा, वहाँ थोडी देर विश्राम कर स्थविर के पास चले आए और प्रश्न पूछने लगे। जो जो प्रश्न पूछा जाता धर्म सेनापति आकाश मे चन्द्रमा को उठाते हुए से उसका उत्तर देकर समझा देते। चारो प्रकार की परिषद् बैठी धर्म सुनती रही।

एक बूढे स्थविर को सूझा—यदि मै इस सभा मे सारिपुत्र मे कोई प्रश्न पूछकर उसे चकरा दूँ तो यह सभा समझेगी कि यह भी बहुश्रुत है और मेरा सत्कार सम्मान करेगी। इसलिए उसने सभा में से उठ सारिपुत्र के पास जाकर एक तरफ खडे हो कहा—आयुष्मान्! सारिपुत्र! हम भी एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। हमें भी पूछने की आज्ञा दें। लपेटने के बारे मे, उधेडने के बारे मे, निग्रह के बारे में, प्रग्रह के बारे मे, विशेष के बारे मे, तथा निर्विशेष के बारे मे अपना निश्चय कहे।[1]

स्थविर ने उसकी ओर देख सोचा—यह बूढा इच्छाओ के वशीभूत है, तुच्छ है, कुछ नही जानता। वे उससे बिना कुछ बातचीत किए शरमाए हुए, पखे[2] को रखकर आसन से उतर परिवेण मे चले गए। मोग्गल्लान स्थविर भी अपने परिवेण में चले गए।

मनुष्यो ने उसका पीछा किया—पकडो इस बूढे को, इसने हमें मधुर धर्मोपदेश नही सुनने दिया। वह भागता हुआ विहार के सिरे पर एक दरार फटे पाखाने मे गिर पडा और गन्दगी से पुत गया। आदमियों को उसे देख घृणा हुई। वे शास्ता के पास गए। शास्ता ने उन्हें देख पूछा—"उपासको! क्यो असमय कैसे आए?" मनुष्यो ने वह हाल कहा।

---

[1] यह प्रश्न निरर्थक शब्द-समूह मात्र है।

[2] धर्मोपदेश के समय पंखा हाथ में रहता है।

शास्ता ने कहा—"उपासको ! न केवल अभी यह बूढ़ा उबल कर अपने बल को न जान महा बलवान् के साथ जूझ कर गूँह से लिबड़ गया है, यह पहले भी उबल कर अपने बल को न जान महाबलवान् से जूझ गूँह से लिबड़ चुका है।" उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सिंह होकर पैदा हुए, और हिमालय प्रदेश में पर्वत-गुफा में रहने लगे।

उनके नजदीक ही एक तालाब के आसपास बहुत से सूअर रहते थे। उसी तालाब के आसपास तपस्वी भी पर्णशालाओं में रहते।

एक दिन सिंह भैंसे या हाथी में से किसी एक को मार, पेट भर मांस खा, उस तालाब में उतर पानी पी ऊपर आया।

उसी समय एक मोटा सूअर उस तालाब के आसपास चरता था। सिंह ने उसे देख सोचा कि इसे किसी दूसरे दिन खाऊँगा। यदि यह मुझे देख लेगा तो फिर न आएगा। उसके न आने के डर से वह तालाब से उतर एक तरफ को जाने लगा। सूअर ने उसे देखा तो सोचा—यह मुझे देख मेरे भय से सामने से न जा सकने के कारण भागा जा रहा है। आज मुझे इस सिंह से जूझना चाहिए। उसने सिर उठाकर सिंह को युद्ध के लिए ललकारते हुए यह पहली गाथा कही—

चतुप्पदो अहं सम्म ! त्वम्पि सम्म ! चतुप्पदो,
एहि सीह ! निवत्तस्सु किन्नु भीतो पलायसि ॥

[दोस्त ! मैं चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। सिंह आ, रुक। डरकर किस लिए भागता है।]

सिंह ने उसकी बात सुनी तो कहा—दोस्त ! आज हमारा तेरे साथ युद्ध न होगा। आज से सातवें दिन इसी जगह पर संग्राम होवे। इतना कह वह चला गया।

सूअर प्रसन्न हुआ कि सिंह के साथ युद्ध करूँगा। उसने अपने सब रिश्तेदारों को कह दिया। वह उसकी बात सुनकर डरे। 'अब तू हम सभी को नष्ट करेगा। अपनी ताकत को न पहचानकर सिंह के साथ युद्ध करना चाहता है। सिंह आकर हम सबके प्राण ले लेगा। दुस्साहस न कर।'

उसने भयभीत हो पूछा—"तो अब क्या करूँ ?"

उन्होंने उपाय बताया—दोस्त सुअर ! तू उस जगह जाकर जहाँ यह तपस्वी मल-मूत्र त्यागते हैं सात दिन तक शरीर में गदगी लपेटकर शरीर को सुखा, सातवें दिन शरीर को ओस की बूँदों से गीलाकर सिंह के आने से पहले ही आकर हवा का रुख देख, जिधर से हवा आती हो उधर खड़े हो जाना। सिंह सफाई-पसन्द होता है। वह तेरे शरीर की गन्दगी को सूँघ तुझे विजयी छोड़ चला जाएगा।

उसने वैसे ही किया और सातवें दिन वहाँ जाकर खड़ा हो गया। सिंह उसके शरीर की गन्दगी को सूँघ कर समझ गया कि उसने देह में गूँह पोता है। वह बोला—

"दोस्त सुअर ! तूने अच्छा उपाय सोचा है। यदि तूने गूँह न पोता होता, तो मैं तुझे यहीं मार देता। लेकिन अब तो मैं तेरे शरीर को न मुँह से डस सकता हूँ न पैरों से ही तुझ पर प्रहार कर सकता हूँ। इसलिए मैं तुझे विजयी मानता हूँ।'—इतना कह दूसरी गाथा कही—

> असुचि पूतिलोमोसि दुग्गन्धो वासि सूकर !
> सचे युज्झितुकामोसि जय सम्म ! ददामि ते ॥

[सुअर ! तू अपवित्र गन्दे बालों वाला है। तेरे शरीर से दुर्गन्ध आती है। यदि तुझे युद्ध करने की इच्छा है, तो मैं तुझे विजयी मान लेता हूँ।]

पूतिलोमोसि—गन्दगी लगे दुर्गन्धपूर्ण बालों वाला है। **दुग्गन्धो वासि,** अनिष्टकर, घृणित, प्रतिकूल दुर्गन्ध फैलाता है। **जय सम्म ! ददामि ते !** तुझे विजयी मानता हूँ मैं पराजित हूँ। तू जा। इतना कह सिंह रुक, अपना शिकार कर, तालाब में पानी पी पर्वत गुफा को ही चला गया।

सुअर ने अपने रिश्तेदारों को कहा—सिंह को मैंने जीत लिया। वे डरे कि फिर किसी दिन आकर सिंह हम सबको जान से मार डालेगा। वे भाग कर किसी दूसरी जगह चले गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सुअर यह वृद्ध स्थविर था। सिंह तो मैं ही था।

१५४. उरग जातक

"उयूरगाल पवरो पविट्ठो . " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रेणियो[1] के सघ कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के दो सेवक श्रेणियों के प्रधान थे। वे दोनो महामात्य एक दूसरे को जहाँ कहीं देखते झगडा करते। उनके वैर की बात सारे नगर में फैल गई। न राजा और न उनके रिश्तेदार तथा मित्र उनका झगडा मिटा सके।

एक दिन प्रात काल शास्ता ने उन आदमियो का विचार करते हुए जिनके ज्ञानी होने की सभावना थी इन दोनो के श्रोतापन्न होने की सभावना को देखा। किसी एक दिन वे श्रावस्ती मे भिक्षाचार करते हुए उनमें से एक के घर के दरवाजे पर खडे हुए।

उसने बाहर निकल पात्र ले शास्ता को घर के अन्दर ले जा आसन बिछा कर बिठाया। शास्ता ने बैठते ही उसे मैत्री भावना की महिमा समझाई जब उसका चित्त कुछ कोमल हुआ देखा तो आर्य्य-सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर वह श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने जब देखा कि वह श्रोतापन्न हो गया तो उसी के हाथ में पात्र रहने देकर उसे साथ ले दूसरे के घर पर पहुँचे। उसने भी बाहर निकल शास्ता को प्रणाम कर 'भन्ते ! घर में प्रवेश करें' कह घर में ल जाकर बिठाया।

---

[1] शिल्पियो के सघ।

दूसरा भी पात्र लिए हुए शास्ता के साथ ही अन्दर गया। शास्ता ने उसे मैत्री-भावना के ग्यारह लाभ[1] बतलाए। जब जाना कि उसका चित्त कोमल पड गया तो आर्य-सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर वह भी श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

वे दोनो श्रोतापन्न हो परस्पर अपने अपने दोषो को स्वीकार कर, उनके लिए क्षमा माँग एक दूसरे के साथ मिलकर आनन्दपूर्वक रहनेवाले, एक ही विचार के हो गए। उसी दिन भगवान् के सामने बैठकर उन्होने इकट्ठे खाया।

शास्ता भोजन-कृत्य समाप्त करके विहार गए। वे भी बहुत सा माला-गन्ध-लेप आदि सुगन्धित वस्तुएँ तथा घी, शहद और शक्कर आदि लेकर शास्ता के साथ ही घर से निकले। भिक्षु-सघ ने शास्ता को आदर प्रदर्शित किया। बुद्ध उपदेश देकर गन्ध-कुटी मे प्रविष्ट हुए।

भिक्षुओ ने सायकाल धर्म-सभा मे बातचीत चलाई। 'आयुष्मानो! शास्ता अविनयी को विनयी बनानेवाले हैं। जिन दो अमात्यो का चिर काल तक प्रयत्न करके भी न राजा और न उनके रिश्तेदार वा सम्बन्धी मेल करा सके तथागत ने उनको एक ही दिन मे विनीत कर दिया।' शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?' 'अमुक बात चीत' कहने पर तथागत ने कहा—'भिक्षुओ मैने केवल अभी इन दो जनो का मेल नही कराया, पहले भी कराया है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बाराणसी के उत्सव की घोषणा होने पर बडा मेला हुआ। बहुत से मनुष्य, देव, नाग तथा गरुड आदि समज्ज[2] देखने के लिए इकट्ठे हुए।

वहाँ एक जगह एक नाग और गरुड मेला देखते हुए इकट्ठे खडे थे।

---

[1] अङ्गुत्तर निकाय एकादशक निपात।

[2] समज्ज=मेला।

नाग ने गरुड़ को गरुड़ न समझ उसके कंधे पर हाथ रख दिया। गरुड़ ने मुड़कर देखा कि मेरे कंधे पर हाथ किसने रखा? उसने देखा कि नाग है। नाग ने भी जब गरुड़ को देखा तो उसे जान का डर हुआ। वह नगर से निकल नदी के रास्ते भाग गया। गरुड़ ने भी उसे पकड़ने के लिए पीछा किया।

उस समय बोधिसत्व तपस्वी थे। वे उसी नदी के किनारे पर्णशाला में रहते हुए दिन की थकावट मिटाने के लिए नहाने का वस्त्र पहन वल्कल-छाल को बाहर छोड़ नदी में उतर स्नान कर रहे थे।

नाग ने सोचा इस प्रव्रजित की सहायता से जान बचा सकूँगा। उसने अपना असली रूप छोड़ मणि की शकल बना वल्कल के अन्दर प्रवेश किया। गरुड़ ने पीछा करते हुए उसे वहाँ घुसा देख वल्कल के प्रति गौरव होने से उसे न पकड़ बोधिसत्व को 'भन्ते! मैं भूखा हूँ। आप अपने वल्कल को लें। मैं नाग को खाऊँगा' कहने के लिए यह गाथा कही—

> इधूरगान पवरो पविट्ठो
> सेलस्स वण्णेन पमोक्खमिच्छं
> ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो
> बुभुक्खितो नो विसहामि भोत्तुं ॥

[यहाँ मणिवर्ण से नागराजा जान बचाने के लिए घुसा है। मैं ब्राह्मण वर्ण का आदर करने के कारण भूखा होता हुआ भी उसे खाने की हिम्मत नहीं करता।]

इधूरगान पवरो पविट्ठो, उस वल्कल में नागों में श्रेष्ठ नागराज प्रविष्ट हुआ है। **सेलस्स वण्णेन**, मणि के वर्ण से, अर्थात मणि की शकल बना प्रविष्ट हुआ। **पमोक्खमिच्छं**, मुझसे बचने की इच्छा से। **ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो**, मैं तुम्हारे ब्रह्म वर्ण श्रेष्ठ वर्ण की पूजा करने के कारण, गौरव करने के कारण **बुभुक्खितो नो विसहामि भोत्तुं** वल्कल में घुसे हुए इस नाग को भूख होते भी नहीं खा सकता हूँ।

पानी में खड़े ही खड़े बोधिसत्व ने गरुड राज की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

> सो ब्रह्मगुत्तो चिरमेव जीव
> दिब्या च ते पातुभवन्तु भक्खा
> सो ब्रह्मवण्ण अपचायमानो
> बुभुक्खितो नो वितरासि भोत्तु ॥

[तू ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर चिर काल तक जीवित रह । तुझे दिव्य भोजन प्राप्त हो । तू ब्राह्मण वर्ण के गौरव के कारण भूखा होता हुआ भी नहीं खा रहा है ।]

सो ब्रह्मगुत्तो, वह तू ब्रह्म द्वारा गोपित, ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर **दिब्बा च ते पातुभवन्तु भक्खा**, देवताओं के भोजन करने योग्य भोजन तुझे मिलें। प्राण हिंसा करके नाग-मास खानेवाला न बन ।

इस प्रकार बोधिसत्व ने पानी में खड़े ही खड़े अनुमोदन कर, पानी से निकल वल्कल पहन उन दोनों को अपने आश्रम पर ले जा मैत्री-भावना की प्रशंसा कर दोनों का मेल करा दिया । उसके बाद से वह प्रसन्नता पूर्वक सुख से रहने लगे ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय नाग और गरुड यह दो महामात्य थे । तपस्वी तो मैं ही था ।

१५५. गग्ग जातक

"जीव वस्स सत गग्ग ..." यह शास्ता ने जेतवन के समीप राजा प्रसेनजित के बनवाए राजकाराम में रहते हुए अपनी छींक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता को राजकाराम में चारों प्रकार की परिषद् में बैठे धर्मोपदेश करते समय छींक आई। भिक्षुओं ने ज़ोर से, ऊँचे स्वर से कहा— "भन्ते! भगवान्! जीएँ। सुगत! जीएँ।" उनके चिल्लाने से धर्मोपदेश में विघ्न पड़ा। भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—

"भिक्षुओ, यदि किसी के छींकने पर 'जीएँ' कहा जायगा, तो क्या उस कहने से उसके जीने मरने पर कुछ प्रभाव पड़ेगा?"

"भन्ते! नहीं।"

"भिक्षुओ! छींकने पर "जीएँ" नहीं कहना चाहिए। जो कहे उसे दुष्कृत का दोष लगेगा।"[1]

उन दिनों भिक्षुओं को छींक आने पर लोग कहा करते—"भन्ते! जीएँ।" भिक्षु बुरा मानते और कुछ न बोलते। लोग खीझ उठते—कैसे हैं यह श्रमण शाक्य-पुत्रीय जो "भन्ते! जीएँ" कहने पर कुछ नहीं बोलते। भगवान् से यह बात कही गई। भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! गृहस्थ लोग मंगल-अमंगल को मानने वाले हैं। भिक्षुओ! गृहस्थ लोगों के 'भन्ते जीएँ' कहने पर 'चिरकाल तक जीते रहो' कहने की अनुज्ञा देता हूँ।"

भिक्षुओं ने भगवान से पूछा—भन्ते! 'जीओ', तथा 'जीते रहो' यह कहने की प्रथा कब से आरम्भ हुई? शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह 'जीओ' तथा 'जीते रहो' कहने की प्रथा पुराने समय में आरम्भ हुई। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी देश में एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनका पिता व्यापार करके गुजारा करता था। उसने सोलह वर्ष के बोधिसत्व से मोती आदि की चीज़ें उठवा ग्राम निगम आदि में घूमते हुए वाराणसी पहुँचकर द्वारपाल के घर पर भोजन

[1] विनय पिटक में यह शिक्षापद नहीं मिला।

बनवाकर खाया। निवासस्थान नही था। उसने पूछा—"असमय पर आए हुए अतिथि कहाँ रहते है ?"

मनुष्यो ने उत्तर दिया—"नगर के बाहर एक शाला है। लेकिन उसमें भूत-प्रेत आदि रहते है। यदि चाहे तो वहाँ रहें।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"तात ! चले ! डरने की जरूरत नही। मैं उस *यक्ष का दमन कर उसे आपके चरणो पर गिराऊँगा।" वह पिता को* लकर वहाँ गए।

पिता तख्ते पर लेटा। वे स्वय पिता के पैरो को दबाते हुए बैठे।

वहाँ रहनेवाल यक्ष ने बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके उससे यह अधिकार प्राप्त किया था कि उस शाला मे जो आदमी आएँ उनमें से किसी को छींक आने पर यदि कोई 'जीवें' कहे और जिसको छीक आई हो वह भी 'जीओ' कहे तो उनको छोडकर वह शेष सभी को खा सकता है। वह चौखट पर रहता था। उसने बोधिसत्त्व के पिता को छीक दिलाने के लिए अपने प्रताप से सूक्ष्म चूर्ण बखेरा। चूर्ण आकर उसके नथनो में पडा। उसे तख्ते पर पडे ही पडे छीक आई। बोधिसत्त्व ने उसे 'जीवें' नही कहा। यक्ष उसे खाने के लिए चौखट से उतरने लगा। बोधिसत्त्व ने उसे उतरते देख, सोचा इसी ने मेरे पिता को छिंकाया होगा। छींकने पर 'जो जीवें' न कहे उन्हें यह यक्ष खा लेता होगा। उन्होंने पिता को सम्बोधन करके यह पहली गाथा कही—

जीव वस्स सत गग्ग ! अपरानि च वीसति,
मा मं पिसाचा खादन्तु जीव त्व सरदोसत ॥

[गग्ग ! तू सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। मुझे पिशाच न खाएँ। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

गग्ग, यह पिता को उसके नाम से सम्बोधन किया है। **अपरानि च वीसति,** और भी बीस वर्ष जीवित रह। **मा मं पिसाचा खादन्तु,** मुझे पिशाच न खाए। **जीव त्व सरदो सत,** तू एक सौ बीस वर्ष जी।

सरदसत का अर्थ तो सौ वर्ष ही होना है। लेकिन पहले के बीस जोड देने म यहाँ एक सौ बीस से मतलब है।

यक्ष ने बोधिसत्व का वचन सुन सोचा कि इस माणवक ने 'जीवें' कहा है, इसलिए इसे नहीं खा सकता। इसके पिता को खाऊँगा। इसलिए पिता के पास गया। उसने उसे आते देख सोचा, यह यक्ष उन लोगो को खा लेता होगा, जो 'जीवें' के उत्तर में 'जीओ' न कहते होंगे। इसलिए मैं प्रतिवचन करूँगा। उसने पुत्र के बारे में दूसरी गाथा कही—

त्वम्पि वस्स सत जीव अपरानि च वीसतिं,
विस पिसाचा खादन्तु जीव त्वं सरदोसत ॥

[तू भी सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। पिशाच विष खाएँ। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

विस पिसाचा, पिशाच हलाहल विष खाएँ।

यक्ष ने उसकी बात सुन सोचा, मैं दोनो में से किसी को नहीं खा सकता। वह रुक गया।

बोधिसत्व ने पूछा—'भो यक्ष! इस शाला में प्रवेश करनेवाले आदमियों को तू क्यों खाता है?'

"बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके अधिकार प्राप्त किया है।"

"क्या सभी को खाने का अधिकार है?"

"'जीवें' और 'जीओ' कहने वाला को छोड़ शप सभी को खाना हूँ।"

"यक्ष! तूने पहले बुरे कर्म किए। इसलिए तू निर्दयी, कठोर तथा दूसरा की हिंसा करनेवाला पैदा हुआ। अब फिर उसी तरह के काम करके तू तमोतम-परायण[1] हो रहा है। इसलिए अब से तू प्राणि हिंसा आदि से विरत हो।"

इस प्रकार उस यक्ष का दमन कर, नरक के भय से उसे डरा, पञ्चशीलो में प्रतिष्ठित कर यक्ष को दूत की तरह विनीत कर दिया।

आगे चलकर थाने जाने वाले मनुष्या ने यक्ष को देखा और जब उन्हें मालूम हुआ कि बोधिसत्व ने उसका दमन किया, तो उन्होंने राजा से कहा—"देव!

---

[1] अन्धकार से अन्धकार में जाने वाला=हीनकुल में पैदा होकर नीच कर्म करने वाला।

एक तरुण ने उस यक्ष का दमन कर उसे दूत की तरह विनीत कर रखा है।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर सेनापति के स्थान पर नियुक्त किया। और पिता का बहुत सत्कार किया।

राजा यक्ष को बलि-ग्रहण का अधिकारी बना, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'जीवें' और 'जीओ' कहने की प्रथा उस समय चली, कहा और जातक का मेल बैठाया।

उस समय का राजा आनन्द था। पिता काश्यप था। और पुन तों मैं ही था।

१५६. अलीनचित्त जातक

"अलीनचित्त निस्साय ", यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक हिम्मत-हारे भिक्षु के बारे म कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा ग्यारहवें परिच्छेद (निपात) की सवर जातक[1] म आएगी।

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—'भिक्षु, क्या तूने सचमुच हिम्मत छोड दी ?"

"भगवान्! सचमुच।'

शास्ता ने कहा—'भिक्षु, क्या तूने पूर्व समय में हिम्मत करके मास के टुकडे सदृश छोटे से कुमार को बारह योजन के वाराणसी के नगर का राज्य

---

[1] सवर जातक (४६२)

नही लेकर दिया था ? अब इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित होकर क्यो हिम्मत हारता है ?" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के समीप ही बढ़ई-ग्राम था। वहाँ पाँच सौ बढ़ई रहते थे।

वह नौका से नदी के स्रोत के ऊपर की तरफ जाते। वहाँ जंगल में घर बनाने की लकडी काटकर वहीं एक तल्ले तथा दो तल्ले के मकान बना, खम्भे से प्रारम्भ करके सभी लकडियो पर चिह्न लगाते। फिर उन्हें नदी के किनारे ले जा, नौका पर चढा, स्रोत के अनुसार चल नगर में आते। वहाँ जो जैसे घर चाहता, उसे वैसे बना देकर कार्षापण ले फिर वैसे ही जा घर के सामान लाते।

उनके इस प्रकार जीविका चलाते हुए एक बार पडाव डालकर लकडी काटते समय, उनके पास ही एक हाथी का पाँव खैर की लकडी के खूँटे पर पडा। उस खूँटे से उसका पाँव बिंध कर उसमें बडी पीडा होने लगी। पैर सूज गया। उसमें से पीप बहने लगा।

पीडा से पीडित हो उसने लकडी काटने का शब्द सुनकर सोचा कि इन बढ़इयो से मेरा कल्याण होगा। ऐसा समझ कर वह तीन पैरो से चलकर उनके पास पहुँचा और वहीं नजदीक ही पड रहा।

बढइयो ने उसका सूजा हुआ पैर देखा तो पास गए। उन्हें उसमें खूँटा दिखाई दिया। उन्होने तेज कुल्हाडी से खूँटे के चारो ओर गहरा निशान कर, उसमें रस्सी बाँधकर उसे खेंचकर निकाला। फिर पीप निचोडकर, निकालकर गर्म पानी से धोया। उसके अनुकूल दवाई करने से थोडे ही समय में घाव ठीक हो गया।

हाथी ने निरोग होकर सोचा—इन बढइयो ने मेरी जान बचाई। मुझे इनकी कुछ सेवा करनी चाहिए। उस दिन से वह बढइयो के साथ वृक्ष लाने लगा। छीलने के समय वह उन्हे उलट उलट कर सामने करता। कुल्हाडी आदि औजार ले आता। सूण्ड से लपेटकर काले धागे के सिरे को पकड लेता। बढई भी भोजन के समय इसे एक एक पिण्ड देते तो पाँच सौ पिण्ड हो जाते।

उस हाथी का एक बच्चा था, जो एक दम श्वेत वर्ण का था और था मंगल हाथी। हाथी ने सोचा कि मै बूढा हो गया। अब मुझे अपने लडके को इन बढइयो

को काम करने के लिए देकर स्वयं जाना चाहिए। वह बिना बढ़इयों को सूचित किए ही जंगल में गया। वहाँ से लड़के को ले आकर बढ़इयों से बोला—"यह मेरा लड़का है। तुमने मुझे जीवन दान दिया है। मैं डाक्टर की फीस के बदले में इसे देता हूँ। अब से यह तुम्हारी सेवा किया करेगा।" इतना कह, पुत्र को आदेश दे कि पुत्र ! जो कुछ मेरा काम है, वह सब अब से तू करना, उसे बढ़इयों को सौंप स्वयं जंगल में प्रवेश किया।

उस समय से वह हाथी बच्चा बढ़इयों के कहने के अनुसार सब काम करने लगा। वे भी उसे पाँच गो पिण्ड देकर पोसते। वह काम समाप्त कर नदी में उतर खेलकर आया करता। बढ़इयों के बच्चे भी उसे सूण्ड आदि से पकड़ जल और स्थल में सभी जगह उससे खेलते। श्रेष्ठ हाथी हों, घोड़े हों, अथवा मनुष्य हों, कोई भी पानी में मल-मूत्र नहीं त्यागते। वह भी पानी में मल-मूत्र न कर बाहर नदी के किनारे पर ही करता था।

एक दिन नदी के ऊपर के हिस्से में वर्षा हुई। हाथी की आधी सूखी लेण्डी पानी से बहकर नदी के रास्ते जा वाराणसी नगर के पत्तन पर एक झाड़ी में जा अटकी।

राजा के हाथी-सेवक पाँच सौ हाथियों को नहलाने के लिए ले गए। श्रेष्ठ हाथी की लेण्डी की गन्ध सूँघकर एक भी हाथी ने पानी में उतरने की हिम्मत न की। सभी पूँछ उठाकर भागने लगे। हाथी-सेवकों ने हथवानों को खबर की। उन्होंने सोचा पानी में कुछ खतरा होगा। पानी खोज करने पर जब उन्होंने झाड़ी में श्रेष्ठ हाथी की लेण्डी देखी तो समझ गए कि यही कारण रहा है। उन्होंने चाटी मँगवाई और उसे पानी से भर, उसमें उसे घोल हाथियों के शरीर पर छिड़कवा दिया। शरीर सुगन्धित हो गए तब वह हाथी नदी में उतरकर नहाए।

हथवानों ने राजा को वह समाचार सुना सलाह दी कि देव ! वह हाथी खोजवाकर मँगवाया जाना चाहिए। राजा नौकाओं के बेड़े से नदी में उतर ऊपर जानेवाले बेड़े से बढ़इयों के निवासस्थान पर पहुँचा। वह हाथी-बच्चा नदी में खेल रहा था। जब उसने भेरी शब्द सुना तो जाकर बढ़इयों के पास खड़ा हो गया। बढ़इयों ने राजा की अगवानी करते हुए कहा—देव ! यदि लकड़ी की आवश्यकता थी, तो कष्ट क्यों किया ? क्या भेजकर मँगाना उचित न होता ?

आज से सातवें दिन राज्य न देकर युद्ध करेगा। इसकी प्रतीक्षा करें।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

देवी ने सातवें दिन पुत्र को जन्म दिया। लोगों ने कहा यह हमारे उदास-चित्त की उदासी को दूर करता हुआ पैदा हुआ है, और उसका नाम अलीनचित्त कुमार रक्खा।

उसके पैदा होने के ही दिन से नगर-निवासी कोसल-नरेश के साथ युद्ध करने लगे। युद्ध का नेता न होने से बड़ी सेना भी युद्ध करती हुई थोड़ी थोड़ी पीछे हटने लगी।

अमात्यों ने रानी से यह समाचार कह पूछा—

"आर्ये! इस प्रकार सेना के पीछे हटने से हमें डर लगता है कि हम हार न जाएँ। राजा का मित्र मंगल हाथी न राजा के मरने की बात को जानता है, न पुत्र उत्पन्न होने की बात जानता है और न कोसल-नरेश के आकर युद्ध करने की बात जानता है। हम इसे यह सब कह दें?"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर पुत्र को अलंकृत कर कोमल वस्त्र की गद्दी पर लिटा महल से उतर अमात्यों को साथ ले हस्ति शाला में गई। वहाँ बोधिसत्त्व को हाथी के पैरों पर रख कर बोली—

'स्वामी! तुम्हारा मित्र तो मर गया। हमने तुम्हारे हृदय के फट जाने के डर से तुमसे नहीं कहा। यह तुम्हारे मित्र का पुत्र है। कोसल-राजा आकर नगर को घेरे हुए तेरे पुत्र से युद्ध कर रहा है। सेना पीछे हट रही है। या तो तू अपने पुत्र को स्वयं ही मार डाल अथवा राज्य जीतकर इसे दे।"

उसी समय हाथी ने बोधिसत्त्व को सूण्ड में ले उठा कर सिर पर रक्खा। रोया पीटा। फिर बोधिसत्त्व को उतार कर देवी के हाथ में लिटाया और कोसल-नरेश को पकड़ने के लिए हस्ति-शाला से निकल पड़ा।

मन्त्री-गण कवच उतार, सज सजाकर दरवाजे खोल उसके पीछे पीछे हो लिए। हाथी ने नगर से निकल क्रौंच-नाद किया। लोगों को डरा कर भगा दिया। सेना की पाँत को तोड़ कोसल-राजा को बालों से पकड़ लाकर बोधिसत्त्व के पैरों में डाल दिया। वह मारने के लिए उठा, तो उसे रोका। अब से सावधान रह। यह मत समझ कि कुमार बालक है। इस प्रकार उपदेश दे उसे उत्साहित किया।

उस समय से सारे जम्बू द्वीप का राज्य एक प्रकार से बोधिसत्त्व के ही हाथ में आगया। कोई भी शत्रु विरोध न कर सका।

सात वर्ष की अवस्था होने पर बोधिसत्त्व का अभिषेक हुआ। वह अलीन चित राजा के नाम से धर्मानुकूल राज्य करते रह कर मरने पर स्वर्ग सिधारा। शास्ता ने यह पूर्व जन्म की कथा ला सम्यक् सम्बुद्ध होने की अवस्था में यह दो गाथाएँ कहीं—

अलीनचित्तं निस्साय पहट्ठा महती चमू
कोसलं सेना-सन्तुट्ठं जीवगाहं अगाहयी
एवं निस्सयसम्पन्नो भिक्खु आरद्धवीरियो
भावयं कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया
पापुणे अनुपुब्बेन सब्ब सञ्ञोजनक्खयं ॥

[अलीन चित्त के कारण बड़ी सेना प्रसन्न हुई। अपने राज्य से असन्तुष्ट कोशल नरेश को जिन्दा पकड़वा लिया। इसी प्रकार यदि भिक्षु प्रयत्न-शील हो और उसका सहायक हो तो वह निर्वाण-प्राप्ति के लिए कुशल-धर्मों का अभ्यास कर क्रम से सञ्ञोजनों का क्षय कर सकता है।]

अलीनचित्तं निस्साय, अलीनचित्त राजकुमार के कारण पहट्ठा महती चमू, हम लोगों को राज्य-परम्परा देखनी मिली, इसलिए बड़ी सेना प्रसन्न हुई। कोसलं सेनासन्तुट्ठं, कोशल नरेश को, जो अपने राज्य से असन्तुष्ट हो पराया राज्य लेने को आया। जीवगाहं अगाहयी बिना मारे ही उस सेना ने उस हाथी से राजा को जीवित पकड़वाया। एवं निस्सय सम्पन्नो जैसे यह सेना उसी प्रकार कोई कुल-पुत्र बुद्ध अथवा बुद्ध-श्रावक सदृश किसी हितैषी को पा उसके आश्रय से युक्त। भिक्खु, जो शुद्ध है, उसी का यह नाम है। आरद्धविरियो, प्रयत्न-शील; चार प्रकार के दोषों से रहित प्रयत्न से युक्त। भावयं कुसलं धम्मं, कुशल, निर्दोष सैंतीस बोधि-पाक्षिक धर्मों की भावना करता हुआ। योगक्खेमस्स पत्तिया चारों प्रकार के योग से क्षेम अथवा निर्वाण की प्राप्ति के लिए उन धर्मों का अभ्यास करते हुए। पापुणे अनुपुब्बेन सब्ब सञ्ञोजनक्खयं इस प्रकार विपश्यना से इस कुशल-धर्म का अभ्यास करते हुए वह किसी हितैषी का आश्रय-प्राप्त भिक्षु क्रम से विपश्यना ज्ञान और पहले मार्ग-ज्ञान

प्राप्त करते हुए अन्त में दसों सञ्ञोजना का नाश होने पर पैदा होने के कारण सञ्ञसञ्ञोजनक्षय कहे जाने वाले अर्हत्व को प्राप्त करता है। क्योंकि निर्वाण प्राप्त होने पर सभी सञ्ञोजनों का क्षय हो जाता है, इस लिए उसे भी सञ्ञोजनक्षय ही कहा जा सकता है। इस लिए यह अर्थ हुआ कि निर्वाण कहे जाने वाले सभी सञ्ञोजना के क्षय को प्राप्त करता है।

इस प्रकार भगवान् ने अमृतमहानिर्वाण को धर्मोपदेश में मुख्य स्थान दे आगे चार आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर हिम्मत-हारा भिक्षु अर्हत्व पद लाभी हुआ।

उस समय माता महामाया, पिता शुद्धोदन महाराजा था। राज्य लेकर देने वाला यह हिम्मतहारा भिक्षु था। हाथी का पिता सारिपुत्र। अलीनचित्त कुमार तो मैं ही था।

१५७. गुण जातक

"येन काम पणामेति ..." यह (उपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर को एक हज़ार वस्त्र मिलने के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

आनन्द स्थविर की कोशल-नरेश के महल में धर्मोपदेश करने की कथा पहले महासार जातक[1] में आ ही गई है।

जिस समय स्थविर राजा के महल में धर्मोपदेश दे रहे थे राजा के लिए

---

[1] महासार जातक (९२)

"पुराने उत्तरासग का क्या करेंगे ?"

"अन्तरवासक[1] बना लेंगे।"

"पुराने अन्तरवासक का क्या करेंगे ?"

"बिछावन बना लेंगे।"

"पुराने बिछौने का क्या करेंगे ?"

"जमीन पर बिछा लेंगे।"

"जमीन पर जो पहले बिछाते थे, उसका क्या करेंगे ?"

"पाँव-भाड़ने का काम लेंगे।"

"पाँव भाड़ने के पुराने कपड़े का क्या करेंगे ?"

"महाराज! जो श्रद्धापूर्वक दिया गया है, वह फेंका नही जा सकता। इस लिए पाँव भाड़ने के पुराने कपड़े को कुल्हाड़ी से कूटकर मिट्टी में मिलाकर शयनासन की जगहों पर मिट्टी का लेप करेंगे।"

"भन्ते! आपको दिया हुआ वस्त्र पाँव भाड़ने का कपड़ा बनने पर भी फेंका नही जा सकता ?"

"महाराज! हाँ, हमें दिया फेंका नही जा सकता। उपयोग में ही लाया जाता है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो प्रसन्नता के मारे घर पर रक्खे दूसरे पाँच सौ वस्त्र भी मँगवा कर स्थविर को दिए। स्थविर ने दान का अनुमोदन किया। उसे सुन स्थविर को प्रणाम कर राजा स्थविर की प्रदक्षिणा कर चला गया।

स्थविर ने जो पाँच सौ चीवर पहले मिले थे वह उन भिक्षुओं को बाँट दिए जिनके चीवर पुराने हो गए थे।

स्थविर के पाँच सौ शिष्य थे। उनमें एक छोटी आयु का भिक्षु स्थविर की बहुत सेवा करता था। परिवेण में झाड़ू लगाता। पीने और काम में लाने का पानी लाकर उपस्थित करता। दातुन लाकर देता। मुख धोने तथा स्नान करने के लिए जल देता। पाखाने अग्नि-शाला तथा सोने-बैठने के स्थान को ठीक-ठाक करके रखता। हाथ-पैर दबाना तथा पीठ मलना आदि

[1] नीचे पहनने का चीवर, जैसे धोती।

करता। स्थविर ने यह सोच कि इसने मेरा बड़ा उपकार किया है पीछे मिले सब वस्त्र उसी को देना उचित समझ दे डाले। उसने भी वह सब वस्त्र बाँट कर अपने गुरु-भाइयों को दिए।

वे सभी भिक्षु जिन्हें वस्त्र मिला वस्त्र के टुकडे टुकडे कर उन्हें रग कर्णिकार पुष्प के सदृश कापाय वस्त्र पहन शास्ता के पास गए। वहाँ प्रणाम कर एक ओर बैठे भिक्षु कहने लगे—

"भन्ते! क्या श्रोतापन्न आर्य-श्रावक भी मुँह देखकर दान देते है?"

"भिक्षुओ, आर्य-श्रावक मुँह देखकर दान नही देते।"

"भन्ते! हमारे उपाध्याय धर्म-भण्डागारिक स्थविर ने हजार हजार की कीमत के पाँच सौ वस्त्र एक ही छोटी आयु के भिक्षु को दे दिए। उसने जो उसे मिले बाँट कर हमे दिए।"

"भिक्षुओ, आनन्द मुख देखकर दान नही देता। उस भिक्षु ने इसकी बहुत सेवा की। उसने अपने उपकार का प्रत्युपकार करने के विचार से गुणवान होने के ख्याल से, उचित होने से सोचा कि उपकारी का प्रत्युपकार करना चाहिए, और इसी लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए दिए। पुराने पण्डितों ने भी अपना उपकार करने वाले का बदले मे उपकार किया है।" उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सिंह की योनि मे पैदा हो पर्वत-गुफा मे रहते थे।

उन्होने एक दिन गुफा से निकल पर्वत के नीचे की ओर देखा। उस पर्वत के चारो ओर बड़ा भारी तालाब था। उस के एक (तरफ) ऊँची जगह पर कडे दलदल के ऊपर कोमल हरी घास उगी थी। खरगोश, हरिण, और हलके मृग उसके ऊपर बिचर कर उसे खाते। उस दिन भी एक मृग उन तिनकों को खाता हुआ घूम रहा था। सिंह उस मृग को पकडने के लिए पर्वत पर से उछल कर मृग की तरफ कूदा। मृग मरने के भय से डरकर चिल्लाता हुआ भाग गया। सिंह वेग को न रोक सकने के कारण दलदल पर गिरकर नीचे चला गया। ऊपर न आ सकने के कारण चारो पैर खभे की तरह हो गए। उसे एक

सप्ताह तक वही निराहार खडा रहना पडा।

एक सियार शिकार खोज रहा था। उसे देख भय से भागा। सिंह ने उसे बुलाकर कहा—"भो! सियार! भाग मत। मै दलदल में फँसा हूँ। मेरे जीवन की रक्षा कर।" सियार उस के पास जाकर बोला—"मैं तो तुझे निकालूँ, लेकिन डर लगता है कि तू निकलकर मुझे खा न जाए।

"डर मत। मैं तुझे नही खाऊँगा। तेरा बडा उपकार करूँगा। मुझे किसी उपाय से निकाल।"

सियार ने उससे प्रतिज्ञा करवा चारो पैरो के इर्द-गिर्द से दलदल हटा चारो पैरो से चार नालियाँ पानी की ओर बना दी। पानी ने घुस कर गारे को नरम कर दिया।

उसी समय सियार ने सिंह के पेट के नीचे घुस कर चिल्लाया—स्वामी! जोर लगाएँ। स्वय सिंह के पेट में सिर से टक्कर लगाई। सिंह जोर लगाने से गारे के ऊपर आया और कूद कर स्थल पर जा खडा हुआ।

थोडी देर विश्राम कर, तालाब में उतर गारे को धो, स्नान कर सिंह ने एक भैंसे का बध किया। उसे दाढो से चीर उसका मास उधेड सियार के आगे रख कहा—सौम्य! ले खा। सियार के खा चुकने पर अपने खाया। सियार ने एक मास-पेशी मुँह में ली।

शेर ने पूछा—"सौम्य! यह किसके लिए?"

सियार बोला—"तुम्हारी दासी है। यह उसके लिए।"

सिंह बोला—'ले ले।' स्वय भी सिंहनी के लिए मास लेकर उसने सियार से कहा—"सौम्य! आ अपने पर्वत के शिखर पर जाकर वहाँ से सखि के निवास स्थान पर जाएँगे।" वहाँ पहुँच, मास खिला चुकने पर उसने सियार और सियारनी को आश्वासन दिया—अब से मैं तुम्हारी देख-भाल करूँगा। वह उन्हें अपने निवास स्थान पर ले गया। वहाँ गुफा के द्वार पर ही दूसरी गुफा में बसाया।

उसके बाद से सिंह सिंहनी और सियारनी को छोड सियार के साथ शिकार के लिए जाता। वहाँ नाना पशुओ को मार कर दोनो वही खाते। सिंहनी और सियारनी को भी ला कर देते। इस प्रकार समय व्यतीत होता रहा।

सिंहनी ने तथा सियारनी ने भी दो दो पुत्रों को जन्म दिया। वे सब इकट्ठे रहने लगे।

एक दिन सिंहनी के मन में आया—यह सिंह सियार को, सियारनी को, तथा उसके बच्चों को बहुत प्यार करता है। इसका सियारनी से सम्बन्ध अवश्य होगा। इसी लिए उससे स्नेह करता है। मैं इसे कष्ट देकर, डराकर भगाऊँ।

जिस समय सिंह सियार को साथ ले शिकार के लिए जाता सिंहनी सियारनी को डराती, धमकाती—तू यहाँ क्यों रहती है? यहाँ से भागती क्यों नहीं? उसके बच्चे भी सियारनी के बच्चों को वैसे ही तंग करते, धमकाते।

सियारनी ने सियार से सब हाल कहा और बोली—"पता नहीं, सिंहनी सिंह के ही कहने से ऐसा व्यवहार करती है। हम यहाँ बहुत दिन रह चुके। वह हमारी जान भी ले सकता है। अपने निवास स्थान पर ही चलें।"

सियार ने उसकी बात सुन सिंह के पास आकर कहा—

"स्वामी! हम तुम्हारे पास बहुत समय रहे। अधिक देर तक समीप रहने वाले अप्रिय हो जाते हैं। हमारे शिकार के लिए चले जाने पर सिंहनी सियारनी को तंग करती है। उसे डराती है कि यहाँ क्यों रहती है? यहाँ से भाग। सिंह-बच्चे भी सियार-बच्चों को डराते धमकाते हैं। यदि किसी को किसी का अपने पास रहना अच्छा न लगे तो 'जाओ' कह कर उसे निकाल देना चाहिए, तंग करने की क्या जरूरत है।"

इतना कह यह पहली गाथा कही—

> येन कामं पणामेति धम्मो बलवतं मिगी।
> उन्नदन्ति विजानाहि जातं सरणतो भयं॥

[हे सिंह! बलवान् का यही स्वभाव है कि जहाँ चाहता है भगा देता है। हे उन्नत दाँत वाले (सिंह)! यह जान ले कि शरण-स्थल से ही भय पैदा हो गया।]

येन कामं पणामेति धम्मो बलवतं बलवान अथवा ऐश्वर्यशाली अपने सेवक को जिस दिशा में चाहता है उस दिशा में भगा देता है, निकाल देता है, यह बलवानों का धर्म है। यह ऐश्वर्य-शालियों का स्वभाव है। यही परम्परा है।

इस लिए यदि हमारा रहना अच्छा न लगता हो, तो हमें सीधा निकाल दे। कष्ट देने से क्या लाभ?—यही अर्थ प्रकट करने के लिए यह कहा। **मिगी,** सिंह को सम्बोधन करता है। वह मृगराज होने से मृगो का मालिक है, इसी लिए मिगी। **उन्नदन्ति**—यह भी उसी का सम्बोधन है। ऊँचे दांतो वाला होने से उन्नदन्ति। **उन्नतदन्ति,** यह भी पाठ है। **विजानाहि,** यही ऐश्वर्य-शालियो का स्वभाव है, यह जान लें। **जात सरणतो भय,** हमें तुमसे प्रतिष्ठा मिली, इससे तुम्ही हमारे शरण। अब तुम्हारे ही पास से भय पैदा हो गया। इस लिए हम अपने निवास-स्थान को जायेंग।

दूसरा अर्थ—**मिगी** (सिंहनी) **उन्नदन्ती** मेरे बच्चो और स्त्री को ताडती है। **येन काम पणामेति,** जिस जिस तरह से चाहता है उस उस तरह से निकाल देता है, प्रवर्तित करता है तग करता है—इसे तू जान ले। इसमे हम क्या कर सकते हैं? **धम्मो बलवत,** यह बलवानो का स्वभाव है। हम जाते हैं। किस लिए? क्योंकि **जात सरणतो भय।**

उसकी बात सुनकर सिंह ने सिंहनी से पूछा—"भद्रे! अमुक समय मे शिकार के लिए गया था और सातवें दिन इस सियार और सियारनी के साथ लौटा था, इसकी कुछ याद है?"

"हाँ, याद है।"

"मेरे एक सप्ताह तक न आ सकने का कारण जानती है।"

"स्वामी! नही जानती हूँ।"

"भद्रे! मैं एक मृग को पकडने जाकर चूक कर दलदल में फँस गया। उसमें से न निकल सकने के कारण सप्ताह भर भूखा खडा रहा। सो, इस सियार ने मेरे प्राण बचाए। यह मुझे जीवन-दान देने वाला मित्र है। जो मित्र का धर्म पूरा कर सके वह मित्र दुर्बल नही माना जाता। इस के बाद मेरे मित्र, मेरी सखी तथा उसके बच्चो का इस प्रकार अपमान न करना।"

इतना कह सिंह ने दूसरी गाथा कही—

अपिचेपि दुब्बलो मित्तो मित्तधम्मेसु तिट्ठति
सो जातको च बन्धू च सो मित्तो सो च मे सखा,
दाठिनि! मातिमञ्ञित्थो सिगालो मम पाणदो॥

[यदि मित्र दुर्बल है, लेकिन वह मित्र के कर्तव्य को पूरा करता है तो वही रिश्तेदार है, बन्धु है, मित्र है, सखा है ! सिहनी ! अपमान मत कर। सियार मेरे प्राणो की रक्षा करने वाला है।]

अपि चेपि, एक 'अपि' जोर डालन के लिए है, दूसरा 'अपि' सम्भावना प्रकट करता है। अन्वय इस प्रकार है—दुब्बलो चेपि मित्तो मित्तधम्मेसु अपि तिट्ठति, यदि स्थित रह सकता है। सो आतको च बन्धु च सो, मैत्री चित्त होने से मित्तो। सो च मे सहायक होने से सखा। दाठिनि ! मातिमञ्ञित्थो, भद्रे ! दाढ वाली ! सिहनी ! मेर मित्र अथवा मेरी सखी का अपमान न कर। यह सिगालो मम पाणदो।

उसने सिंह की बात सुन सियारनी से क्षमा माँगी। फिर उसके तथा उसके बच्चो के साथ मिल जुल कर रहने लगी। सिंह-बच्चे भी सियार के बच्चो के साथ खेलते हुए मौज करते हुए रहने लगे। माता पिता के मरने पर भी मैत्री बनाए रख मिलजुल कर रहे। सात पीढी तक उनकी मैत्री बराबर बनी रही।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए।

उस समय सियार आनन्द था। सिंह तो मै ही था।

१५८. सुहनु जातक

"नयिद विसमसीलेन " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो भिक्षुओ के बारे में जिनका स्वभाव बडा उद्दण्ड था, कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन में भी एक उद्दण्ड, कठोर, दुस्साहसी भिक्षु था और एक दूसरा देहात (=जनपद) में भी था।

एक दिन देहात का भिक्षु किसी काम से जेतवन गया। श्रामणेर और छोटी आयु के भिक्षु उसके चण्ड-स्वभाव की बात जानते थे। उन्होंने दोनो उद्दण्ड भिक्षुओ का झगडा देखने की इच्छा से कुतूहलवश उस भिक्षु को जेतवन वासी भिक्षु के परिवेण में भेज दिया।

दोनो उद्दण्ड भिक्षु एक दूसरे को देखते ही परस्पर एक हो गए, मित्र बन गए। वह एक दूसरे के हाथ, पैर, पीठ दबाना आदि करने लगे।

भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बात चलाई—"भिक्षुओ! उद्दण्ड भिक्षु दूसरो के प्रति तो बडे उद्दण्ड है, कठोर है तथा दुस्साहसी हैं लेकिन दोनो परस्पर एक हो गए, मेल कर लिया, प्रेमी बन गए।"

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात चीत कर रहे हो?'

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ! केवल अभी नही पहले भी यह औरो के प्रति तो उद्दण्ड, कठोर तथा दुस्साहसी थे लेकिन दोनो परस्पर एक हो गए थे, मेल से रहते थे तथा प्रेमी थे।

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उस राजा के सर्वार्थसाधक अमात्य हुए। वे उसे अर्थ तथा धर्म की बातो में सलाह देते थे। वह राजा थोडा लोभी स्वभाव का था। उसके यहाँ महासोण नाम का एक दुष्ट घोडा था।

गान्धार (=उत्तरापथ) देश के घोडो के व्यापारी पाँच सौ घोडे लाए। राजा को घोडो के आने की खबर दी गई।

पहले बोधिसत्त्व घोडो की कीमत लगा उसे कम न कर दिलवाते थे।

राजा को उससे संतोष न होता था। इस लिए उसने दूसरे श्रामात्य को बुलाकर कहा—"तात! तू घोडो की कीमत लगा। लेकिन कीमत लगाने से पहले महासोण को ऐसा कर कि वह इन घोडो में जाकर उन्हें काट कर जख्मी कर दे। जब वे दुर्बल हो जायें और उनका मूल्य घट जाए, तब उनकी कीमत लगाना।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर वैसा ही किया। घोडे के व्यापारियो ने, असन्तुष्ट हो, उसने जो किया वह बोधिसत्त्व से कहा।

बोधिसत्त्व ने पूछा—"क्या तुम्हारे नगर में दुष्ट घोडा नही है?"

"स्वामी! सुहनु नाम का दुष्ट, चण्ड, कडे स्वभाव का घोडा है।"

"अच्छा तो फिर आते समय उस घोडे को लेते आना।"

उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर आते समय उस घोडे को साथ लिवाकर आए।

राजा ने सुना कि घोडो के व्यापारी आए। उसने खिडकी खोलकर घोडो को देखा और महासोण को छुडवा दिया। घोडे के व्यापारियो ने भी महासोण को आते देख सुहनु को छोडा। वे दोनो पास आने पर एक दूसरे का शरीर चाटने लगे। राजा ने बोधिसत्त्व से पूछा—"मित्र! यह दो घोडे दूसरों के प्रति चण्ड हैं, कडे स्वभाव के हैं, दुस्साहसी हैं। दूसरे घोडो को काट कर रोगी कर देते हैं। लेकिन एक दूसरे के शरीर को चाटते हुए आनन्द-पूर्वक खडे हैं। यह क्या बात है?"

बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया, "महाराज! यह परस्पर विरोधी स्वभाव के नही हैं, समान स्वभाव के हैं, समान धातु के हैं" और यह दो गाथाएँ कहीं—

नयिद विसमसीलेन सोणेन सुहनुस्सह,
सुहनूपि तादिसोयेव यो सोणस्स स गोचरो॥
पक्खन्दिना पगब्भेन निच्चं सन्दान खादिना,
समेति पापं पापेन समेति असता असं॥

[सुहनु और सोण का स्वभाव विरोधी नही है। जैसा सुहनु है, वैसा ही सोण। उछल-कूद करने वाले, प्रगल्भ तथा हमेशा लगाम खा जाने वाले इस घोडे का पापकर्म और असत्कर्म दूसरे के बराबर है]।

नयिदं विसमसीलेन सोणेन गुहनुस्सह, यह जो गुहनु दुष्ट घोडा सोण के साथ प्रेम करता है, यह अपने विरुद्ध स्वभाव वाले के साथ नहीं। यह अपने समान शील वाल के ही साथ करता है। यह दोनों दुष्ट स्वभाव वाले होने से समान स्वभाव वाले वा समान धातु वाले हैं। गुहनूपि तादिसोयेव यो सोणस्स सगोचरो, जैसा सोण गुहनु भी वैसा ही। यो सोणस्स सगोचरो, जो सोण की चरने की जगह है, वही उसकी भी। जैसे सोण अश्व-गोचर है अश्वों को काटता हुआ ही चरता है, उसी तरह गुहनु भी। इस प्रकार उनकी समान गोचरता प्रदर्शित की गई है। उनके आचरण की एकता दिखाने के लिए पक्खन्दिना आदि कहा गया है।

पक्खन्दिना, अश्वों के ऊपर कूद पडने के स्वभाव वाला। पगब्भेन, काय-प्रगल्भता आदि दुश्शीलता से युक्त। निच्चं सन्दानखादिना, हमेशा अपनी लगाम खा जाने की आदत वाले से। समेति पाप पापेन, इन दोनों में से एक का पाप, दुष्टता दूसरे के बराबर है। असता असं इन दोनों मे से एक दुष्ट दुराचारी के साथ दूसरे का असं बुरा काम बरादरी करता है। जैसे गूंह आदि के साथ गूंह आदि मिल जाता है, कोई अन्तर नही रहता, वैस ही।

इतना कहकर बोधिसत्त्व ने राजा को उपदेश दिया—"महाराज! राजा को अधिक लोभी नही होना चाहिए। दूसरा का धन नष्ट करना उचित नही।" फिर घोडों की कीमत लगवा उचित मूल्य दिलवाया।

घोडों के व्यापारी यथोचित मूल्य पाकर सतुष्ट लौटे। राजा भी बोधि-सत्त्व के उपदेशानुसार रह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय दो घोड यह दो दुष्ट भिक्षु थे। राजा आनन्द था। पण्डित आमात्य तो मैं ही था।

पर्वत-शृखला में एक दण्डक-हिरण्य पर्वत के नीचे रहना शुरू किया। रात्रि का प्रभात होने पर वह पर्वत के शिखर पर बैठ, उगते सूर्य्य को देख अपने घूमने फिरने की जगह को सुरक्षित करने के लिए ब्रह्म (महान्-) मन्त्र बनाता हुआ यह कहता—

उदेतयं चक्खुमा एकराजा
हरिस्सवण्णो पठविप्पभासो
तं तं नमस्सामि हरिस्सवण्णं पठविप्पभासं
तयज्ज गुत्ता विहरेमु दिवसं ॥

[यह चक्षुमान एक राजा जिसका रग सुनहरी है और जो पृथ्वी को प्रकाशित करता है उदय हो रहा है। मैं इस पृथ्वी को प्रकाशित करने वाले, सुवर्ण वर्ण को नमस्कार करता हूँ। आज इसके द्वारा रक्षित होकर दिन में घूमें।]

उदेति, प्राचीन लोकधातु से ऊपर उठता है। चक्खुमा, सारे ब्रह्माण्ड के निवासियो के अन्धकार को दूर कर आँख प्राप्त कराने से वह जिस आँख का देने वाला हुआ उसी आँख वाला होने से चक्खुमा। एकराजा, सारे चक्रवाल में प्रकाश फैलाने वालो में सर्वश्रेष्ठ होने से एकराजा। हरिस्सवण्णो, हरि जैसा रग, अर्थात् स्वर्ण वर्ण। पठवि को प्रकाशित करता है, इस लिए पठविप्पभासो। तं तं नमस्सामि, इसलिए ऐसे उन्हें नमस्कार करता हूँ, वन्दना करता हूँ। तयज्जगुत्ता विहरेमु दिवस, उससे सुरक्षित होकर, उसकी हिफाजत में हम आज का दिन सुखपूर्वक उठ बैठ चल फिर कर गुजारें।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से सूर्य्य को नमस्कार कर इस दूसरी गाथा से अतीत काल के परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्धो तथा बुद्ध-गुणो को स्मरण करते—

ये ब्राह्मणा वेदगु सब्ब धम्मे
ते मे नमो ते च मं पालयन्तु
नमत्थु बुद्धान नमत्थु बोधिया
नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
इमं सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना ॥

[जो ब्राह्मण सब धर्मों के जानने वाले है, उन्हें मेरा नमस्कार है। वे मेरी रक्षा करें। बुद्धो को नमस्कार है। बोधि को नमस्कार है। विमुक्तो को नमस्कार है। विमुक्ति को नमस्कार है—वह मोर इसे अपनी रक्षा (का साधन) बना खोजता रहता था।]

ये ब्राह्मणा, जिन्होने पापो को बहा दिया है, जो विशुद्ध होने से ब्राह्मण कहे गए हैं। वेदगु, जो वेद के पार गए वह भी वेदगु और वेद द्वारा जो पार गए वह भी वेदगु। यहाँ मतलब है कि जितने सस्कृत असस्कृत धर्म हैं उन सभी को प्रकट करके गए इस लिए वेदगु। तभी कहा गया है—सब्ब धम्मे। सब स्कन्ध, आयतन, धातु, धर्मों को स्वलक्षण तथा सामान्य लक्षण की दृष्टि से अपने ज्ञान को प्रकट करके गए अथवा तीनो मारो के मस्तक को मर्दित कर दस सहस्र लोकधातु को उन्नादित कर बोधि-वृक्ष के नीचे सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त कर ससार के पार पहुँचे। ते मे नमो, वे मेरे इस नमस्कार को स्वीकार करें। ते च म पालयन्तु इस प्रकार मुझसे नमस्कृत वे भगवान् मेरी पालना करें, रक्षा करें, हिफाजत करें। नमत्थु बुद्धान नमत्थु बोधिया नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया, यह मेरा नमस्कार अतीत में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्धो को पहुँचे, उन्ही की चार मार्गों तथा चार फलो का ज्ञान स्वरूप जो बोधि है उस बोधि को पहुँचे, उन्ही की अर्हत्व-फल रूपी विमुक्ति को प्राप्त करने वाले विमुक्तो को पहुँचे, जो उनकी पाँच प्रकार की विमुक्ति है अर्थात् तदङ्ग विमुत्ति विक्खम्भन विमुत्ति, समुच्छेद विमुत्ति, पटिप्पस्सद्ध विमुत्ति, तथा निस्सरण विमुत्ति; उस विमुक्ति को भी पहुँचे। इम सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना, यह दो पद शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त करके कहे। इनका अर्थ है 'भिक्षुओ वह मोर इसे परित्राण बना, उसे रक्षा का साधन बना अपनी गोचर-भूमि में फल-फूल के लिए नाना प्रकार से खोजता फिरता था।"

इस प्रकार दिन भर घूम कर शाम को पर्वत के शिखर पर बैठ डूबते हुए सूर्य को देख बुद्धगुणो का ध्यान कर निवास-स्थान की रक्षा के लिए फिर ब्रह्म-मन्त्र बाँधता हुआ 'अपेतय' आदि कहता—

अपेतयं चक्खुमा एकराजा
हरिस्सवण्णो पठविप्पभासो
तं तं नमस्सामि हरिस्सवण्णं पठविप्पभासं
तयज्ज गुत्ता विहरेमु रत्तिं ॥
ये ब्राह्मणा वेदगू सब्ब धम्मे
ते मे नमो ते च मं पालयन्तु
नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया
नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
इमं सो परित्तं कत्वा मोरो वासमकप्पयि ॥

[ये....अस्त हो रहा है। इसे रक्षा (का साधन) बना वह मोर रहने को गया]।

अपेति, जाता है, अस्त को प्राप्त होता है। इम सो परित्तं कत्वा मोरो वासमकप्पयि, यह भी बुद्धत्व प्राप्त करने पर कहा। इसका अर्थ है—भिक्षुओ! वह मोर इसे परित्राण बना, इसे रक्षा (का साधन) बना, अपने निवासस्थान पर रहने लगा। इस परित्राण के प्रताप से उसे न दिन में डर लगा न रात में, न रोमाञ्च हुआ।

उस समय बाराणसी से कुछ ही दूर पर शिकारियो का एक गाँव था। वहाँ के निवासी एक शिकारी ने हिमालय-प्रदेश में घूमते हुए उस दण्डक-हिरण्य पर्वत पर बैठे हुए बोधिसत्त्व को देख आकर पुत्र को कहा।

बाराणसी-नरेश की खेमा नामक देवी ने स्वप्न में देखा कि सुनहरी रंग का मोर धर्मोपदेश कर रहा है। उसने राजा से कहा—"देव! मैं सुनहरी रंग के मोर से धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ।"

राजा ने आमात्यो से पूछा। आमात्य बोले—ब्राह्मण जानते होगे। ब्राह्मणो ने कहा—सुनहरी रंग के मोर होते हैं। "कहाँ होते हैं"? पूछने पर बोले—"शिकारी जानते होगे।"

राजा ने शिकारियो को इकट्ठा कर पूछा। वह शिकारी-पुत्र बोला—

"महाराज ! हाँ ! दण्डक हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरी रंग का मोर रहता है।"

"तो उसे बिना मारे, जीवित ही बाँध कर लाओ।"

शिकारी ने जाकर उसके घूमने की भूमि पर जाल फैलाया। मोर के आने की जगह पर भी जाल न वसा। शिकारी उसे न पकड़ सका। सात साल घूमते रह कर वह वहीं मर गया।

खेमा देवी की भी इच्छा पूरी न हुई। वह भी मर गई।

राजा को क्रोध आया कि मोर के कारण मेरी रानी की जान गई। उसने एक सोने के पट्टे पर लिखाया—"हिमालय प्रदेश में दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरी रंग का मोर रहता है। जो उसका मांस खाते हैं वह अजर अमर हो जाते हैं।" उस सोने के पट्टे को उसने एक सन्दूकची में रखवा दिया।

उसके मरने पर दूसरे राजा ने उस स्वर्ण-पट्टे को पढ़कर अजर अमर होने की इच्छा से दूसरे शिकारी को भेजा। वह भी जाकर बोधिसत्त्व को न पकड़ सका। वहीं मर गया। इस प्रकार छः राज-पीढ़ियाँ गईं।

सातवें राजा ने राज्य पाकर एक शिकारी को भेजा। उसने जाकर देखा कि बोधिसत्त्व की चलने फिरने की जगह पर भी फंदा नहीं लगता। वह समझ गया कि अपनी रक्षा करके ही मोर चरने आता है। वह देहात में आया और वहाँ से एक मोरनी ले, उसे ऐसी शिक्षा दी कि वह ताली बजाने पर नाचने लगती और चुटकी बजाने पर आवाज लगाती। ऐसा सिखा कर वह मोरनी को लेकर गया। प्रातःकाल ही जब अभी मोर ने परित्राण द्वारा अपने को रक्षित नहीं किया था उसने फंदे के खूँटे गाड़ फंदा फैला मोरनी से आवाज लगवाई। मोर ने जब मोरनी का असाधारण शब्द सुना तो कामासक्त हो परित्राण न कर सकने के कारण जाकर फंदे में फँस गया।

शिकारी ने उसे पकड़ ले जाकर वाराणसी के राजा को दिया। राजा ने उसका सौंदर्य देख प्रसन्न हो उसे आसन दिलाया।

बोधिसत्त्व ने बिछे आसन पर बैठ, पूछा—"महाराज ! मुझे क्यों पकड़वाया ?"

"जो तेरा मांस खाते हैं, वह अजर अमर हो जाते हैं। मैंने तेरा मांस

खाकर अजर अमर होने की इच्छा से तुझे पकड़वाया है ?"

"महाराज ! मेरा मास खाने वाले तो अमर हो, और मुझे मरना होगा ?"

"हाँ, मरना होगा।"

"जब मैं मरूँगा, तो मेरा मास खाने वाले किस लिए नहीं मरेंगे ?"

"तू सुनहरी रंग का है, इसलिए तेरा मास खाने वाले अजर अमर होंगे।"

"महाराज ! मैं यूँ ही सुनहरी रग का पैदा नहीं हुआ हूँ। पहले मैं इसी नगर में चक्रवर्ती राजा था। मैंने अपने आप भी पाँच शीलों की रक्षा की और सारे चक्रवाल के निवासियों से भी करवाई। मर कर मैं त्रयोत्रिंश लोक म पैदा हुआ। वहाँ आयु भर रह कर एक दूसरे पापकर्म के फलस्वरूप मोर होकर पैदा हुआ, लेकिन पुराने सदाचार के प्रताप से सुनहरी रग का हुआ।"

"तू चक्रवर्ती होकर (पच-) शील की रक्षा कर उसी के फलस्वरूप सुनहरी रग का हुआ, इस बात पर हम कैसे विश्वास करें ? तेरा कोई साक्षी है ?"

"महाराज ! है।"

"कौन है ?"

"महाराज ! जब मैं चक्रवर्ती था, तो रत्नमय रथ में बैठ कर आकाश में विचरता था। वह मेरा रथ मङ्गल-पुष्करिणी के अन्दर जमीन में गडवाया हुआ है। उसे मङ्गल पुष्करिणी से निकलवायें। वह रथ मेरे कथन का साक्षी होगा।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर पुष्करिणी में से पानी निकलवा रथ को बाहर करवाया। तब उसे बोधिसत्त्व की बात पर विश्वास हुआ।

बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म उपदेश दिया—"महाराज ! अमृत महा निर्वाण को छोड शेष जितने भी संस्कृत धर्म हैं, वे सब पैदा होकर अभाव को प्राप्त होते हैं, अनित्य हैं, क्षय होने वाले हैं, व्यय होने वाले हैं।" फिर राजा को पच-शील में प्रतिष्ठित किया।

राजा ने प्रसन्न हो बोधिसत्त्व की राज्य से पूजा की और बडा सत्कार किया। उसने राज्य राजा को ही वापिस लौटा कुछ दिन रह कर राजा को उपदेश दिया कि महाराज ! अप्रमादी रह।

फिर आकाश में उडकर दण्डकहिरण्य नाम के पर्वत को ही चला गया।

राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल दान आदि पुण्य कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मल बैठाया।

सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। सुनहरी रग का मोर तो मैं ही था।

१६०. विनीलक जातक

"एवमेव नून राजान..." यह शास्ता ने वेळुवन मे रहते समय देवदत्त के बुद्ध की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त गया-शीर्ष पर गए हुए दोनो प्रधान श्रावको के सामने बुद्ध का रग-ढग बनाकर लेट रहा, तो दोनो स्थविर धर्मोपदेश दे अपने शिष्यो को लेकर वेळुवन चले आए।

शास्ता ने पूछा—"सारिपुत्र ! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया ?"

"भन्ते ! सुगत का रंग-ढग दिखाकर महाविनाश को प्राप्त हुआ।"

"सारिपुत्र ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ है, पहले भी प्राप्त हुआ है"। इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र मे मिथिला मे विदेहराज के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला

जाकर सब विदाए सौंपी। पिता के मरने पर राज्य गद्दी पर बैठे।

उस समय एक स्वर्ण हंसराज का चुगने की जगह पर एक कौवी से सहवास हो गया। उसे पुत्र हुआ। वह न माता के सदृश था, न पिता के सदृश। उसका रूप रंग भद्दा नीला होने से उसका नाम विनीलक ही हो गया।

हंसराजा सदैव पुत्र को देखने जाता। उसके दो दूसरे हंस-बच्चे पुत्र थे। उन्होंने पिता को हमेशा बस्ती की ओर जाते हुए देखकर पूछा—"तात ! तुम हमेशा बस्ती की ओर क्यों जाते हो ?"

"तात ! एक कौवी से सहवास होकर मुझे एक पुत्र हुआ। उसका नाम विनीलक है। मैं उसे देखने जाता हूँ।"

"वह कहाँ रहते हैं ?"

"विदेह राष्ट्र में मिथिला के पास अमुक जगह पर एक ताड़ के वृक्ष पर रहते हैं।"

"तात ! बस्ती सशंकित जगह है। वहाँ खतरा होता है। तुम न जाओ। हम जाकर उसे ले आएंगे।"

दोनों हंस-बच्चे पिता के बताए हुए निशान से वहाँ पहुँच उस विनीलक को एक डण्डे पर बिठा चोंच से डण्डे के सिरों को पकड़ मिथिला नगर के ऊपर से चले।

उस समय विदेह राज सर्वश्वेत चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठकर नगर की परिक्रमा कर रहे थे। विनीलक ने उसे देख मन में कहा—"मुझ में विदेह-राज में क्या अन्तर है ? यह चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठकर नगर में घूमता है। मैं हंस जुते रथ में बैठकर जा रहा हूँ।" उसने आकाश से जाते हुए यह गाथा कही—

एवमेव नून राजानं वेदेहं मिथिलग्गहं,
अस्सा वहन्ति आजञ्ञा यथा हंसा विनीलकं॥

[जैसे हंस विनीलक को ढो रहे हैं उसी तरह से श्रेष्ठ घोड़े मिथिला के विदेहराजा (के रथ) को खींचते हैं।]

एवमेव, इसी तरह, नून, सकल्प विकल्प विषयक निपात है। 'निश्चय से' भी ठीक अर्थ है। वेदेह, विदेह राष्ट्र के स्वामी को। मिथिलग्गह, मिथिलागेह

मिथिला में घर लेकर रहने वाला। आजञ्ञा, कारण, अकारण जानने वाले, यथा हंसा विनीलकं, जैसे यह हंस मुझ विनीलक को ढो रहे हैं, उसी प्रकार खींच रहे हैं।

हंस-बच्चों ने उसकी बात सुनी तो उन्हें क्रोध आया। उन्होंने सोचा इसे यहीं गिरा जायें। लेकिन फिर सोचा ऐसा करने से हमारा पिता हमें क्या कहेगा? उसकी निन्दा के डर से वे उसे पिता के पास ले गए और उसकी करतूत पिता से कही।

पिता को क्रोध आया। वह बोला—'क्या तू मेरे पुत्रों से बढ़कर है जो उनको नीचा दिखा रथ में जुतने वाले घोड़ों के समान बनाता है? अपनी बिसात नहीं जानता? यह स्थान तेरे योग्य नहीं है। जहाँ तेरी माँ रहती है, वहीं जा।' इस प्रकार धमका कर दूसरी गाथा कही—

विनील! दुग्गं भजसि अभूमिं तात! सेवसि,
गामन्तिकानि सेवस्सु एतं मातालयं तव॥

[विनील! तू दुर्ग में रहता है। तात! तू अयोग्य स्थान में रहता है। तू ग्राम के आसपास रह। वह तेरा मातृ-गृह है।]

विनील उसे नाम से बुलाता है। दुग्गं भजसि, इनके साथ गिरि-दुर्ग में रहता है। अभूमिं तात! सेवसि तात! गिरि विषम स्थान, तेरे लिए अयोग्य स्थान है। तू अभूमि में वास करता है। एतं मातालयं तव, यह ग्राम के सिरे पर जो कूड़ा फेंकने की जगह है तथा कच्चा श्मशान है वही तेरी माता का निवास-स्थान है। तू वहीं जा।

इस प्रकार उसे धमका कर पुत्रों को आज्ञा दी—जाओ, इसे मिथिला नगर की कूड़ा डालने की जगह पर ही उतार आओ। उन्होंने वैसा ही किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय विनीलक देवदत्त था। दो हंस-बच्चे दो अग्र-श्रावक थे। पिता आनन्द था। विदेहराज तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

२. सन्थव वर्ग

१६१. इन्दसमानगोत्त जातक

"न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक ऐसे भिक्षु के बारे मे कही जो किसी की बात न मानता था।

क. वर्तमान कथा

उसकी कथा नौवें परिच्छेद में गिज्झ जातक[1] में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—हे भिक्षु ! तूने पहले भी किसी की बात न मानने वाला होने से पण्डितो का कहना न माना और मस्त हाथी के पैरो से रौंदा जाकर चूर चूर हुआ। इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मणकुल में पैदा हुए। बडे होने पर घर बार छोड ऋषियो के ढग की प्रव्रज्या ग्रहण कर पाँच सौ ऋषियो के दल का नेता बन हिमालय प्रदेश में रहने लगे। उन तपस्वियो में एक इन्दसगोत्त नाम का तपस्वी था—किसी की बात न मानता था, किसी का कहना न करता था।

उसने एक हाथी-बच्चा पाल रक्खा था। बोधिसत्व ने सुना तो उसे बुलाकर पूछा—'सचमुच ! तू हाथी-बच्चे को पाल-पोस रहा है ?'

---

[1] गिज्झ जातक (४२७)

'सचमुच आचार्य्य ! एक हाथी-बच्चा है, जिसकी माँ मर गई है, उसे पोस रहा हूँ।'

'हाथी बड़े होने पर पालन-पोषण करने वाले को ही मारते हैं, तू उसे मत पोस।'

'आचार्य्य ! उसके बिना नही रह सकता।'

'अच्छा ! तो पता लगेगा।'

उससे पोसा जाकर वह हाथी-बच्चा आगे चलकर बड़े भारी शरीर वाला हो गया।

एक समय वे ऋषिगण जगल से फल-मूल लाने के लिए दूर चले गए और कुछ दिन वही रहे। हाथी को श्रेष्ठ दक्षिण हवा लगी तो उसका मद फूट पड़ा। उसने उस तपस्वी की पर्णकुटी नष्ट कर डाली। पानी का घड़ा फोड़ दिया। पत्थर का तख्ता फेंक दिया। आलम्बन-तख्ता[1] नोच डाला। फिर उस तापस्वी को मार डालकर ही जाने के विचार से एक घनी जगह में छिपकर उसके आने के रास्ते की ओर देखता हुआ खड़ा रहा।

इन्दसगोत्त अपना फल-मूल ले, सबके आगे आगे आ रहा था। उसे देख वह साधारण स्वभाव से ही उसके पास गया।

हाथी ने घनी जगह से निकल, उसे सूण्ड से पकड़, जमीन पर गिरा, सिर पैर से दबा मार डाला। फिर उसे मसलता हुआ क्रौञ्चनाद करके जंगल में चला गया। शेष तपस्वियो ने बोधिसत्त्व से यह समाचार कहा। बोधिसत्व ने यह कहते हुए कि बुरे आदमी से दोस्ती नहीं करनी चाहिए, यह गाथा कही—

> न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा
> अरियो अनरियेन पजानमत्थं
> चिरानुवुत्थो पि करोति पापं
> गजो यथा इन्दसमानगोत्तं ॥
> य त्वेव जञ्ञा सदिसो ममं
> सीलेन पञ्ञाय सुतेन चापि

[1] जिसके सहारे से बैठ सकें।

तेनेव मेत्तिं कयिराथ सद्धिं
सुखावहो सप्पुरिसेन सङ्गमो ॥

[श्रेष्ठ आदमी अर्थ-अनर्थ को जानता हुआ बुरे आदमी से दोस्ती न करे। चिरकाल तक साथ रह कर भी बुरा आदमी बुराई करता है, जैसे हाथी ने इन्द्रसमान गोत्र की बुराई की।

जिसके सदाचार, प्रज्ञा तथा ज्ञान को अपने बराबर का समझे, उसीके साथ मैत्री करे। सत्पुरुष के साथ की गई मैत्री सुख को देने वाली होती है।]

न मन्थव कापुरिसेन कयिरा, घृणित ओछे आदमी के साथ आसक्ति वा मैत्री न करे। **अरियो अनरियेन पजानमत्थ;** आर्य्य चार प्रकार के होते है (१) आचार आर्य्य, (२) लिङ्ग-आर्य्य, (३) दर्शन आर्य्य, (४) प्रतिवेध-आर्य्य। इनमें यहाँ आचार्य्य आर्य्य से मतलब है। जो अर्थ को जानता है अर्थ को पहचानता है, आचार में स्थित है—ऐसा आर्य्य-पुद्गल, अनार्य्य, निर्लज्ज, दुश्शील के साथ मैत्री न करे। क्या? **चिरानुवुत्थोपि करोति पापं,** क्योंकि अनार्य्य चिरकाल तक एक साथ रहकर भी, उस एक साथ रहने का ख्याल न कर पाप, पाप-कर्म, बुरा-कर्म करता है। जैसे क्या? **गजो यथा इन्दसमानगोत्त** जैसे उस हाथी ने इन्द्रसमानगोत्र को मार कर पाप किया।

यं त्वेव जञ्ञा सदिसो मम, इत्यादि में जिस आदमी को जाने कि यह आदमी शील आदि में मेरे समान है, उसीके साथ मैत्री करे। सत्पुरुष के साथ मेल जोल सुखदायी होता है।

इस प्रकार बोधिसत्व ने उपदेश दिया कि बात न मानने वाला नही होना चाहिए, कहना मानने वाला होना चाहिए। यूँ ऋषिगण को उपदेश दे **इन्द्र समान गोत्र** का शरीर-कृत्य करवा ब्रह्म विहारों की भावना करते हुए वह ब्रह्म लोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय इन्दसमानगोत्त यह बात न मानने वाला भिक्षु था। ऋषि-गण का शास्ता मैं ही था।

१६२. सन्थव जातक

"न सन्थवस्मा परमत्थि पापियो. ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय अग्नि-हवन करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा वैसी ही है जैसी नङ्गुट्ठ जातक[1] में है। भिक्षुओ न उन्हे अग्नि-हवन करते देख भगवान् से पूछा—"भन्ते ! जटिल-साधु नाना प्रकार के मिथ्या-तप करते हैं। इनसे कुछ उन्नति होती है ?" शास्त ने उत्तर दिया—"भिक्षुओ, इससे कुछ लाभ नही। पुराने पण्डितो ने अग्नि-हवन करने से उन्नति होगी समझ चिरकाल तक अग्नि-हवन किया। लेकिन जब उससे हानि ही होनी देखी, तो उन्होने उसे पानी डालकर बुझा दिया और शाखा आदि से पीटकर चले गए। फिर मुडकर उस तरफ देखा तक नही।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। माता पिता ने उसके पैदा होने के दिन से अग्नि सभाल कर रख, उसके सोलह वर्ष का होने पर पूछा—'तात ! जन्म दिन से रक्खी हुई अग्नि लेकर जगल में जा अग्नि की परिचर्या करोगे ? अथवा तीनो वेद सीखकर कुटुम्ब का पालन करते हुए घर पर रहोगे ?'

---

[1] नङ्गुट्ठ जातक (१४४)

उसे घर रहने की इच्छा नहीं थी। इसलिए वह जंगल में जा अग्नि की पूजा कर ब्रह्मलोक गामी होने की इच्छा से जन्म-दिन से रखी हुई आग ले, माता पिता को प्रणाम कर जगल चला गया। वहाँ पर्ण-कुटी में रहता हुआ अग्नि की पूजा करने लगा।

एक दिन वह किसी निमन्त्रित स्थान पर गया। वहाँ उसे घी के साथ खीर मिली। उसने सोचा इस खीर से महा-ब्रह्मा का यज्ञ करूँगा। उसने खीर ला आग जलाई। फिर सोचा घी मिश्रित खीर भगवान् अग्नि को पिलाऊँ और खीर को आग मे फेंका। बहुत चिकनाई वाली खीर के आग में पड़ते ही आग जोर से जली और उसकी जोर से उठी लपट ने पर्ण-कुटी जला डाली।

ब्राह्मण डरकर, घबरा कर भाग गया। बाहर खड़े होकर उसने सोचा कि बुरे से दोस्ती नहीं करनी चाहिए। अब इसने बड़ी कठिनाई से बनाई मेरी कुटिया जला डाली। इतना कह यह गाथा कही—

न सन्थवस्मा परमत्थि पापियो
यो सन्थवो कापुरिसेन होति,
सन्तप्पितो सप्पिना पायसेन
किच्छा कतं पण्णकुटिं अदड्ढहि ॥

[बुरे आदमी की मैत्री से बढ़कर बुरा कुछ नहीं। आग को घी वाली खीर से सन्तर्पित किया। उसने कठिनाई से बनी पर्ण-कुटी जला दी।]

न सन्थवस्मा, आसक्ति और मैत्री, यह जो दोनो प्रकार की दोस्ती है, इससे बढ़कर दूसरी बुरी बात नहीं है। यो सन्थवो कापुरिसेन, जो पापी बुरे आदमी के साथ दोनों तरह की दोस्ती है, इस दोस्ती से बढ़कर और बुरा कुछ नहीं। किस लिए? सन्तप्पितो. . . .अदड्ढहि, क्योंकि घी और घी से सन्तर्पित की गई इस आग ने भी बड़ी कठिनाई से बनाई हुई मेरी पर्ण-कुटी जला दी।

इतना कह, 'उस मित्र-द्रोही से मुझे कुछ मतलब नहीं' सोच उसे पानी से बुझा, शाखाओं से पीट हिमालय में चला गया। वहाँ उसने जब एक श्यामा

मृगी को सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटते देखा, तो 'सत्पुरुष से मित्रता करने से बढ़कर कुछ नहीं है' सोच दूसरी गाथा कही—

> न सन्थवस्मा परमत्थि सेय्यो
> यो सन्थवो सप्पुरिसेन होति
> सीहस्स व्यग्घस्स च दीपिनो च
> सामा मुखं लेहति सन्थवेन ॥

[सत्पुरुष से जो स्नेह होता है, उस स्नेह से बढ़कर श्रेष्ठ कुछ नहीं है। श्यामा मृगी स्नेह से सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटती है।]

सामा मुखं लेहति सन्थवेन, श्यामा मृगी इन तीनों जनों का मैत्री से, स्नेह से मुँह चाटती है।

इस प्रकार वह बोधिसत्व हिमालय में चले गए। वहाँ ऋषियों की प्रव्रज्या ग्रहण कर अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, मरने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय तपस्वी मैं ही था।

१६३. सुसीम जातक

"काळामिगा सेतदन्ता तव इमे···" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय छन्दकदान[1] के बारे में कही।

---

[1] वह दान जिसके देने में छन्द (vote) दिया गया हो।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कभी एक ही परिवार भिक्षुगण को जिसमें बुद्ध मुख्य रहते थे दान देता था, कभी बहुत से लोग एक साथ इकट्ठे हो दल बना कर दान देते थे, कभी एक एक गली के लोग मिलकर देते थे और कभी सारे नगर के लोग सबसे इकट्ठा करने के दान देते थे।

इस समय सारे नगर निवासियों से दान इकट्ठा किया गया। सारा सामान तैयार हो गया। दाताओं में दो पक्ष थे। एक ने कहा यह सामान अन्य-तीर्थिकों को दें। दूसरे ने कहा संघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध हैं। इस प्रकार बार बार बात होने पर भी दोनों पक्षों का अपना अपना आग्रह रहा—अन्य-तीर्थिकों के शिष्य उन्हें दान दिए जाने के पक्षपाती रहे और बुद्ध के शिष्य बुद्ध-प्रमुख भिक्षुगण को। तब यह हुआ कि बहुमत देखा जाए। बहुमत लिए जाने पर अधिक लोग यही कहने वाले हुए कि बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को ही दिया जाए। उन्हीं की बात स्थिर रही। अन्य-तीर्थिकों के शिष्य बुद्ध को दिए जाने वाले दान में बाधा नहीं डाल सके।

नगर के लोगों ने बुद्ध की प्रमुखता में भिक्षुसंघ को निमन्त्रित कर महा-दान दिया और सातवें दिन सब वस्तुओं का दान किया।

शास्ता अनुमोदन कर जनता को मार्ग तथा फल का बोध करा जेतवन विहार में चले गए। वहाँ भिक्षुसंघ द्वारा आदर प्रदर्शित किए जाने पर गन्ध-कुटी के सामने खड़े हो उपदेश दे गन्धकुटी में प्रवेश किया।

शाम को धर्मसभा में एकत्रित हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! दूसरे तैर्थिक श्रावकों ने बुद्ध को मिलने वाले दान में विघ्न डालने की कोशिश की, किन्तु वे सफल नहीं हुए। सभी वस्तुओं का दान बुद्धों के ही चरणों पर आ पहुँचा। ओह! बुद्धों की महानता!

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, यह दूसरे मतों के अनुयाई न केवल अभी मुझे मिलने वाले दान में विघ्न डालने का प्रयत्न करते हैं, पहले भी किया है! लेकिन दान की वह वस्तुएँ हमेशा मेरे ही चरणों में आ जाती रही हैं'—इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

सोने की ध्वजाओं के साथ सुनहरी जालों से ढक कर खड़ा किया गया। राजाङ्गण अलङ्कृत हुआ। ब्राह्मण लोग प्रसन्नचित्त सजधज कर खड़े थे कि हम हस्ती-मङ्गल करेंगे, हम करेंगे। सुसीम राजा भी गहने और भाण्डे लिवा जाकर मङ्गल-स्थान पर खड़ा हुआ।

बोधिसत्त्व ने भी एक कुमार के लिए जिस ढंग से अलङ्कृत होना उचित है, उस तरह अलङ्कृत हो, अपनी परिषद का नेता बन राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज! क्या आपने सचमुच ऐसी बात कही है कि हमारे वंश को नाश करके, दूसरे ब्राह्मणों से हस्ती-मङ्गल करवा, हाथियों के अलङ्कार तथा दूसरे सामान उनको देंगे?" इतना कह, पहली गाथा कही—

> काळा मिगा सेतदन्ता तव इमे
> परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
> ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि
> अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं ॥

[सुसीम! क्या तुम अपने और हमारे पूर्वजों को याद करके भी यह कहते हो कि सोने के जाल से ढके हुए सौ से अधिक काले हाथी, जिनके दाँत सफ़ेद हैं, तुमको देंगे, तुमको देंगे?]

ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि, वह यह अथवा तुम्हारे पास के, काळा मिगा सेत दन्ता, ऐसे नाम वाले सौ से अधिक सब अलङ्कारों से सजे हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ, हे सुसीम! क्या तू यह सचमुच कहता है। अनुस्सरं पेत्ति पितामहानं, हमारे और अपने वंश के पिता-पितामह आदि को याद करते हुए। महाराज! सात पीढ़ियों से हमारे पिता-पितामह हस्ती-मङ्गल करते रहे हैं। सो आप इसे याद करके भी क्या सचमुच हमारे और अपने वंश (के सम्बन्ध) को नष्ट करके ऐसा कहते हैं?

सुसीम ने बोधिसत्त्व की बात सुन दूसरी गाथा कही—

> काळा मिगा सेतदन्ता मम इमे
> परोसतं हेमजालाभि सञ्छन्ना

ते ते ददामीति यदामि माणव !
अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं ॥

[माणव ! हाँ अपने और तुम्हारे पूर्वजो को याद करके भी यह कहता हूँ कि यह अपने स्वर्ण-जाल से ढके हुए सौ से अधिक हाथी, जिनके सफेद दाँत है, तुमको देता हूँ।]

ते ते ददामि, ये यह हाथी दूसरे ब्राह्मणो को देता हूँ। माणव ! यह मैं सत्य ही कहता हूँ। अथवा तेरे हाथी ब्राह्मणो को देता हूँ, यह भी अर्थ है। अनुस्सर, पिता पितामह की स्मृति भी याद है, नही याद है सो नही। हमारे पिता पितामह वे हस्ती मङ्गल को तुम्हारे पिता पितामह करते थे, इसे याद करता हुआ भी यह कहता हूँ।

बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज ! हमारे और अपने वश को याद रखते हुए आप क्यो मुझे छोड दूसरो से हस्ती मङ्गल करवाते है ?"

"तात ! मुझे कहा गया है कि तू तीन वेद और हस्ती-सूत्र नहीं जानता है। इसीलिए मै दूसरे ब्राह्मणो से करवाता हूँ।

बोधिसत्त्व सिंह की तरह गरज कर बोला—"तो महाराज ! इतने ब्राह्मणो म जो एक भी ब्राह्मण मेरे साथ तीनो वेद तथा हस्ती-सूत्र का कुछ हिस्सा भी कह सकता हो, वह उठे। तीन वेदो और हस्ती-सूत्र के साथ हस्ती-मङ्गल करनेवाला मुझे छोड कोई दूसरा सारे जम्बूद्वीप में नही।"

एक ब्राह्मण भी प्रतिपक्षी बनकर खडा नही हो सका। बोधिसत्त्व ने अपने कुल-वश को प्रतिष्ठित कर हस्ती-मङ्गल किया और बहुत धन ले अपने घर गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य (सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। कोई स्रोतापन्न हुए। कोई सकृदागामी, कोई अनागामी और कोई अर्हत।

तब माँ महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराज थे। सुसीम राजा आनन्द था। चारो दिशाओ में प्रसिद्ध आचार्य्य सारिपुत्र था। माणव तो मैं ही था।

१६४. गिज्झ जातक

"यं नतु गिज्झो योजनसतं···" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय माता पिता का पोषण करने वाले एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा साम जातक[1] में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—'भिक्षु! क्या तू सचमुच गृहस्थो का पोषण करता है?' 'हाँ! सचमुच' कहने पर पूछा—'वह तेरे क्या लगते हैं?

"भन्ते! वे मेरे माता पिता हैं।"

"बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!" कह अन्य भिक्षुओं को शास्ता ने मना किया—"भिक्षुओ! इस भिक्षु पर क्रोध न करें। पुराने समय में पण्डित-जन गुणो का ख्याल करके भी रिश्तेदारो का उपकार करते रहे हैं। इसका तो कर्तव्य है कि यह माता पिता की सेवा करे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गृध्र-पर्वत पर गृध्र होकर पैदा हो माता पिता का पोषण करते थे।

एक बार बड़ा आंधी-पानी आया। गृध्र आंधी-पानी न सह सकने के कारण शीत से डर कर वाराणसी जा वहाँ चारदीवारी के पास, खाई के निकट सर्दी से काँपते हुए बैठे। वाराणसी-सेठ नगर से निकल कर नहाने जा रहा

---

[1] साम जातक (५४०)

था। उसने उन गृध्रों को कष्ट में देखकर एक ऐसी जगह पहुँचवा दिया जहाँ वर्षा नहीं हो रही थी। फिर वहाँ आग जलवाई। मुर्दों को फेंकने के स्थान से गो-मांस मँगवा कर उन्हें दिलवाया। उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया।

आँधी-पानी के बन्द होने पर गृध्र स्वस्थ शरीर हो पर्वत को ही लौट गए। उन्होंने वहाँ इकट्ठे हो, इस प्रकार मन्त्रणा की। 'वाराणसी सेठ ने हमारा उपकार किया। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए अब से तुम में से जिसे किसी का जो वस्त्र या आभरण मिले, उसे चाहिए कि वह वाराणसी-सेठ के घर में खुले आँगन में गिरा दे।'

उस समय से गृध्र, आदमियों के धूप में सुखाने के लिए डाले हुए वस्त्राभरणों को, उन्हें लापरवाह देख, जिस तरह से चील मांस के टुकड़े को एक दम उठा ले जाती है, उसी तरह उठा ले जाकर वाराणसी-सेठ के खुले आँगन में गिरा देते। सेठ ने यह मालूम करके कि वह वस्त्राभूषण गृध्र ला लाकर डालते हैं, उन्हें पृथक् एक ओर रखा।

राजा के पास खबर पहुँची कि गृध्र नगर उजाड़ रहे हैं। उसने कहा कि किसी एक गृध्र को पकड़ लो। सब माल मँगवा लूँगा। राजा ने जहाँ तहाँ जाल और पाश फैलवाए। माता पिता का पोषण करने वाला गृध्र जाल में फँस गया। उसे पकड़कर राजा को दिखाने के लिए ले चले।

वाराणसी-सेठ ने राजा की सेवा में जाते समय उन मनुष्यों को गृध्र पकड़ कर ले जाते हुए देखा। उसने सोचा कि यह इस गृध्र को कष्ट न दें, इसलिए साथ हो लिया। गृध्र को राजा के पास ले गए। राजा ने पूछा—

"तुम नगर पर डाका डालकर वस्त्र आदि ले जाते हो?"

"महाराज! हाँ।"

"वह किसे दिए हैं?"

"वाराणसी-सेठ को।"

"क्यों?"

"हमें उसने जीवन-दान दिया था। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए दिए।"

राजा ने उसे यह कहते हुए कि गृध्र तो सौ योजन की दूरी से लाश को

देख लेते है, तूने अपने लिए फैलाए फंदे को क्यो नही देखा, (यह) पहली गाथ कही—

य ननु गिज्झो योजनसतं कुणपानि अवेक्खति,
कस्मा जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झसि ॥

[गृध्र तो सौ योजन दूरी पर से भी लाश को देख लेता है। तू पास से भी जाल और फंदे को क्यो नहीं देख सका ?]

यं निपात मात्र है। नु, निपात ही है। गिज्झो योजनसतं (गीध सौ योजन) दूर पर पड़ी हुई कुणपानि अवेक्खति देखता है। आसज्जापि, पास आकर भी, पहुँच कर भी, तू अपने लिए फैलाए जाल और फंदे के पास पहुँच कर भी उसे क्यो न बुज्झसि (यह) पूछा।

गृध्र ने उसकी बात सुन दूसरी गाथा कही—

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसङ्खये,
अथ जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जब विनाश का समय आता है, जब जीवन पर सङ्कट आता है, तब प्राणी पास में पड़े हुए जाल और फंदे को भी नहीं देखता।]

पराभवो, विनाश। पोसो, प्राणी।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य (-सत्यो) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर माता पिता का पोषण करने वाला भिक्षु श्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। बाराणसी सेठ सारिपुत्र था। माता पिता का पोषण करने वाला गृध्र तो मैं ही था।

१६५. नकुल जातक

"सन्धि कत्वा अमित्तेन. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो श्रेणियो के कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा उपरोक्त उरग जातक[1] की तरह ही है। इसमें शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ ! इन दो महा-मन्त्रियो का न केवल अभी मैंने मेल कराया है। पहले भी मैंने इन दोनो का मेल कराया है।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याएँ सीखी। फिर गृहस्थी छोड ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रज्या ली। अभिञ्ञा

---

[1] उरग जातक (१५४)

तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर फल-मूल चुग चुग कर खाते हुए हिमालय-प्रदेश में रहने लगे।

उनके चङ्क्रमण करने के स्थान के एक सिरे पर बाम्बी में एक नेवला और उसीके पास वृक्ष की खोह मे एक सर्प रहता था। वह दोनो नेवला और साँप हमेशा आपस में झगड़ते रहते थे।

बोधिसत्व ने उनको झगड़ने का दुष्परिणाम और मैत्री-भावना का लाभ समझा कर कहा कि कलह न करके मिलकर रहना चाहिए। इस प्रकार उन दोनो का मेल करा दिया।

साँप के बाहर निकलने के समय नेवला चङ्क्रमण-भूमि के सिरे पर बाँबी के द्वार में से सिर निकाल मुँह खोल श्वास-प्रश्वास लेता हुआ लेट कर सो रहा। बोधिसत्व ने उसे इस प्रकार सोते हुए देख 'तुझे किस कारण से भय लगा है?' पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

सन्धिं कत्वा अमित्तेन अण्डजेन जलाबुज।
विवरिय दाढं सयसि कुतो तं भयमागतं॥

[हे नकुल! तू साँप से दोस्ती करके भी मुँह खोले पड़ा है। तेरे भयभीत होने का क्या कारण है?]

सन्धि कत्वा मैत्री करके, *अण्डजेन,* अण्डे से पैदा हुए नाग से, *जलाबुज*[1]! नकुल को पुकारता है। वह गर्भ से पैदा होने के कारण जलाबुज कहलाया। *विवरिय,* खोलकर।

इस प्रकार बोधिसत्व के कहने पर नेवला बोला—आर्य! शत्रु की ओर से असावधान नही होना चाहिए। सशंकित ही रहना चाहिए। यह कहते हुए नेवले ने दूसरी गाथा कही—

सङ्केथेव अमित्तस्मिं मित्तस्मिं पि न विस्ससे
अभया भयमुप्पन्नं अपि मूलं निकन्तति॥

---

[1] जाबुज (=जरायुज)

[शत्रु से सशङ्कित रहे। मित्र पर भी विश्वास न करे। अभय से जो भय पैदा होता है वह जड़ भी खोद देता है।]

अभया भयमुप्पन्न यहाँ से तुझे भय नहीं है, ऐसा अभय (देन वाला) कौन है ? मित्र ! मित्र में भी विश्वास करने पर उससे जो भय उत्पन्न होता है, वह जड़ भी खोद देता है। मित्र को सब छिद्र मालूम होते हैं, इसलिए वह जड़ खोदने का काम करता है।

बोधिसत्व ने कहा—"डर मत। मैंने ऐसा कर दिया है कि सर्प अब तुझसे द्वेष नहीं करेगा। तू अब से उससे सशङ्कित मत रह।" इस प्रकार उपदेश दे, चारों ब्रह्म विहारों की भावना कर बोधिसत्व ब्रह्मलोकगामी हुए। वे भी कर्मानुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाया। उस समय सर्प और नेवला यह दोनों प्रधान थे। तपस्वी तो मैं ही था।

१६६. उपसाळ्हक जातक

उपसाळ्हक नामानं, यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उपसाल्हक नाम के एक ब्राह्मण के बारे में जिसे श्मशान की शुद्धि का बहुत ख्याल था कही।

क. वर्तमान कथा

वह ब्राह्मण बड़ा धनवान् था। लेकिन क्योंकि वह एक मिथ्या-मत का शिकार था, इसलिए वह पास के विहार में रहने वाले बुद्धों की भी सेवा नहीं करता था। हाँ, उसका पुत्र पण्डित था, ज्ञानी था।

उस ब्राह्मण ने बूढा होने पर पुत्र को कहा—"तात ! मुझे किसी ऐसे श्मशान में मत जलाना जहाँ कोई चाण्डाल जलाया गया हो। मुझे किसी ऐसे ही श्मशान में जलाना जहाँ पहले कही कोई न जलाया गया हो।"

"तात ! मैं नही जानता कि आपको मुझे कहाँ जलाना चाहिए। बहुत अच्छा हो, मुझे साथ ले जाकर आप बता दें कि मुझे तुम इस जगह जलाना।"

ब्राह्मण ने 'तात ! अच्छा' कह, और उसे ले जा नगर से निकल गृध्रकूट पर्वत पर चढ कहा—'तात ! यहाँ पहले कोई चाण्डाल नही जलाया गया है। मुझे यहाँ जलाना।"

फिर वह पुत्र के साथ पर्वत से उतरने लगा।

शास्ता ने प्रात काल ही ऐसे लोगो का विचार करते हुए जिनकी उस दिन ज्ञानप्राप्ति की सम्भावना थी उन पिता-पुत्र की श्रोतापत्ति-मार्गारूढ होने की सम्भावना को देखा।

इसलिए मार्ग पकड एक शिकारी की तरह पर्वत की तराई में पहुँच उनके पर्वत से उतरते समय उनकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे। उन्होने उतरते समय शास्ता को देखा। शास्ता ने कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—"ब्राह्मण ! कहाँ गए थे ?"

माणवक ने वह बात कही। शास्ता ने कहा—'तो आओ, तुम्हारे पिता ने जो स्थान बताया है, वहाँ चलें।' उन दोनो को साथ लेकर पर्वत के शिखर पर चढ पूछा—'कौनसी जगह है ?'

माणवक ने कहा—"भन्ते ! इन तीनो चोटियो के बीच में बताया है।"

शास्ता बोले—'माणवक ! तेरे पिता केवल अभी श्मशान की शुद्धि मानने वाले नही है, पहले भी श्मशान की शुद्धि मानने वाले रहे है। न केवल अभी इसने तुझे कहा है कि मुझे इस स्थान पर जलाना, पहले भी इसने इसी स्थान पर जलाने के लिए कहा है।" इतना कह, माणवक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में इसी राजगृह में यही उपसाल्हक ब्राह्मण था, यही इसका पुत्र था।

उस समय बोधिसत्त्व मगध देश में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, सब विद्याएँ सीख, ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीडा करते हुए हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रहे। फिर नमक-खटाई खाने के लिए गृध्रकूट पर पर्ण-कुटी में रहने लगे।

उस समय उस ब्राह्मण ने इसी तरह से पुत्र को कह, पुत्र के यह कहने पर कि 'तुम्ही मुझे उस तरह का स्थान बता दो' यही स्थान बताया। फिर पुत्र के साथ उतरते हुए ब्राह्मण बोधिसत्त्व को देख उनके पास पहुँचा।

बोधिसत्त्व ने इसी तरह पूछ माणवक की बात सुन, कहा—'आ, तेरे पिता द्वारा बताए गए स्थान की परीक्षा करें कि वहाँ पहले कोई जलाया गया है, वा नही ?' फिर उनके साथ पर्वत-शिखर पर चढ़, जब माणवक ने कहा कि यह तीनो चोटियो के बीच का स्थान ऐसा है जहाँ कोई नही जलाया गया, कहा—"माणवक ! इसी स्थान पर जलाए गयो का हिसाब नहीं है। तेरा पिता इसी राजगृह में ब्राह्मण कुल में ही पैदा होकर, उपसाळ्हक नाम से ही इन्ही चोटियो के बीच में चौदह हजार बार जलाया गया है। पृथ्वी में ऐसी कोई जगह नही है, जहाँ कोई न कोई जलाया न गया हो, जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ सिर न कटे हो। पूर्व-जन्मो का ज्ञान होने से, उघाड कर यह दो गाथाएँ कही—

उपसाळ्हक नामान सहस्सानि चतुद्दस
अस्मिं पदेसे दड्ढानि नत्थि लोके अनामतं ॥
यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा सयमो दमो
एतदरिया सेवन्ति एतं लोके अनामतं।

[उपसाळ्हक नाम से ही चौदह हजार व्यक्ति इसी स्थान में जलाए गए। लोक में ऐसी जगह नही है जहाँ कोई न कोई मरा न हो।

जिसमे सत्य है, धर्म है, अहिंसा है, सयम है उसे आर्य्य-जन सेवन करते हैं। यही लोक में नही मरता है।]

अनामतं, मृत-स्थान को ही व्यवहार से अमृत-स्थान कहा गया है। उसका प्रतिषेध करते हुए अनामत कहा है। अनमतं, भी पाठ है। लोक में

ी जगह नहीं है जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ कोई न मरा हो। यस्मिं
च्चं च धम्मो च, जिस व्यक्ति में चार आर्य-सत्य, पूर्व-भाग-सत्य ज्ञान[1] तथा
कुत्तर धर्म है, अहिंसा, दूसरो को कष्ट न देना, संयमो, सदाचार, दमो
न्द्रियो का दमन। जिस आदमी में यह गुण है, एतदरिया सेवन्ति बुद्ध, प्रत्येक
; तथा बुद्ध श्रावक आर्य-जन इस स्थान का सेवन करते हैं। इस प्रकार
आदमी के पास जाते हैं, उसकी संगति करते हैं। एत लोके अनामतं, यहीं
। लोक में अमृतत्व का साधन होने से अमृत कहलाते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व पिता तथा पुत्र को धर्मोपदेश दे चारो ब्रह्मविहारो
भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश को ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक
मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनो पिता पुत्र
तापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए।

उस समय के पिता पुत्र ही अब के पिता पुत्र हुए। तपस्वी तो मैं ही था।

✓१६७. समिद्धि जातक

"अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु ···" यह शास्ता ने राजगृह के तपोदाराम मे
ार करते हुए समिद्धि स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन आयुष्मान् समिद्धि सारी रात योगाभ्यास करके अरुणोदय के
य स्नान कर अपने स्वर्ण-वर्ण शरीर को सुखा रहे थे। उन्होने अन्तरवासक

---

[1] मार्ग प्राप्ति से पहले का आर्य-सत्यो का ज्ञान।

पहन लिया था और उत्तरासंग उनके हाथ में था। वे सोने की सुन्दर प्रतिमा की तरह प्रतीत होते थे। उनका शरीर समृद्ध होने से ही उनका नाम समिद्धि था।

उनके शरीर का सौन्दर्य देख एक देव-कन्या उन पर आसक्त हो गई और बोली—"भिक्षु! तू तरुण है, तू युवा है, तेरे केश सुन्दर तथा काले है, तू श्रेष्ठ यौवन से युक्त है, तू मनोरम है, तू दर्शनीय है, तू मन को प्रसन्न करने वाला है। तेरे ऐसे शरीर वाले को काम-भोगो को न भोग प्रव्रजित होने में क्या लाभ? अभी तू काम-भोगो को भोग। पीछे प्रव्रजित होकर श्रमण-धर्म का पालन करना।"

उसे स्थविर ने उत्तर दिया—"हे देव-कन्या! मैं नही जानता कि मैं किस आयु में मरूँगा। मेरी मृत्यु मुझसे छिपी है। इसलिए तरुणाई की अवस्था में ही श्रमण-धर्म करके दुःख का अन्त करूँगा।"

स्थविर ने उसका स्वागत नही किया। वह वही अन्तर्ध्यान हो गई।

स्थविर ने शास्ता के पास जाकर यह बात कही। शास्ता बोले—"समिद्धि! न केवल तुझे ही अब देव-कन्या ने प्रलोभित किया है? पूर्व में भी देव-कन्याओ ने प्रव्रजितो को प्रलोभित किया है।"

शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी-गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बडे होने पर सब विद्याओ में पारङ्गत हो, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश में एक तालाब के पास रहने लगे।

वह सारी रात योगाभ्यास करते रहे। अरुणोदय होने पर स्नान किया। फिर एक वल्कल चीर पहन, एक हाथ में ले शरीर को सुखाने लगे। उसका सुन्दर शरीर देख एक देव-कन्या उस पर आसक्त हो बोधिसत्व को ललचाती हुई यह पहली गाथा बोली—

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु ! नहि भुत्वान भिक्खसि ।
भुत्वान भिक्खु ! भिक्खसु मा त कालो उपच्चगा ॥[1]

[भिक्षु ! तू बिना काम भोगो को भोगे भिक्षु बना है। काम भोगो को भोग कर भिखारी नहीं बना है। भिक्षु ! काम भोगो का भोग करके तू भिखारी बन। यह तेरा काम भोगो को भोगन का समय न बीत जाए।]

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, भिक्षु ! तू तरुणाई में काम भोगो को न भोग कर भिक्षाचार करता है। नहि भुत्वान भिक्खसि, क्या पाँच प्रकार के काम-भोगो को भोग कर ही भिखारी नही बनना चाहिए ? तू काम भोगो को न भोग कर ही भिखारी बना है। भुत्वान भिक्खु ! भिक्खसु, भिक्षु ! अभी तरुणाई में काम भोगो को भोग। काम भोगो को भोग कर पीछे वृद्ध होने पर *भिखारी बनना। मा तं कालो उपच्चगा, यह काम भोगो के उपभोग करने की आयु यह तरुणाई यूँ ही न बिता।*

बोधिसत्व ने देव-कन्या की बात सुन अपना विचार प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

काल वोह न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति
तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मा म कालो उपच्चगा ॥

[*मै मृत्यु के समय को नहीं जानता। छिपा हुआ समय दिखाई नहीं देता।* इसलिए बिना काम भोगो का उपभोग किए ही भिक्षु बना हूँ। मेरा यह समय न बीत जाए।]

काल वोह न जानामि, 'वो' केवल निपात है। मै प्रथम आयु में मरूँगा, मध्यम-आयु में अथवा आखिरी में—अपना मरन का समय नहीं जानता हूँ।

अत्यन्त पण्डित आदमी को भी—

---

[1] देवता संयुक्त, संयुक्त निकाय।

जीवित व्याधि कालो च देहनिक्खेपन गति
पञ्चेते जीवलोकस्मि अनिमित्ता न ञायरे।

[जीव-लोक में इन पाँच बातो का पता नही लगता—(१) जीने की आयु, (२) रोग, (३) मृत्यु-समय, (४) शरीर के पतन का स्थान, (५) मरने पर क्या गति होगी ?]

छन्नो कालो न दिस्सति, इसलिए इस आयु में अथवा इस समय या हेमन्त आदि ऋतुओं में से इस ऋतु में मुझे मरना होगा, यह मुझसे भी छिपा हुआ मृत्यु-समय मुझे दिखाई नहीं देता। अच्छी प्रकार ढका होने से प्रकट नही है। तस्मा अभुत्वा भिक्खामि इसलिए काम-भोगों को न भोग भिखारी बना हूँ। मा म कालो उपच्चगा, मेरा श्रमण धर्म करने का समय बीत न जाए। इसलिए तरुणाई में ही प्रव्रजित होकर श्रमण धर्म करता हूँ।

देव-कन्या बोधिसत्त्व की बात सुन वही अन्तर्ध्यान हो गई।
शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया।
उस समय देव-कन्या यही देव-कन्या थी। मैं ही उस समय तपस्वी था।

१६८. सकुणग्घि जातक

सेमो बलसा पतमानो, यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय अपने विचार के द्योतक सकुणोवाद सूत्र[1] के बारे में कही।

---

[1] महावग्ग।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर उपदेश दिया "भिक्षुओं ! जो तुम्हारे योग्य हो उसमें विचरो। जो तुम्हारा पैतृक विषय हो उसमें।" यह सयुक्त निकाय के महावर्ग का सूत्र है।[1] इसका उपदेश करते हुए कहा— "तुम अपनी बात रहने दो। पूर्व समय में जानवर भी अपने पैतृक विषय को छोड़ अयोग्य-स्थान में विचरने से शत्रुओं के हाथ में पड़, अपनी बुद्धि तथा उपाय-कौशल से शत्रुओं के हाथ से मुक्त हुए।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व बटेर होकर पैदा हुआ। वह हल चलाने की जगह पर ढेलों में रहता था।

एक दिन अपनी गोचर-भूमि को छोड़ दूसरे की गोचर भूमि में जाने की इच्छा से वह जगल तक चला गया। उसे वहाँ घूमता देख एक बाज ने यकायक आकर पकड़ लिया। जब उसे बाज पकड़ कर ले जा रहा था, तो वह इस प्रकार रोने लगा—"हम अत्यन्त अभाग्यवान् हैं। हमारा पुण्य बहुत कम है। हम दूसरों के स्थान में चरने गए। यदि आज हम अपने पैतृक स्थान में ही चरते, तो यह बाज मेरे साथ युद्ध करने में समर्थ न होता"।

"लापक ! तेरा स्वकीय पैतृक स्थान कौन सा है ?"

"यही जहाँ हल चलाने की जगह पर ढेले हैं।"

बाज ने अपने बल को ढीला कर उसे छोड़ दिया और कहा—'हे बटेर तू जा। मैं तुझे वहाँ भी जाकर पकड़ लूँगा।'

बटेर ने वहाँ जा एक बड़े से ढेले पर चढ़ बाज को ललकारा—'बाज ! अब तू आ।'

बाज ने अपना बल सँभाल, दो पखों को उठा बटेर को एकदम घेर लिया।

---

[1] सतिपट्ठान सयुत्त, अम्बपालि वर्ग।

जब उस बटेर ने समझा कि बाज मेरे बहुत समीप आगया, तो वह पलट कर उस ढेले के अन्दर चला गया।

बाज अपने जोर को न रोक सका। उसकी छाती ढेले से टकराई। इस प्रकार उसका कलेजा चूर चूर हो गया। आँखें निकल आई। वह मर गया।

शास्ता ने यह अतीत-कथा सुना कहा—'भिक्षुओ! इस प्रकार जानवर भी अयोग्य स्थान पर चरने से शत्रु के हाथ मे पड जाते है। योग्य स्थान में, अपने पैतृक स्थान में चरते हुए शत्रुओ को जीत लेते हैं। इसलिए तुम भी अयोग्य स्थान में, जो तुम्हारा विषय नही है, मत विचरो। अयोग्य-स्थान में, जो अपना विषय नही है विचरने वाले पर भिक्षुओ! मार आक्रमण करता है। वह मार का निशाना बनता है। भिक्षुओ! भिक्षुओ के लिए अयोग्य-स्थान, जो उनका विषय नही है, क्या है? जो यह पाँच प्रकार के कामोपभोग है। कौन से पाँच? आँख से देखे जाने वाले (प्रिय) रूप, कान से सुने जाने वाले शब्द, नाक से सूँघी जाने वाली सुगन्धियाँ, जिह्वा से मजा लिए जानेवाले रस और शरीर से छुए जाने वाले स्पर्श—भिक्षुओ, यह भिक्षुओ के लिए अयोग्य-स्थान हैं। यह उनका विषय नही है।"

इतना कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में प्रथम गाथा कही—

सेनो बलसा पतमानो लापं गोचरठायिनं,[1]
सहसा अज्झप्पत्तो मरणं तेनुपागमि ॥

[बाज अपने बल को न रोक करके अपने योग्य-स्थान पर विचरने वाले बटेर पर झपटा। इसीसे वह मर गया।]

बलसा पतमानो, बटेर को पकड़ने की इच्छा से जोर से गिरने वाला, गोचरठायिनं, अपने विषय (=प्रदेश) से निकल जंगल तक चरने के लिए स्थित। अज्झप्पत्तो, पहुँचा। मरणं तेनुपागमि, इस कारण से मर गया।

---

[1] अगोचरठायिनं के स्थान पर गोचरठायिनं श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

उसके मरने पर बटेर ने निकल कर शत्रु की पीठ देख कर सन्तुष्ट हो उसकी छाती पर खड़े हो उल्लास पूर्वक दूसरी गाथा कही—

> सोह नयेन सम्पन्नो पेत्तिके गोचरे रतो
> अपेतसत्तु मोदामि सम्पस्सं अत्यमत्तनो ॥

[मैं उपाय से अपने पैतृक-प्रदेश में चरता हुआ, अपनी उन्नति देखता हुआ प्रसन्न हूँ, क्योकि मेरा शत्रु नही रहा है।]

नयेन, उपाय से, अत्यमत्तनो, अपनी आरोग्य नामक उन्नति।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओ ने श्रोतापत्ति आदि फल प्राप्त किए।

उस समय बाज देवदत्त था। बटेर तो मैं ही था।

१६६. अरक जातक

"यो वे मेत्तेन चित्तेन " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय मेत्तसुत्त[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता ने भिक्षुओ को सम्बोधन कर कहा—"भिक्षुओ, मैत्री-भावना जो कि चित्त की विमुक्ति (का साधन) है का सेवन करने से, की

---

[1] अगुत्तर निकाय, एकादसक निपात।

भावना करने से, को बढाने से, को जारी रखने से, का अभ्यास करने से, का अनुष्ठान करने से, का अच्छी तरह आरम्भ करने से ग्यारह लाभो की आशा करनी चाहिए। कौन से ग्यारह ? सुख पूर्वक सोना है, सुख से जागता है, बुरा स्वप्न नही देखता, मनुष्यो का प्रिय होता है, अ-मनुष्यो का प्रिय होता है, देवता रक्षा करते हैं, इस पर अग्नि, विष, वा शस्त्र का आक्रमण नही होता, चित्त जल्दी शान्त हो जाता है, मुख-वर्ण सुन्दर होता है, होश रखकर शरीर छोडता है तथा अधिक कुछ (निर्वाण-मार्ग) न प्राप्त कर सकने पर ब्रह्मलोकगामी अवश्य होता है। भिक्षुओ मैत्री भावना जो कि चित्त की विमुक्ति (का साधन) है, का सेवन करने से.. .इन ग्यारह लाभो की आशा करनी चाहिए।" इन ग्यारह लाभो वाली मैत्री-भावना की प्रशसा कर आगे कहा—"*भिक्षुओ, भिक्षु को सभी प्राणियो के प्रति खास तौर* पर, साधारण तौर पर मैत्री-भावना करनी चाहिए। हितैषी का भी हित-चिन्तक होना चाहिए, जो हितैषी न हो उसका भी हित-चिन्तक होना चाहिए, जो मध्यस्थ-वृत्ति हो उसका भी हित-चिन्तक होना चाहिए। इस प्रकार सभी प्राणियो के प्रति खास तौर पर, तथा साधारण तौर पर मैत्री-भावना करनी चाहिए। करुणा-भावना की भावना करनी चाहिए। मुदिता-भावना की भावना करनी चाहिए। उपेक्षा-भावना की भावना करनी चाहिए। इन चारो ब्रह्म-विहारो का अभ्यास करना ही चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से *यदि मार्ग तथा फल की प्राप्ति न भी हो तो भी ब्रह्मलोकगामी होता है।* पुराने समय में भी पण्डित लोग सात वर्ष तक मैत्री-भावना करके सात सवत-विवर्त कल्प तक ब्रह्मलोक में ही रहे।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में एक कल्प में बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बडे होने पर काम-भोगो को छोड ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो चारो ब्रह्म-विहारो को प्राप्त कर अरक नाम के उपदेशक हुए। वह हिमालय प्रदेश में रहते थे। उनके बहुत अनुयाई थे। वे ऋषि-गणो को उपदेश देते हुए कहते —"*प्रव्रजित को मैत्री-भावना का अभ्यास करना* चाहिए। करुणा-भावना,

मुदिता-भावना तथा उपेक्षा-भावना का अभ्यास करना चाहिए। मैत्री-पूर्ण चित्त *अर्पणा-समाधि तथा ब्रह्मलोक-परायणता* तक को प्राप्त कराता है।" इस प्रकार मैत्री-भावना की प्रशसा करते हुए उन्होने यह गाथा कही—

> **यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्ब लोकानुकम्पति**
> **उद्धं अधो च तिरियं च अप्पमाणेन सब्बसो**
> **अप्पमाणं हितं चित्तं परिपुण्णं सुभावितं**
> **यं पमाण कतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति**

[जो अप्रमाण मैत्री चित्त से ऊपर-नीचे तथा तिर्यक् दिशा में सारे लोको पर अनुकम्पा करता है, उसके प्रमाण रहित, परिपूर्ण अच्छी तरह से भावना किए गए मैत्री-चित्त के (फल) के आगे जो सीमित कर्म है उसका फल नहीं ठहरता।]

यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्ब लोकानुकम्पति, क्षत्रिय आदि में अथवा श्रमण-ब्राह्मण आदि में जो कोई अर्पणा-प्राप्त चित्त से सारे प्राणियो पर अनुकम्पा करता है, उद्धं पृथिवी से *नेवसञ्ञानासञ्ञायतन ब्रह्मलोक तक अधो* पृथ्वी से नीचे उस्सद नाम के महानरक तक, तिरियं, मनुष्य लोक में जितने चक्रवाल है उन सब में जितने प्राणी है वह सभी वैर-रहित हो, क्रोध-रहित हो, दु ख-रहित हो; इस प्रकार भावना किए गए मैत्री-चित्त से। **अप्पमाणेन** अप्रमाण प्राणियो के कारण असीम आलम्बन होने से अप्रमाण। **सब्बसो** सब तरह से ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् इस प्रकार सब सुगति तथा दुर्गति में। **अप्पमाणं हितं चित्तं** सभी प्राणियों के प्रति मैत्री की असीम भावना। **परिपुण्णं** सम्पूर्ण **सुभावितं** अच्छी प्रकार उन्नत, इसका मतलब है अर्पणा-चित्त। **यं पमाण कतं कम्मं** जो यह अप्पमाण-अप्पमाणारम्मण, परित्तं-अप्पमाणारम्मण तथा अप्पमाणं-परित्तारम्मणं तीन प्रकार के आरम्मण पर पूर्ण अधिकार करते हुए उसे न बढा कर जो सीमित कामावचर कर्म किया जाता है। **न तं तत्रावसिस्सति** वह सीमित (परित्त) कर्म जो अप्रमाण मैत्री-चित्त रूपी रूपावचर कर्म है, उसके सामने नहीं ठहरता। जैसे बाढ़ के आने पर सीमित पानी उससे पृथक नही रह सकता है, नही ठहरता है; वह बाढ़ में ही मिल जाता है। उसी प्रकार

वह सीमित कर्म उस महान् कर्म के अन्दर, उस महान् कर्म में मिलकर, फल देने में असमर्थ हो रहता है, अपना फल नहीं दे सकता।

वह महान् कर्म ही उसे ढक देता है, महान् कर्म ही फल देने वाला रहता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व अपने शिष्यों को मैत्री-भावना का फल कह ध्यान में अवस्थित रह ब्रह्मलोक में पैदा हो सात संवर्त-विवर्त कल्प तक फिर इस लोक में नहीं आए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय ऋषि-गण बुद्ध-परिषद थी। अरक नाम का उपदेशक तो मैं ही था।

१७०. ककण्टक जातक

"नायं पुरे ओनमति..." यह ककण्टक जातक महाउम्मग जातक[1] में आएगी।

---

[1] महाउम्मग जातक (५४६)

दूसरा परिच्छेद

३. कल्याणधम्म वर्ग

१७१. कल्याणधम्म जातक

"कल्याण धम्मो   " यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बहरी सास के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक कुटुम्बिक रहता था। वह श्रद्धावान् था। वह प्रसन्न-चित्त था। वह त्रिशरण ग्रहण किए था और पचशील भी।

एक दिन वह घी आदि बहुत सी औषधियाँ,[1] पुष्प, सुगन्धियाँ तथा वस्त्र ले शास्ता से धर्म सुनने की इच्छा से जेतवन गया।

उसके वहाँ गए रहने पर सास खाद्य-भोजन ले लडकी को देखने की इच्छा से लडकी के घर आई। वह थोडी बहरी थी। जब लडकी के साथ खाना खा चुकी, तो भोजनोपरान्त आराम करते हुए उसने लडकी से पूछा—'अम्म ! क्या तेरा पति तुझसे प्रसन्न है ? क्या वह विवाद न करता हुआ, प्रेमपूर्वक रहता है ?"

'अम्म ! क्या कहना ! जैसा तुम्हारा जँवाई है, वैसा शीलवान् तथा सदाचारी प्रव्रजित भी मिलना दुर्लभ है।"

उस उपासिका ने लडकी की सारी बात पर भली प्रकार ध्यान न दे

---

[1] घी, मक्खन आदि औषध रूप से भिक्षु अपराह्न में भी ग्रहण कर सकता है।

केवल 'प्रव्रजित' शब्द को सुन चिल्लाना शुरू किया—'अम्म ! तेरा स्वामी प्रव्रजित क्यों हो गया ?'

उसकी बात सुन सारे घर वाले रोने लगे—'हमारा घर का मालिक प्रव्रजित हो गया।'

उनका रोना सुन दरवाजे से गुजरने वाले लोग पूछने लगे कि रो क्यों रहे हैं ? "इस घर का मालिक प्रव्रजित हो गया है।'

यह कुटुम्बिक भी बुद्ध का उपदेश सुन, विहार से निकल नगर में प्रविष्ट हुआ। एक आदमी ने उसे रास्ते में ही देख कर कहा—'सौम्य ! तेरे घर पर तेरे लड़के, स्त्री आदि सम्बन्धी रो रहे हैं कि तू प्रव्रजित हो गया है।'

उसने सोचा—मैं प्रव्रजित नहीं हूँ, तो भी मुझे लोग प्रव्रजित समझ रहे हैं। मेरी प्रशंसा होने लगी है। इसे गँवाना नहीं चाहिए। आज ही मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिए।

वह वहीं से वापिस लौट कर शास्ता के पास गया। शास्ता ने पूछा—"उपासक ! अभी तू बुद्ध की सेवा में आकर लौटा, और तुरन्त फिर आया है ?"

उसने यह बात कह निवेदन किया—"भन्ते ! मेरी प्रशंसा होने लगी है। उस शुभ-नाम को गँवाना नहीं चाहिए। इसलिए मैं प्रव्रजित होने की इच्छा से आया हूँ।"

प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त कर वह अच्छी तरह से जीवन व्यतीत करता हुआ थोड़ी ही देर में अर्हत् हुआ।

यह बात भिक्षुसंघ में प्रकट हुई। एक दिन धर्म-सभा में भिक्षुओं ने बात-चीत चलाई—"आयुष्मानो ! अमुक कुटुम्बिक ने सोचा कि उसकी जो प्रशंसा होने लगी है, उस शुभ-नाम का लोप नहीं होना चाहिए। वह प्रव्रजित होकर अर्हत् हो गया।"

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर, शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, पुराने समय में पण्डित जन भी यही सोच कर कि जो प्रशंसा होने लगे उस शुभ-नाम का लोप नहीं होने देना चाहिए प्रव्रजित ही हुए।'

इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व एक सेठ के घर में पैदा हुए। बड़े होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का पद मिला। वह एक दिन घर से निकल राजा की सेवा में पहुँचा।

उसकी सास अपनी लड़की को देखने की इच्छा से उसके घर आई। वह थोड़ी बहरी थी। आगे की सब कथा 'वर्तमान-कथा' सदृश ही है।

उसे राजा की सेवा करके अपने घर लौटते समय एक आदमी ने देख कर कहा—'तुम्हारे घर पर सब लोग रो पीट रहे हैं कि तुम प्रव्रजित हो गए।'

बोधिसत्त्व ने सोचा कि जो प्रशंसा होने लगी है, उस शुभ-नाम को नष्ट नहीं होने देना चाहिए। वह वहीं से लौट कर राजा के पास पहुँचे। राजा ने पूछा—

"महासेठ! अभी जाकर अभी फिर क्या लौट आए?"

"देव! घर के लोग मुझ अप्रव्रजित को ही प्रव्रजित हुआ समझ कर रोते पीटते हैं। यह जो मुझे शुभ-नाम मिला है, इसको लुप्त होने देना ठीक नहीं। मैं प्रव्रजित होऊँगा। मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दें।"

सेठ ने इस भाव को प्रकट करने वाली दो गाथाएँ कहीं—

> कल्याणधम्मोति यदा जनिन्द
> लोके समञ्ञं अनुपापुणाति,
> तस्मा न हीयेथ नरो सपञ्ञो
> हिरियापि सन्तो धुरमादियन्ति ॥
>
> सायं समञ्ञा इध मज्ज पत्ता
> कल्याणधम्मोति जनिन्द लोके,
> ताहं समेक्ख इध पब्बजिस्सं
> नहि मत्थि छन्दो इध कामभोगे ॥

[हे राजन्! जब लोक में किसी की कीर्ति होती है, उसे शुभ-नाम मिलता है, तो बुद्धिमान् आदमी को उसे छोड़ना नहीं चाहिए। श्रेष्ठ पुरुष लज्जा से भी (प्रव्रज्या) धुर को प्राप्त करते हैं।

हे राजन ! आज मुझे वह कीर्ति उत्पन्न हुई है, शुभ-नाम मिला है। उसे देखकर मैं प्रव्रजित होऊँगा। मुझे काम-भोगों की इच्छा नहीं रही है।]

कल्याण धम्मो, सुन्दर धर्म, **समञ्ञ अनुपापुणाति** जब शीलवान, सदाचारी, या प्रव्रजित इस प्रकार की कीर्ति तथा लोक-व्यवहार आरम्भ हो जाता है। **तस्मा न हीयेय,** उस श्रमणत्व (की रयाति) से न हटे। **हिरियापि सन्तो धुरमादियन्ति,** महाराज ! सत्पुरुष अपने अन्दर से उत्पन्न लज्जा से, बाह्य-निन्दा से पैदा हुए भय से भी इस प्रव्रज्या को ग्रहण करते हैं।

इध मज्ज, यहाँ मेरे द्वारा आज **ताह समेक्ख** मैं उस श्रमणत्व को गुण-रूप से देखता हुआ **नहि मत्थि छन्दो,** मुझ में इच्छा नहीं है, **इध कामभोगे,** इस दुनिया में वस्तु-कामना वा कामेच्छा।

बोधिसत्त्व ने यह कह राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा ली। फिर हिमालय-प्रदेश में जा ऋषि-प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्म-लोक गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय राजा आनन्द था। बाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१७२. दद्दर जातक

को नु सद्देन महता, यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय श्रेष्ठ बहुश्रुत भिक्षुगण के बीच में ऐसे पाठ करते थे जैसे मनोशिला के नीचे तरुण सिंह गर्ज रहा हो, अथवा आकाश से गङ्गा उतारी जा रही हो।

कोकालिक भिक्षु अपने तुच्छ-भाव का विचार न कर जिस समय भिक्षु पाठ करते थे, स्वयं भी पाठ करने की इच्छा से भिक्षुओं के बीच में जाकर संघ का नाम न ले कहता कि भिक्षु मुझे पाठ करने नहीं देते, यदि पाठ करने दें तो मैं भी पाठ करूँ। इस प्रकार वह जहाँ तहाँ कहता हुआ घूमता था।

उसकी यह बात भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई। भिक्षुओं ने सोचा इसकी परीक्षा करें। इस विचार से उन्होंने कहा—"आयुष्मान्! कोकालिक! आज संघ के सम्मुख पाठ कर।" उसने अपना बल न पहचान कर स्वीकार कर लिया कि मैं आज संघ के सम्मुख पाठ करूँगा।

तब उसने अपने को अनुकूल पड़ने वाला यवागु पिया। भोजन किया। अनुकूल दाल ही ली।

सूर्यास्त होने पर धर्म सुनने के समय सूचना देने पर भिक्षुसंघ एकत्र हुआ। वह कुरण्ड-पुष्प सदृश काषाय-वस्त्र पहन और कनेर पुष्प सदृश लाल चीवर ओढ संघ के बीच जा, स्थविरों को प्रणाम कर, अलंकृत रत्न-मण्डप के बीच बिछे हुए श्रेष्ठ आसन पर चढ चित्रित पंखा हाथ में ले पाठ करने के लिए बैठा। उसी समय उसके शरीर से पसीना बहने लगा। वह लज्जित हो गया। वह पूर्व-गाथा[1] का प्रथम पाद भर कह सका। उसके आगे उसे नहीं सूझा। वह काँपता हुआ आसन से उतर आया। लज्जित हो संघ के बीच से गुजर वह अपने परिवेण में चला गया।

किसी दूसरे ही बहुश्रुत भिक्षु ने पाठ किया। उस समय से भिक्षु जान गए कि वह अज्ञानी है।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चलाई—"आयुष्मानो! पहले

---

[1] धर्मोपदेश देने के लिए जिस गाथा का आधार लिया जाता है।

कोकालिक के ज्ञान की तुच्छता अज्ञात थी। अब इसने अपने ही बोलकर उसे प्रकट कर दिया।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक ने बोलकर अपने आपको प्रकट किया है, पहले भी बोलकर प्रकट किया है।"

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय-प्रदेश मे सिंह के रूप में पैदा हुए। वह बहुत से सिंहो के राजा बने।

अनेक सिंहो के साथ वह रजत-गुफा मे रहते थे। उसके पास ही एक गुफा में एक सियार रहता था। एक दिन वर्षा के हो चुकने पर सब सिंह सिंहराज के गुफा-द्वार पर इकट्ठे हो सिंह-नाद करते हुए सिंह-क्रीडा करने लगे।

उनके इस प्रकार दहाड़ते हुए क्रीडा करने के समय वह सियार भी चिल्लाया। सिंहो ने जब उसकी आवाज सुनी तो वह यह सोचकर लज्जा के मारे चुप हो गए कि यह सियार भी हमारे साथ आवाज लगा रहा है। उनके चुप हो जाने पर बोधिसत्त्व के पुत्र सिंह-बच्चे ने पूछा—"तात! यह सिंह दहाड़ दहाड़ कर सिंह-क्रीडा करते हुए किसी एक की आवाज सुनकर लज्जा से चुप हो गए। यह कौन है जो अपने शब्द से अपने को प्रकट कर रहा है?" इस प्रकार पिता से पूछते हुए सिंह-बच्चे ने पहली गाथा कही—

को नु सद्देन महता अभिनादेति दद्दरं
किं सीहा न पटिनंदन्ति को नामेसो मिगाधिभु॥

[हे मृगराज! यह कौन है जो बड़े शब्द मे दद्दर पर्वत को गुंजा रहा है? यह कौन है जिसके कारण सिंह नही बोलते है?]

अभिनादेति दद्दरं, दद्दर पर्वत को गुंजा रहा है। **मिगाधिभु** पिता को सम्बोधन करता है। यहाँ यह अर्थ है। मिगाधिभु! मृग-ज्येष्ट! सिंह-राज! मै तुझे पूछता हूँ कि यह कौन है?

उसकी बात सुन पिता ने दूसरी गाथा कही—

अधमो मिगजातानं सिगालो तात वस्सति
जातिमस्स जिगुच्छन्ता तुण्ही सीहा समच्छरे ॥

[तात ! पशुओं में जो सबसे नीच सियार है वही चिल्लाता है। सिंह उसकी जाति से घृणा करने के कारण चुप हो गए हैं।]

समच्छरे, सं केवल उपसर्ग है। अच्छा समझते हैं अर्थ है। **तुण्ही,** बैठते हैं, चुप होकर बैठते हैं, यही अर्थ है। पुस्तकों में **समच्छरे** लिखते हैं।

शास्ता बोले—"भिक्षुओ ! कोकालिक ने केवल अभी अपनी वाणी से अपने को प्रकट नहीं किया, पहले भी किया ही है।"

यह धर्म-देशना ला शास्ता ने जातक का मेल बैठाया।

उस समय सियार कोकालिक था। सिंह-बच्चा राहुल। सिंह-राज मैं ही था।

१७३. मक्कट जातक

"तात ! माणवको एसो···" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा प्रकीर्णक परिच्छेद की उद्दालक जातक[1] में आएगी। उस

---

[1] उद्दालक जातक (४८७)

समय शास्ता ने 'भिक्षुओ, यह भिक्षु केवल अभी ढोंगी नहीं है, इसने पहले भी जब यह बन्दर था अग्नि के लिए ढोंग किया है', कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व किसी काशी-ग्राम मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जा विद्या सीख घर बसाया।

उसकी ब्राह्मणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जब लडका दौडने भागने लग गया, तो वह मर गई।

बोधिसत्व ने उसका शरीर-कृत्य करके सोचा, अब मुझे घर में रहने से क्या लाभ ? मैं पुत्र को लेकर प्रव्रजित हो जाऊँ। रोते हुए रिश्तेदारो तथा मित्र-समूह को छोड वह पुत्र को ले हिमालय में प्रविष्ट हुआ। वहाँ ऋषियो के ढग से प्रव्रजित हो फल-मूल खाता हुआ रहने लगा।

एक दिन वर्षा ऋतु में जब वर्षा हुई, तो वह सूखी लकडियाँ जलाकर आग तापते हुए एक तख्ते पर लेटा था। इसका पुत्र तपस्वी-कुमार भी इसके पैरो को दबाता हुआ बैठा था। एक जगली बन्दर ने शीत से पीडित हो उस पर्ण-कुटी में आग देख कर सोचा—"यदि मैं यहाँ प्रवेश करूँगा, तो 'बन्दर है, बन्दर है' कह मुझे पीट कर निकाल देंगे। मुझे आग तापना न मिलेगा। एक उपाय है। मैं तपस्वी-वेश बना ढोंग करके प्रवेश करूँ।"

उसने एक मृत तपस्वी के वल्कल वस्त्र पहन लिए। फिर खारी ले, पर्ण-कुटी के द्वार पर एक ताड-वृक्ष के नीचे सिकुड कर बैठा।

तपस्वी-कुमार ने उसे देख, बन्दर न समझ सोचा—शीत से पीडित एक बूढा तपस्वी आग तापने आया होगा। तपस्वी को कह कर इसे पर्ण-कुटी मे ला आग तपवाऊँ।

उसने पिता को सम्बोधन कर यह पहली गाथा कही—

> तात! माणवको एसो तालमूल अपस्सितो,
> अगारकञ्चिदं अत्थि हन्द देमस्स गारक॥

[तात ! यह एक माणवक ताड-वृक्ष को आश्रय करके बैठा है। यह घर है। हन्त ! हम इसे गृह दें।]

माणवक्वो एसो, प्राणी वाची शब्द है। तात ! यह एक माणवक प्राणी है। 'एक तपस्वी है' यही प्रकट करता है। *तालमूलं अपस्सितो,* ताड के वृक्ष के आश्रय है। *अगारकञ्चिद अत्थि,* यह हमारा प्रव्रजितों का घर है। पर्ण-कुटी को लेकर कहा है। *हन्द,* निश्चय के अर्थ में निपात है। **देमस्सगारक,** इसे एक कोने में रहने के लिए घर दें।

बोधिसत्त्व ने पुत्र की बात सुन उठकर पर्ण-कुटी के दरवाजे पर खड़े हो देखकर पहचान लिया कि वह बन्दर है। उन्होंने कहा—'तात ! मनुष्यों का मुँह ऐसा नहीं होता। यह बन्दर है। इसे यहाँ नहीं बुलाना चाहिए।' यह कहते हुए दूसरी गाथा कही—

मा खो तं तात ! पक्कोसि दूसेय्य नो अगारकं
नेतादिसं मुखं होति ब्राह्मणस्स सुसीलिनो ॥

[तात ! इसे मत बुला। यह हमारे घर को खराब कर देगा। सदाचारी ब्राह्मण का ऐसा मुँह नहीं होता।]

दूसेय्य नो अगारकं, यह यहाँ प्रवेश पाकर इस कठिनाई से बनाई हुई पर्ण-कुटी को या तो आग से जलाकर अथवा मल त्याग कर खराब कर दे सकता है। *नेतादिसं* शीलवान् ब्राह्मण का ऐसा मुँह नहीं होता।

'यह बन्दर है' कह बोधिसत्त्व ने एक जलती हुई लकड़ी फेंकी कि यहाँ क्यों बैठा है ? इस प्रकार उसे भगा दिया। बन्दर वल्कल वस्त्र छोड़ वृक्ष पर चढ़ वन में चला गया। बोधिसत्त्व चारों ब्रह्म विहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर यह ढोंगी भिक्षु था। तपस्वी-कुमार राहुल। तपस्वी तो मैं ही था।

---

१७४. दुब्भियमक्कट जातक

"अदम्ह ते वारि पहूतरूपं..." यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षु देवदत्त के अकृतज्ञता तथा मित्र-द्रोही भाव की चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ तथा मित्र-द्रोही है। पहले भी वह ऐसा ही था।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व किसी काशीग्राम में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर घर बसाया। उस समय काशी राष्ट्र की एक बड़ी चलने वाली सड़क पर एक गहरा कुआँ था। जानवरों की उस तक पहुँच नहीं हो सकती थी। इसलिए रास्ता चलने वाले पुण्यार्थी मनुष्य, लम्बी रस्सी बँधे बर्तन से पानी निकाल एक द्रोणी में भर जानवरों को पानी पिलाते थे।

उसके चारों तरफ भारी जगल था। उसमें बहुत से बन्दर रहते थे।

दो तीन दिन उस मार्ग से आदमियों का आना जाना न हुआ। जानवरों को पानी न मिला। एक प्यासा बन्दर पानी खोजता हुआ कुएँ के आस पास घूमता था। बोधिसत्त्व किसी काम से उस रास्ते से आए। जब वह वहाँ जा, पानी निकाल, पी, हाथ पाँव धो कर खड़े थे, उन्होंने उस बन्दर को देखा। यह जानकर कि वह प्यासा है उन्होंने पानी निकाल द्रोणी में डाल कर उसे दिया। पानी देकर वह विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे लेटे।

बन्दर ने पानी पी, पास बैठ नकल बनाते हुए, बोधिसत्त्व को डराया। बोधिसत्त्व ने उसकी वह करतूत देख 'अरे दुष्ट बन्दर ! मैंने तुझे प्यास से कष्ट पाते हुए को पानी दिया। तू मुझे चिढाता है ? अहो ! पापी पर किया गया उपकार निरर्थक होता है" कहते हुए पहली गाथा कही—

> अदम्ह ते वारि बहूतरूपं
> घम्माभितत्तस्स पिपासितस्स
> सो दानि पीत्वान किंकि करोसि,
> असङ्गमो पापजनेन सेय्यो ॥

[धूप से तप्त तुझ प्यासे को हमने बहुत सा पानी दिया। अब तू पानी पी कर चिढाने के लिए 'कि किं' आवाज करता है। पापी से दूर रहना ही अच्छा है।]

सो दानि पीत्वान किंकि करोसि, सो अब तू मेरा दिया हुआ पानी पीकर (मुझे) चिढ़ाता हुआ 'किंकि' आवाज करता है। *असङ्गमो पापजनेन सेय्यो,* पापी जन के साथ मिलना अच्छा नहीं। दूर रहना ही अच्छा है।

उसे सुन वह मित्र-द्रोही बन्दर बोला—क्या तू समझता है कि यह इतने से ही समाप्त हो गया ? अब तेरे सिर पर पाखाना करके जाऊँगा। यह कहते हुए उसने दूसरी गाथा कही।

> को ते सुतो वा दिट्ठो वा सीलवा नाम मक्कटो
> इदानि खो तं ऊहच्च एसा अस्माकं धम्मता ॥

[तूने कौन सा बन्दर सदाचारी है, सुना या देखा ? अभी मैं तुझे मैला करके (जाऊँगा) यही हमारा स्वभाव है।]

अभिप्रायार्थ यह है—हे ब्राह्मण मक्कटो बन्दर, सदाचारी सीलवा नाम है यह तूने कहीं सुतो या दिट्ठो था ? इदानि खो मैं तं ऊहच्च तेरे सिर पर

पाखाना करके चला जाऊँगा। अस्माकं हि बन्दरों का एसा धम्मता, यह जातीय स्वभाव है कि हमें उपकार करने वाले के सिर पर मल त्यागना चाहिए।

इसे सुन बोधिसत्व उठकर चलने लगे। बन्दर उसी क्षण उछल, शाखा पर बैठ, लकड़ी छोड़ने की तरह उसके सिर पर पाखाना गिरा, चिल्लाता हुआ वन में घुस गया। बोधिसत्व नहा कर चले गए।

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है। पहले भी मेरे किए उपकार को नहीं जानता था।

इतना कह, यह धर्मदेशना ला शास्ता ने जातक का मेल बैठाया।

उस समय बन्दर देवदत्त था। ब्राह्मण मैं ही था।

१७५. आदिच्चुपट्ठान जातक

"सब्बेसु किर भूतेसु .." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी के बारे में कही। वर्तमान-कथा उक्त कथा ही की तरह है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी-राष्ट्र मे ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जा, विद्या सीख, ऋषियों की प्रव्रज्या के ढग पर प्रव्रजित हुए। अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, अनेक अनुयायियों के साथ उनके गण-शास्ता बन, हिमालय में रहने लगे।

वह वहाँ चिरकाल तक रह कर, निमक-खटाई खाने के लिए पर्वत से उतर प्रत्यन्त-देश में किसी ग्राम के पास एक पर्णकुटी में रहने लगे।

जिस समय ऋषि-गण भिक्षा के लिए जाते, एक लोभी बन्दर आश्रम पर आकर पर्ण-कुटी वा फूस उजाड देता, पानी के घडो मे से पानी गिरा देता। कुण्डियाँ तोड देता और अग्नि-शाला में पाखाना कर देता।

तपस्वियो ने वर्षा भर रह कर सोचा कि अब हेमन्त ऋतु आ गई है। फल फूल बहुत हो गए है। (प्रदेश) रमणीय है। वही चलकर रहें। उन्होंने प्रत्यन्त-गाँव के वासियो से विदा माँगी।

मनुष्य बोले—भन्ते! हम कल आश्रम पर भिक्षा लेकर आएँगे। उसे ग्रहण कर जाएँ।

दूसरे दिन वे बहुत सारा खाद्य-भोज्य लेकर वहाँ पहुँचे।

उसे देख बन्दर ने सोचा मैं भी ढोंग करके मनुष्यो को प्रसन्न कर अपने लिए खाद्य-भोज्य मँगवाऊँ।

वह तप करते तपस्वी की तरह हो, सदाचारी की तरह हो, तपस्वियो से कुछ ही दूर पर सूर्य्य को नमस्कार करता हुआ खडा हुआ। मनुष्यो ने उसे देख सोचा कि सदाचारियो के पास रहने वाले सदाचारी होते है और पहली गाथा कही—

सब्बेसु किर भूतेसु सन्ति सीलसमाहिता,
पस्स साखामिग जम्म आदिच्चमुपतिट्ठति ॥

[सभी प्राणियो में सदाचारी होते हैं। सूर्य्य की पूजा करते हुए नीच बन्दर को देखो।]

सन्ति सीलसमाहिता, शील से युक्त है, शीलवान तथा समाहित वा एकाग्रचित्त हैं, यह भी अर्थ है। जम्म नीच, आदिच्चमुपतिट्ठति, सूर्य्य को नमस्कार करते हुए ठहरा है।

इस प्रकार उन मनुष्यो को उसकी प्रशसा करते देख बोधिसत्व ने कहा कि तुम इस लोभी बन्दर के आचरण को न जानकर अयोग्य-जगह में ही श्रद्धावान् हुए हो, और यह दूसरी गाथा कही—

नास्स सील विजानाथ अनञ्ञाय पसंसथ
अग्गिहुत्तञ्च ऊहन्त द्वे च भिन्ना कमण्डलू ॥

[तुम इसके स्वभाव को नहीं जानते। बिना जाने ही प्रशंसा कर रहे हो। इसने अग्नि-शाला खराब कर दी और दो कमण्डल तोड़ डाले।]

अनञ्ञाय विना जाने। ऊहन्त इस दुष्ट बन्दर द्वारा मैली की गई। कमण्डलु कुण्डी, द्वे च कुण्डियाँ उसके द्वारा भिन्ना। इस प्रकार उसके दुर्गुण कहे।

मनुष्यों ने बन्दर का ढोंग जान, ढेले और लाठियाँ ले, पीट कर भगा दिया। तब ऋषिगण को भिक्षा दी। ऋषि भी हिमालय प्रदेश में ही जा ध्यानावस्थित हो ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय बन्दर यह ढोंगी था। ऋषि-गण बुद्ध-परिषद थी। गण-शास्ता तो मैं ही था।

१७६. कळायमुट्ठि जातक

"बालो वतायं दुमसाखगोचरो . . ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल नरेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक बार वर्षा ऋतु के समय कोशल नरेश के इलाके में बगावत हुई। वहाँ जो योधा थे, उन्होंने दो तीन युद्ध किए। जब वह शत्रुओं को न जीत सके तो उन्होंने राजा के पास सन्देश भेजा।

राजा वर्षा-ऋतु में असमय में ही निकल पड़ा। जेतवन के समीप पड़ाव डलवाकर उसने सोचा—मैं असमय में निकल पड़ा हूँ। कन्दराएँ और

दरारें पानी से भरी हैं। मार्ग दुर्गम है। मैं शास्ता के पास जाता हूँ। वे मुझे पूछेंगे, 'महाराज ! कहाँ जाते हो ?' मैं उन्हें यह बात कहूँगा। शास्ता मुझे केवल पारलौकिक उपदेश ही नहीं देते हैं। वह मुझे इस लोक में भी लाभ की बात बताते हैं। इसलिए यदि जाने से मेरी हानि होती होगी तो वह कह देंगे, 'महाराज ! यह असमय है।' यदि लाभ होगा, तो वह चुप रहेंगे।

वह जेतवन जा शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा।

शास्ता ने पूछा—महाराज ! दिन चढ़े तुम कैसे आए ?

भन्ते ! मैं इलाके को शान्त करने के लिए निकला हूँ। तुम्हें प्रणाम करके जाने की इच्छा से आया हूँ।

शास्ता ने कहा—'महाराज ! पूर्व समय में भी सेना के तैयार होने पर, पण्डितों का कहना मान राजा लोग असमय में सेना को चढ़ा कर नहीं ले गए।' *फिर उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।*

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थ-धर्मानुशासक सर्वार्थ-अमात्य थे। राजा के इलाके के बगावत करने पर प्रत्यन्त के योधाओं ने सन्देशा भेजा।

राजा वर्षा ऋतु में निकला। उसका पड़ाव उद्यान में लगा। बोधिसत्व राजा के पास खड़े थे। उस समय घोड़ों के लिए मटर भिगो, ला कर द्रोणियों में डाल रहे थे। उद्यान के बन्दरों में से एक बन्दर वृक्ष से उतरा। उसने वहाँ से मटर लिए, मुँह भरा, हाथ भी भरे और कूद कर वृक्ष पर चढ़ खाना शुरू किया।

खाते समय उसके हाथ से एक मटर भूमि पर गिर पड़ा। वह हाथ में और मुँह में जितने मटर थे उन्हें छोड़ वृक्ष से उतर उस मटर को ढूँढने लगा। जब उसे वह मटर नहीं दिखाई दिया तो वह फिर वृक्ष पर चढ़ा और वहाँ जुए में हजार हार गए की तरह चिन्ता करता हुआ रोनी शक्ल बना वृक्ष की शाखा पर बैठा।

राजा ने बन्दर की करतूत देख बोधिसत्व को सम्बोधन कर पूछा— 'मित्र ! बन्दर ने यह क्या किया ?' बोधिसत्व ने कहा—'महाराज !

बहुत की ओर ध्यान न दे थोड़े की ओर ध्यान देने वाले दुर्बुद्धि मूर्ख जन ऐसा करते ही हैं।' इतना कह, पहली गाथा कही—

> बालो वतायं दुमसाखगोचरो
> पञ्ञा जनिन्द ! नयिमस्स विज्जति,
> कळायमुट्ठिं अवकिरिय केवलं
> एकं कळायं पतितं गवेसती ॥

[राजन ! यह वृक्षों की शाखाओं पर घूमने वाला बन्दर मूर्ख है। इसे प्रज्ञा नहीं है। यह मटर की सारी मुट्ठी को बखेर कर गिरे हुए एक मटर को खोजता है।]

दुमसाखगोचरो बन्दर, वह वृक्षों की शाखा पर रहता है, इसके रहने की जगह इसके घूमने की जगह है, इसलिए वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला कहलाया। जनिन्द, राजा को सम्बोधन करना है, परम ऐश्वर्यशाली होने से, राजा जनता के इन्द्र हैं; इसीलिए जनिन्द। कळायमुट्ठि मटर की मुट्ठि, घाले मास की मुट्ठि भी कहते हैं। अवकिरिय बखेर कर केवलं सब गवेसति भूमि पर गिरे एक ही मटर को खोजता है।

ऐसा कहकर बोधिसत्त्व ने फिर राजा को सम्बोधन कर दूसरी गाथा कही—

> एवमेव मयं राज ! ये चञ्ञे अतिलोभिनो
> अप्पेन बहुजिय्याम कळायेनेव वानरो ॥

[इसी प्रकार हे राजन ! हम और दूसरे अत्यन्त लोभी लोग थोड़े के लिए बहुत की हानि कर देते हैं; जैसे बन्दर ने एक मटर के लिए।]

संक्षिप्तार्थ इस प्रकार है—महाराज ! एवमेव मयं और अञ्ञे च सभी लोभी जन अप्पेन बहुं जिय्याम हम ही अब इस वर्षा काल में, इस अयोग्य समय में रास्ते पर चलकर थोड़े से लाभ के लिए बहुत सी हानि करेंगे। कळायेनेव वानरो जैसे इस बन्दर ने एक मटर को ढूंढते हुए, उस एक मटर

के कारण सब मटर गँवाए, उसी प्रकार हम भी असमय में जब कन्दराएँ और दरारें पानी से भरी हैं, चलने पर थोड़े से लाभ के लिए बहुत से हाथी घोड़ों तथा सेना को गँवाएंगे। इसलिए असमय में आना उचित नहीं। यूं राजा को उपदेश दिया।

राजा उसकी बात सुन वहीं से लौट कर वाराणसी नगर में वापिस चला गया। चोरों ने सुना कि राजा चोरों को दबाने के लिए नगर से निकल पड़ा हुँ, वे इलाके से भाग गए। वर्तमान समय में भी चोरों ने जब यह सुना कि कोशल राजा निकल पड़ा है, वह भाग गए।

राजा ने शास्ता का धर्मोपदेश सुना। फिर आसन से उठ, प्रणाम और प्रदक्षिणा कर श्रावस्ती को चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१७७. तिन्दुक जातक

"धनुहत्थकलापेहि. " यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

महाबोधि जातक[1] तथा उम्मग्ग जातक[2] (में आए वर्णन) की तरह शास्ता ने अपनी प्रज्ञा की प्रशंसा सुन कर कहा—"भिक्षुओ! तथागत केवल

---

[1] महाबोधी जातक (५२८) [2] उम्मग्ग जातक (५४६)

अभी प्रज्ञावान् नहीं हैं, पहले भी प्रज्ञावान् तथा उपायकुशल रहे हैं।" इतना वह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक वानर के रूप में पैदा हो अस्सी हजार बन्दरों की मण्डली के साथ हिमालय में रहने लगे।

वहीं पास ही एक प्रत्यन्त-गाँव था, जो कभी बसता था, कभी उजड़ जाता था। उस गाँव के बीच में शाखा-पत्ता तथा मधुर फलों से युक्त एक तिन्दुक-वृक्ष था। जब गाँव बसा न होता, तो वानर आकर उस वृक्ष के फल खाते।

अगली बार फलों का मौसम आने पर वह गाँव बसा हुआ था। उसके चारों ओर बाँसों का घेरा था और एक फाटक था। उस वृक्ष की शाखाएँ भी फलों के भार से झुकी हुई थीं।

वानर सोचने लगे—हम पहले अमुक गाँव में तिन्दुक फल खाते थे। इस बार वह वृक्ष फला है या नहीं ? उस गाँव में बस्ती है या नहीं ? यह सोच उन्होंने एक वानर को समाचार मालूम करने के लिए भेजा।

उसने लौट कर कहा कि वृक्ष फला है और गाँव में घनी बस्ती है। वानरों ने जब सुना कि वृक्ष फला है तो उन्हें बड़ी खुशी हुई कि मीठे मीठे फल खाने को मिलेंगे। बहुत सारे वानरों ने वानरेश को जाकर कहा। वानरेश ने पूछा—"गाँव बसा है या नहीं ?

"देव ! बसा है।"

"तो (लौट) जाओ। मनुष्य बहुत मायावी होते हैं।"

"देव ! आधी रात के समय जब मनुष्य सो जाएँगे, तब खाएँगे।"

बहुत से वानरों ने जाकर वानरेश को मना लिया। फिर हिमालय से उतर, उस ग्राम से थोड़ी ही दूर पर वह मनुष्यों के सोने के समय की प्रतीक्षा करते हुए एक बड़े भारी पत्थर पर सो रहे। आधी रात को जब मनुष्य सो रहे थे उन्होंने वृक्ष पर चढ़ फल खाए।

एक आदमी शौच के लिए घर से निकला। उसने गाँव के बीच

जाने पर बानरो को देखा तो और आदमियो को खबर दी। बहुत से आदमी तीर कमान तैयार कर, नाना प्रकार के आयुध ले, ढेले-डण्डे आदि के साथ वृक्ष को घेर कर खडे हो गए कि रात बीतने पर बानरो को पकडेंगे।

अस्सी हजार बानरो ने मनुष्यों को देखा तो उन्हें डर लगा कि अब मरे। उन्होने सोचा कि बानरेश को छोड उन्हें और कही शरण न मिलगी। वे उसके पास गए और पहली गाथा कही—

धनुहत्थकलापेहि नेत्तिसवरधारिहि
समन्ता परिकिण्णम्हा कथ मोक्खो भविस्सति ॥

[तीर कमान हाथ में लिए तथा उत्तम खड्ग धारण किए हुए आदमियो से हम घिरे हैं। कैसे मुक्त होगे ?]

धनुहत्थकलापेहि, धनुष और (तीर-)समूह जिनके हाथ में हैं, धनुष और तीर-समूह लेकर जो खडे हैं। नेत्तिसवरधारिहि, नेत्तिस कहते हैं खड्ग को, उत्तम खड्गधारियो से, परिकिण्णम्हा, हम घिरे हुए है, कथ किस उपाय से हमारा मोक्ष होगा।

उनकी बात सुन बानरेश ने कहा—'डरो मत। मनुष्यो को बहुत काम रहते हैं। अभी आधी रात है। यह हमें मारने के लिए खडे है। इस (हमारे मारने के) काम में विघ्न करने वाला दूसरा काम पैदा कर दें।" इस प्रकार उन्हें आश्वासन देते हुए दूसरी गाथा कही—

अप्पेव बहुकिच्चान अत्थो जायेथ कोचि न
अत्थि रुक्खस्स अच्छिन्न खज्जतञ्जेव तिन्दुक ॥

[इन बहुत काम वालो को कोई न कोई काम पैदा हो सकता है। वृक्ष पर अभी फल लगे हैं। तिन्दुक को खाओ।]

न निपातमात्र है। अप्पेव बहुकिच्चान, मनुष्यो को दूसरा कोचि अत्थो उत्पन्न हो सकता है। अत्थि रुक्खस्स अच्छिन्न इन वृक्षो पर से तोडने उतारने

की बहुत जगह है। खज्जतञ्ञेव तिन्दुक तिन्दुक फल खाओ। तुम्हें जितनी जरूरत है उतने फल खाओ। हमें मारने का समय आएगा तब देखेंगे।

इस प्रकार महासत्त्व ने सब को दिलासा दिया। यह आश्वासन न मिलता तो डर था कि सभी हृदय फट कर मर जाते।

महासत्त्व ने इस प्रकार बानरो को दिलासा दे कहा—सभी बानरो को इकट्ठा करो। इकट्ठे होने पर बोधिसत्त्व के सेनक नाम भानजे को न देखकर वह बोले कि सेनक नही आया। यदि सेनक नही आया तो मत डरो। वह अब कुछ अच्छा काम करेगा।

बानरो के आने के समय सेनक सोता रह गया था। पीछे उठ कर जब उसने किसी को न देखा तो वह भी बानरो के पीछे पीछे आया। रास्ते मे उसने आदमियो को देखकर सोचा कि बानरो के लिए खतरा पैदा हो गया। उसने गाँव के किनारे पर अग्नि जला कर कातती हुई एक स्त्री के पास जा, खेत पर जाने वाले लडके की तरह उससे मशाल ले, जिधर की हवा थी उधर खडे हो गाँव में आग लगा दी।

आदमी बानरो को छोड कर आग बुझाने दौड पडे। बानर भागे, लेकिन भागते हुए सेनक के लिए एक एक फल तोड कर लेते गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय भानजा सेनक महानाम शाक्य था। बानर समूह बुद्ध-परिषद थी। बानरराज तो मैं ही था।

१७८. कच्छप जातक

"जनित्तम्मे भवित्तम्मे..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ऐसे आदमी के बारे में कही जो प्लेग से मुक्त हो गया था।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक कुल में प्लेग[1] पैदा हुई। माता पिता ने पुत्र से कहा—तात ! इस घर में मत रह। दीवार तोड कर भाग जा। जहाँ कहीं जाकर जान बचा। पीछे आना। इस जगह पर बहुत सा खजाना गडा है। उसे निकाल, परिवार के साथ सुख से रहना।

पुत्र उनकी बात स्वीकार कर दीवार तोड भाग गया। फिर अपना रोग शान्त होने पर उसने आकर खजाना निकाल घर बसाया।

एक दिन वह घी तेल आदि तथा वस्त्र-ओढ़न आदि लिवाकर जेतवन गया। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर बैठा। शास्ता ने उसका कुशल क्षेम जान कर पूछा—"सुना तुम्हारे घर में प्लेग रोग घुस गया था। तुम उससे कैसे बचे ?"

उसने अपना हाल कहा। शास्ता बोले—"उपासक ! पूर्व समय में भी ऐसे लोगों ने जो खतरा आने पर आसक्ति के कारण अपने घर को छोड़कर अन्यत्र नहीं चले गए जान गँवाई। आसक्ति न कर दूसरी जगह जाने वालों ने जान बचा ली।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक गाँव में कुम्हार का काम करके स्त्री-बच्चों को पालते थे।

उस समय वाराणसी की महानदी के साथ मिला हुआ एक बडा तालाब था। अधिक पानी होने पर वह नदी के साथ मिल जाता। कम होने पर पृथक हो जाता। मछलियाँ और कछुवे पहले से जान जाते थे कि इस वर्ष अच्छी वर्षा होगी, इस वर्ष कम होगी। एक वर्ष तालाब में पैदा हुई मछलियाँ और कछुवे यह जानकर कि इस वर्ष अच्छी वर्षा न होगी, जिस समय अभी

---

[1] अहिवातकरोग।

तालाब और नदी एक थे, उसी समय उस तालाब से निकल नदी में चले गए।

एक कछुवे ने कहा—यहाँ मै पैदा हुआ हूँ। यहीं बडा हुआ हूँ। यहीं मेरे मातापिता रहे हैं। मैं इसे नही छोड सकता। वह नदी में नही गया।

गरमी पडने पर उस तालाब का पानी सूख गया। वह कछुआ जिस जगह बोधिसत्त्व मिट्टी खोदते थे, उसी जगह ज़मीन खोदकर उसमें घुसा था। बोधिसत्त्व ने मिट्टी लेने के लिए वहाँ जाकर, बड़ी कुदाल से ज़मीन खोदते हुए उसकी पीठ तोड कर, मिट्टी के ढेर की ही तरह उसे भी कुदाल से उठाकर स्थल पर गिराया।

उसने वेदना से पीडित हो कहा कि मै घर के प्रति आसक्ति को त्याग, उसे छोड न सका, इसीलिए विनाश को प्राप्त हुआ। और रोते हुए यह गाथाएँ कहीं—

> जनित्तम्मे भवित्तम्मे इति पङ्के अवस्सयिं
> तं मं पङ्को अज्झभवि यथा दुब्बलकं तथा
> तं तं वदामि भग्गव ! सुणोहि वचनं मम ॥
>
> गामे वा यदि वा रञ्ञे सुख यत्राधिगच्छति
> त जनित्तं भवित्त च पुरिसस्स पजानतो
> यम्हि जीवे तम्हि गच्छे न निकेतहतो सिया ॥

[मैं यहाँ पैदा हुआ। मै इसीमे बडा। यह सोच कर मै पङ्क में ही रहा। लेकिन मुझ दुर्बल को जैसे पङ्क ने परास्त किया, हे कुम्हार ! मै वैसे वैसे तुझे कहता हूँ सुन—

ग्राम या अरण्य मे जहाँ आदमी को सुख प्राप्त हो, वही बुद्धिमान आदमी की जन्म-भूमि है, वही पलने की जगह है। जहाँ रहकर जी सकता हो, वही जाए। घर में रहकर मरने वाला न बने।]

जनित्तम्मे भवित्तम्मे यह मेरे पैदा होने की जगह है, यह बढने की जगह है। **इति पङ्के अवस्सयिं** इस हेतु से मैंने इस कीचड में आश्रय लिया, पड़ा रहा, रहने लगा। **अज्झभवि**, पराभूत हुआ, विनाश को प्राप्त हुआ। **भग्गव** कुम्हार को बुलाता है। कुम्हारो का यही नाम गोत्र तथा प्रज्ञप्ति है—यह

भाग्यवान्।[1] सुखं, शारीरिक तथा मानसिक ग्रानन्द। तं जनित्त भवित्तब्ब वह पैदा होने का तथा पलने का स्थान है। जानित भावित दीर्घाकार भी पाठ है, अर्थ वही है। पजानतो, जो अर्थ अनर्थ तथा कारण अकारण को जानता हैं। न निकेतहतो सिया, घर में ग्रासक्ति कर, किसी दूसरी जगह न जा, घर में भरा। इस प्रकार मरण रूपी दुख को प्राप्त करने वाला न बने।

इस प्रकार वह बोधिसत्त्व से बोलते ही बोलते मर गया। बोधिसत्त्व ने उसे ले ग्राम के सारे निवासियों को इकट्ठा कर उन्हे उपदेश देते हुए कहा—"इस कछुए को देखते हैं? जब दूसरी मछलियाँ तथा कछुए महानदी में चले गए तो यह अपने निवास स्थान में आसक्ति न छोड सकने के कारण उनके साथ नही गया। जहाँ से मिट्टी ली जाती है, वही पडा रहा। मैंने मिट्टी खोदते हुए, महाकुदाल से इसकी पीठ तोड कर इस मिट्टी के ढेले की तरह इसे जमीन पर गिरा दिया। इसे अपना किया याद आया। दो गाथाएँ कह यह रोता हुआ मर गया। इस प्रकार यह अपने निवास स्थान के प्रति आसक्ति कर मर गया। तुम भी इस कछुए की तरह न होना। अब से तृष्णा के वश होकर उपयोग करते हुए यह मत समझो कि यह रूप मेरा है, यह शब्द मेरा है, यह सुगन्ध मेरी है, यह रस मेरा है, यह स्पर्शितव्य मेरा है, यह पुत्र मेरा है, यह लडकी मेरी है, यह दास-दासियाँ तथा यह सोना मेरा है। यह प्राणी अकेला ही तीनो भवों में चक्कर काटता है।"

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने बुद्ध-लीला से जनता को उपदेश दिया। वह उपदेश सारे जम्बूद्वीप में फैल कर सात सौ वर्ष[2] रहा। जनता बोधिसत्त्व के उपदेश के अनुसार चल दान आदि पुण्य कर्म कर स्वर्ग को गई।

बोधिसत्त्व ने भी उसी तरह पुण्य कर्म करते हुए स्वर्ग का रास्ता लिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक

---

[1] आजकल कुम्हारों को कहीं कहीं 'प्रजापति' कहते हैं।
[2] फौसबोल की प्रति में 'वस्स सहस्सानि' पाठ है।

का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह कुल-पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय काश्यप आनन्द था। कुम्हार तो मैं ही था।

१७९. सतधम्म जातक

"तञ्च अप्प..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय इक्कीस तरह की अनुचित जीविका के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय भिक्षु इक्कीस तरह के ऐसे कर्मों से जीविका चलाते थे जैसे वैद्यक, दूत बनकर जाना, सन्देस लेकर जाना, पैदल दौड़ कर (सन्देस ले) जाना, भिक्षा (=पिण्ड) के बदले में भिक्षा लेना आदि।

शास्ता ने उन भिक्षुओं का उस उस तरह जीविका चलाना जान सोचा—'इस समय भिक्षु अनुचित ढंग से जीविका चलाते हैं। इस प्रकार से जीविका चलाने से वे यक्ष-योनि से वा प्रेत-योनि से मुक्त न होंगे। जुए के बैल होकर पैदा होंगे। नरक में जन्म ग्रहण करेंगे। इनके हित के लिए, सुख के लिए अपने विचारानुकूल तथा प्रतिभा के अनुसार एक धर्मोपदेश देना चाहिए।"

तब भगवान् ने भिक्षुओं को इकट्ठा करवा उपदेश दिया—"भिक्षुओ! इक्कीस तरह के अनुचित तरीकों से जीविका नहीं चलानी चाहिए। अनुचित तरीकों से जो भिक्षा मिलती है, वह लोहे के तप्त गोले के समान है, हलाहल विष की तरह है। अनुचित तरीकों से जीविका चलाने की बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध तथा श्रावकों सभी ने निन्दा की है, निकृष्ट बताया है। अनुचित तरीकों से जिस भिक्षा की प्राप्ति होती है, उसे खाने वाले के मुँह पर मुस्कराहट नहीं आ

खाती, उसका भी प्रयोग नहीं हो सकता। अनुचित तरीके से जो भिक्षा मिलती है, वह मेरे मत में चाण्डाल के जूठे भोजन की तरह है। उसका खाना ऐसा ही है, जैसे सतधम्म माणवक ने चाण्डाल का जूठा भोजन खाया।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने चाण्डाल का जन्म ग्रहण किया। बड़े होने पर किसी काम से उन्होंने गाँव में जाने के लिए चावल और भात की पोटली ले रास्ता पकड़ा।

उसी समय में वाराणसी में एक माणवक था। नाम था सतधम्म। उदीच्य गोत्र के महासारवान् कुल में पैदा हुआ था। वह भी किसी काम से गाँव में जाने के लिए चावल या भात की पोटली बिना लिए ही निकल पड़ा।

उन दोनों की महामार्ग में भेंट हुई। माणवक ने बोधिसत्व से पूछा—"तेरी जात क्या है?" उसने कहा—"मैं चाण्डाल हूँ' और माणवक से पूछा—"तेरी जात क्या है?" "मैं उदीच्य ब्राह्मण हूँ।" "अच्छा, तो चलें" कह दोनों ने रास्ता पकड़ा।

बोधिसत्व ने प्रातःकाल का भोजन करने के समय एक ऐसी जगह जहाँ पानी की सुविधा थी, बैठ हाथ धो भात की पोटली खोल माणवक से पूछा—

"भात खाओगे?"

"रे चाण्डाल! मुझे भात की जरूरत नहीं है।"

बोधिसत्व बोला "अच्छा।" फिर भात की पोटली को जूठा न कर, अपनी आवश्यकता भर भात एक दूसरे पत्ते में डाल, पोटली को बाँध कर एक ओर रख दिया। भोजन कर, पानी पी, हाथ पैर धो, चावल तथा शेष भात ले माणवक से कहा "माणवक, चलें", और रास्ता पकड़ा।

वे सारा दिन चलकर, पानी की सुविधा की एक जगह में नहा कर बाहर निकले।

बोधिसत्व ने आराम की जगह बैठ भात की पोटली खोल माणवक को बिना पूछे ही खाना आरम्भ किया। दिन भर चलने से माणवक थक गया था और

उसे भूख भूख लगी थी। वह बोधिसत्व की ओर देखने लगा—"यदि यह भात देगा, तो खा लूँगा।" लेकिन बोधिसत्व बिना कुछ बोले खाते रहे।

माणवक ने सोचा—यह चाण्डाल बिना मुझे पूछे ही सब खाए जा रहा है। इससे ज़बरदस्ती छीन कर भी, ऊपर का जूठा भात हटा कर शेष खाना चाहिए। उसने वैसा कर जूठा भात खाया।

भात खाने के ही साथ माणवक के मन में बड़े ज़ोर का पश्चाताप पैदा हुआ। वह सोचने लगा—"मैंने अपनी जाति, गोत्र तथा प्रदेश के योग्य कार्य्य नहीं किया। मैंने चाण्डाल का जूठा भात खा लिया।" उसी समय उसके मुँह से रक्त सहित भात बाहर आया।

इस बड़े शोक से शोकातुर हो कि मैंने जरा सी बात के लिए अनुचित कर्म किया, उसने रोते हुए यह पहली गाथा कही—

तञ्च अप्पञ्च उच्छिट्ठं तञ्च किच्छेन नो अदा,
सोहं ब्राह्मणजातिको य भुत्तं तम्पि उग्गतं ॥

[वह थोड़ा सा था। जूठा था, और वह भी उसने कठिनाई से दिया। ब्राह्मण जाति का होकर मैंने वह खाया। जो खाया सो भी निकल गया।]

———

जो मैंने खाया वह अप्पं उच्छिट्ठं त च मो उस चाण्डाल ने अपनी इच्छा से नहीं बल्कि ज़बर्दस्ती करने पर किच्छेन कठिनाई से दिया। सोहं परिशुद्ध ब्राह्मण जाति का होकर (खाया) उसीसे मैंने य भुत्तं तम्पि रक्त के साथ उग्गतं।

———

इस प्रकार माणवक रो पीट कर 'मैंने ऐसा अनुचित काम किया, अब मैं जी कर क्या करूँगा' सोच जंगल में चला गया। वहाँ सबसे छिपे रह कर अनाथ-मरण मरा।

शास्ता ने यह पूर्व की बात कह उपदेश दिया—'भिक्षुओ, जैसे सतधम्म माणवक को उस चाण्डाल का जूठा भात खाने से, अपने लिए अनुचित भात खाया रहने से, न हँसी आई न मन प्रसन्न हो सका, इसी प्रकार जो इस शासन में प्रव्रजित हो अनुचित ढंग से जीविका चलाता है और उससे प्राप्त पदार्थों का

उपभोग करता हूँ, बुद्ध द्वारा निन्दित, बुद्ध द्वारा निकृष्ट कही गई जीविका से जीविका चलाने के कारण उसके मुँह पर न हँसी आती है, न प्रसन्नता।

शास्ता ने सम्बुद्धत्व प्राप्त किए रहने पर यह दूसरी गाथा कही—

एवं धम्मं निरंकत्वा यो अधम्मेन जीवति
सतधम्मोव लाभेन लद्धेनपि न नन्दति॥

[इस प्रकार धर्म छोड़ जो अधर्म से जीता है। वह सतधर्म की तरह लाभ होने पर भी प्रसन्न नहीं होता।]

धम्म जीविका को शुद्ध रखने के सदाचार का धर्म। निरंकत्वा बाहर करके, छोड़ कर। अधम्मेन, इक्कीस तरह के अनुचित तरीकों से जीविका खोजना। सतधम्मो उसका नाम है। न नन्दति जैसे सतधम्म माणवक चाण्डाल का जूठा मुझे मिला सोच उस लाभ से प्रसन्न नहीं होता। इसी प्रकार इस शासन में प्रव्रजित कुलपुत्र अनुचित ढग से प्राप्त लाभ का परिभोग करता हुआ प्रसन्न नहीं होता, सन्तुष्ट नहीं होता। निन्दित जीविका से जीता हूँ सोच दुःखी ही होता है। इसलिए अनुचित ढग से जीविका खोजने वाले के लिए यही अच्छा है कि वह सतधम्म माणवक की तरह जगल में जा अनाथ की तरह मर जाए

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मोपदेश कर चार आर्य(-सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओं को स्रोतापत्ति आदि फल की प्राप्ति हुई।

उस समय मैं ही चाण्डालपुत्र था।

१८०. दुद्दद जातक

"दुद्दद ददमान..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय सामूहिक दान के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कुटुम्ब-पुत्र परस्पर मित्रो ने चन्दा इकट्ठा करके सभी आवश्यक वस्तुओ से युक्त दान की तैयारी कर भिक्षुसघ को जिसके प्रमुख बुद्ध थे, निमन्त्रित कर एक सप्ताह तक महादान दिया।[1] सातवें दिन सब आवश्यक वस्तुएँ दी।

उनमें जो *मण्डली का प्रधान था उसने शास्ता को प्रणाम कर एक ओर* बैठ कर कहा—'भन्ते ! इस दान में अधिक देने वाले भी सम्मिलित हैं, थोडा देने वाले भी सम्मिलित है। यह दान सभी के लिए महान् फलदायी हो।' यह कह उसने दान दिया।

शास्ता बोले—'उपासको ! भिक्षुसघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध है दान देते हुए जो तुमने इस प्रकार दान दिया, यह महान् कर्म है। पुराने समय में पण्डितो ने भी दान देते हुए इसी प्रकार दिया।'

उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जा वहाँ सब *विद्याएँ सीखी। फिर घर छोड़, ऋषियो के ढग से प्रव्रज्या ग्रहण कर, मण्डली* का नेता बन हिमालय प्रदेश मे चिरकाल तक रहे। निमक-खटाई के लिए बस्ती में घूमते हुए, आकर वाराणसी पहुँचे। वहाँ राजोद्यान में रह कर अगले दिन परिषद सहित दरवाज़े पर के गाँव मे भिक्षाटन किया। मनुष्यो ने भिक्षा दी। अगले दिन वाराणसी में भिक्षाटन किया। आदमियो ने श्रद्धावान् हो भिक्षा दे, टोली बना कर चन्दा इकट्ठा कर दान की तैयारी की और ऋषिगण को महादान दिया। दान की समाप्ति पर टोली के नेता ने इसी प्रकार कह कर *दातव्य-वस्तुओ का परित्याग किया।*

---

[1] सात दिन तक नियमित भोजन कराया।

बोधिसत्त्व ने, "आयुष्मानो ! श्रद्धा होने पर दान कभी थोड़ा नहीं होता" कह दानानुमोदन करते हुए यह गाथा कही—

> दुद्दद ददमानान दुक्कर कम्मकुब्बतं
> असन्तो नानुकुब्बन्ति सतं धम्मो दुरन्नयो ॥
> तस्मा सतञ्च असतञ्च नाना होति इतो गति
> असन्तो निरयं यन्ति सन्तो सग्गपरायणा ॥

[कठिनाई से जो दिया जा सके देने वाले, कठिनाई से जो किया जा सके करने वाले सत्पुरुषों का धर्म दुर्ज्ञेय है, असत्पुरुष इसे नहीं करते। इसीलिए सत्पुरुषों और असत्पुरुषों की गति भिन्न भिन्न होती है। सत्पुरुष स्वर्ग जाने वाले होते हैं और असत्पुरुष नरक में।]

दुद्दद लोभ आदि से युक्त अपण्डित-जन दान नहीं दे सकते। इसलिए दान को कठिनाई से दिया जा सकने योग्य कहा। उसे ददमानान। दुक्कर कम्मकुब्बत उसी दान कर्म को सब नहीं कर सकते, इसलिए उस दुष्कर कर्म को करने वाले। दुरन्नयो फल-सम्बन्ध की दृष्टि से दुर्ज्ञेय—इस प्रकार के दान का इस प्रकार का फल होता है, यह जानना कठिन है, और भी दुरन्नयो कठिनाई से प्राप्य, मूर्ख जन दान देकर भी दान का फल नहीं प्राप्त कर सकते। नाना होति इतो गति यहाँ से च्युत होकर परलोक जाने वालों की नाना प्रकार से जन्म ग्रहण करने होते हैं। असन्तो निरयं यन्ति, मूर्ख, दुश्शील लोग दान न दे, तथा सदाचार की रक्षा न कर नरक को जाते हैं। सन्तो सग्गपरायणा, पण्डित लोग दान देकर, शील की रक्षा कर, उपोसथ-व्रत रख, तीनों प्रकार के सुचरित्र[1] पूरे कर स्वर्गगामी होते हैं। महान् स्वर्ग-सुख सम्पत्ति का आनन्द लूटते हैं।

---

[1] काय, वाक् तथा वाणी के शुभ कर्म।

इस प्रकार बोधिसत्व (दान-)अनुमोदन कर वर्षा के चार महीने वहीं रहे। वर्षा-ऋतु समाप्त होने पर ध्यान-प्राप्त कर ध्यान-युक्त ही ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ऋद्धिमान बुद्धपरिषद थी। मण्डली का नेता तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

४. असदिस वर्ग

१८१. असदिस जातक

"धनुग्गहो असदिसो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महाभिनिष्क्रमण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षु भगवान् की नैष्क्रम्यपारमी की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो?" "अमुक बात चीत।" "भिक्षुओ! तथागत ने केवल अभी अभि-निष्क्रमण नहीं किया, पहले भी श्वेत-छत्र छोडकर अभिनिष्क्रमण किया है।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उसकी रानी की कोख में जन्म ग्रहण किया।

सकुशल पैदा हुए उस राजकुमार का, नामग्रहण के दिन नाम रक्खा गया असदिसकुमार। जिस समय वह दौड भाग कर चलने फिरने लगा, एक दूसरे पुण्यवान् प्राणी ने देवी की कोख में जन्म ग्रहण किया। सकुशल पैदा हुए उस कुमार का नाम रक्खा गया ब्रह्मदत्त कुमार।

बजोड हो वाराणसी लौटे। राजा ने मरते समय कहा, असदिसकुमार को राजा तथा ब्रह्मदत्त कुमार को उपराजा बनाना। इतना कह वह मर गया।

उसके मर जाने पर जब बोधिसत्त्व को राज्य दिया जाने लगा, उसने मना कर दिया कि मुझे राज्य की जरूरत नही है। ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक कर दिया गया। बोधिसत्त्व ने कहा कि मुझे यश नही चाहिए; और किसी भी चीज की इच्छा नही की। छोटे भाई के राज्य करते हुए वह जैसे साधारण ढग से रहते थे, उसी तरह रहते रहे।

राजा के नौकर चाकरो ने राजा को यह कह कर कि बोधिसत्त्व राज्य चाहते हैं, राजा का मन बोधिसत्त्व की ओर से फेर दिया। उसने उनका विश्वास कर, चित्त में सन्देह पैदा हो जाने के कारण मनुष्यो को आज्ञा दी कि मेरे भाई को पकडो।

बोधिसत्त्व के किसी हितचिन्तक ने उन्हें इसकी सूचना दी। छोटे भाई से क्रुद्ध हो बोधिसत्त्व किसी दूसरे राष्ट्र में चले गए। वहाँ राजद्वार पर पहुँच कहलवाया कि एक धनुर्धारी आया है। राजा ने पूछा कि क्या वेतन लेगा? उत्तर दिया—एक वर्ष के लिए एक लाख। राजा ने आज्ञा दी—अच्छा, आ जाए। उसके समीप आकर खडे होने पर पूछा—

"तू धनुर्धारी है?"

"देव! हाँ।"

"अच्छा! मेरी सेवा में रह।"

तब से वह राजा की सेवा में रहने लगे। उन्हे जो वेतन मिलता था, उसे देख पुराने धनुर्धारी क्रुद्ध हुए कि इसे बहुत मिलता है।

एक दिन राजा उद्यान गया। वहाँ मङ्गल-शिला की शय्या के पास कनात तनवा आम के वृक्ष के नीचे महाशय्या पर लेटा। ऊपर देखते हुए उसने एक आम देखा। उसे लगा कि इस आम को चढ कर नही तोडा जा सकता। इसलिए उसने धनुर्धारियो को बुलवा कर पूछा—"क्या इस आम को तीर मार कर गिरा सकते हो?"

'देव! यह हमारे लिए कठिन कार्य्य नही है। लेकिन! देव! हमारा कौशल तो आपने पहले अनेक बार देखा है। जो नया धनुर्धर आया है, वह हमारी अपेक्षा बहुत पाता है। उससे गिरवाएँ।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—"तात ! इसे गिरा सकते हो ?"

"महाराज ! हाँ ! थोड़ी जगह मिलने पर गिरा सकूँगा।"

"जगह कहाँ चाहिए ?"

"जहाँ आपकी शय्या है।"

राजा ने शय्या हटवा कर जगह करा दी। बोधिसत्व हाथ में धनुष नहीं रखते थे। वह कपड़ों के नीचे छिपाए रहते थे। इसलिए कहा कि कनात चाहिए। राजा ने कहा 'अच्छा' और कनात मँगवा कर तनवा दी। बोधिसत्व कनात के अन्दर चले गए। वहाँ पहुँच उन्होंने ऊपर पहना श्वेत वस्त्र उतार एक लाल कपड़ा पहना। फिर कच्छ पहन, थैली से जुड़ने-वाली तलवार निकाल, बाईं ओर बाँधी। तब सुनहरी वस्त्र पहन, कमर पर तरकश बाँध, जुड़ने वाला, मेढे की सींग का बना बड़ा धनुष ले, मूँगे के रंग की डोरी बाँध, सिर पर पगड़ी धारण की। तेज तीर को नाखून पर घुमाते हुए वह कनात के दो हिस्से कर ऐसे निकला मानो पृथ्वी फाड़ कर अलंकृत नाग-कुमार बाहर आया हो। फिर बोधिसत्व तीर चलाने की जगह पर जा, तीर को तैयार कर राजा से बोले—

"महाराज ! इस आम को ऊपर जाने वाले तीर से गिराऊँ, अथवा नीचे जाने वाले तीर से ?"

"तात ! मैंने ऊपर जाने वाले तीर से बहुत गिराते देखा है, लेकिन नीचे जाने वाले तीर से गिराते नहीं देखा है। नीचे जाने वाले तीर से गिराएँ।"

"महाराज ! यह तीर दूर तक जाएगा। चातुर्महाराजिक भवन तक जाकर स्वयं नीचे उतरेगा। जब तक यह नीचे उतरे, तब तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

बोधिसत्व ने फिर कहा—"महाराज ! यह तीर ऊपर जाता हुआ आम की डंठल को ठीक बीच में से छेदता हुआ ऊपर जाएगा; और नीचे उतरता हुआ बालाग्रमात्र भी इधर उधर न हो, निश्चित जगह पर लग, आम को लेकर नीचे उतरेगा। महाराज ! देखें।"

तब बोधिसत्व ने जोर लगाकर तीर छोड़ा। आम की डंठल को बीच में से छेदता हुआ तीर ऊपर चढ़ा। बोधिसत्व ने यह समझ कि अब वह तीर

चातुर्महाराजिक भवन पहुँचा होगा, पहले तीर से भी अधिक ज़ोर से एक दूसरा तीर चलाया। वह तीर जाकर पहले छोड़े हुए तीर के पंख में लगा और उसे लौटा स्वयं तावतिंस भवन को चला गया। उसे वहाँ देवताओं ने पकड़ लिया। जो तीर लौट रहा था उसके हवा छेदते हुए आने की आवाज़ बिजली की आवाज़ के समान थी।

लोगो ने पूछा—"यह कैसी आवाज़ है?"

बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"यह तीर के लौटने की आवाज़ है।"

लोगो को डर लगने लगा कि उनमे से किसी के बदन पर न गिरे। बोधिसत्त्व ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं तीर को जमीन पर गिरने न दूंगा।

उतरते हुए तीर ने बाल की नोक भर भी इधर उधर न जा निश्चित स्थान पर गिर आम को तोड़ा। बोधिसत्त्व ने तीर तथा आम को ज़मीन पर गिरने न दे, आकाश में ही रोक कर एक हाथ में तीर और दूसरे में आम लिया।

जनता उस आश्चर्य को देख "ऐसा तो हमने कभी पहले नही देखा" कहते हुए महापुरुष की प्रशंसा करने लगी, चिल्लाने लगी, तालियाँ पीटने लगी; अँगुलियाँ चटखाने लगी, और सहस्रो वस्त्रो को ऊपर उछालने लगी। सन्तुष्ट चित्त राज्य-परिषद ने बोधिसत्त्व को एक करोड धन दिया। राजा ने भी धन की वर्षा करते हुए इसे बहुत सा धन तथा यश दिया।

इस प्रकार आदृत तथा सत्कृत होकर बोधिसत्त्व के वहाँ रहते समय सात राजाओं ने यह जान कि अब असदिसकुमार बाराणसी में नही है, बाराणसी को घेर लिया और सन्देस भेजा कि चाहे राज्य दें, चाहे युद्ध करें। राजा ने मरने से भयभीत हो पूछा—"इस समय मेरा भाई कहाँ है?"

"एक सामन्त राजा की सेवा में है।"

उसने दूत भेजे—यदि भाई नही आएगा, तो मेरी जान नही बचेगी। जाओ मेरी ओर से उनके चरणो में प्रणाम कर क्षमा माँग उन्हें लिवा कर आओ।

उन्होंने जाकर बोधिसत्त्व को वह समाचार कहा। बोधिसत्त्व ने उस राजा को पूछ बाराणसी लौट कर अपने भाई को आश्वासन दिया कि मत डरें। फिर उसने एक तीर पर यह लिखा कि मैं असदिसकुमार आ गया हूँ। दूसरा तीर चला कर सब की जान ले लूँगा। इसलिए जिन्हें जान प्यारी हो, वह भाग जाएँ। उस तीर को उसने अट्टालिका पर चढ़ ऐसे चलाया कि वह

जहाँ सातो राजा भोजन कर रहे थे वहाँ सोने की थाली के ठीक बीच में जाकर गिरा। उन अक्षरो को देख मरने के भय से वह सभी भाग गए।

इस प्रकार बोधिसत्व ने, छोटी मक्खी जितना खून पीती है उतना खून भी बिना बहाए सातो राजाओ को भगा दिया। फिर छोटे भाई से भेंट कर, काम-भोग के जीवन को त्याग ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की। अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर जीवन समाप्त होने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने बुद्ध हुए रहने पर "भिक्षुओ! असदिसकुमार ने सात राजाओ को भगा, सग्राम विजयी हो ऋषियो के क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की" कह, यह गाथाएँ कही—

धनुग्गहो असदिसो राजपुत्तो महब्बलो
दूरेपाती अक्खणवेधी महाकायप्पदालनो॥
सब्बामित्ते रण कत्वा न च किञ्चि विहेठयि
भातर सोत्थि कत्वान सञ्ञम अज्झुपागमि॥

[महाबलशाली, बडी बडी चीजो को बीधने वाले, अचूक निशाना लगाने वाले, धनुर्धारी असदिस राजपुत्र ने जो तीर को दूर गिराता था, बिना किसी को कष्ट दिए सभी शत्रुओ से युद्ध कर भाई का उपकार किया। वह स्वय सन्यासी हो गया।]

असदिसो केवल नाम से ही नही, बल, वीर्य्य तथा प्रज्ञा में भी असदृश। **महब्बलो** शरीर-बल तथा ज्ञान-बल, दोनो बलो से बलशाली। **दूरेपाती** चातुर्महाराजिक भवन तथा तावतिंस भवन तक तीर पहुँचाने की सामर्थ्य रखने से, दूर गिराने वाला। **अक्खणवेधि** अचूक निशाने वाला, अथवा अक्खणा कहते है बिजली को, जितनी देर एक बार बिजली चमकती है, एक बार बिजली चमकने के, उतनी ही देर के प्रकाश मे सात आठ बार तीर लेकर बीधने वाला। **महाकायपद्दालनो** बडी चीजो को बीधने वाला। चर्म-काय, लकडी-काय, लोह-काय,[1] अयस्-काय, बालू-काय, उदक-काय तथा स्फटिक-काय, यह सात

---

[1] लोह=ताँबा।

महाकाय है। कोई दूसरा चर्म-काय को बींधने वाला केवल भैंस के चर्म को बींधता है। वह सात भैंस-चर्मों को बींधता। दूसरा कोई आठ अंगुल मोटे अंजीर के तख्ते को, वा चार अंगुल मोटे असन वृक्ष के तख्ते को बींधता है। वह एक साथ सौ तख्ते बँधे हो, तो उनको भी बींधता। उसी तरह दो अंगुल मोटे ताम्बे के तख्ते, वा अंगुल मोटे अयस्-तख्ते को अथवा बालू की गाडी, वा तख्तों की गाडी, वा पराल की गाडी में पीछे से तीर मार कर आग निकाल देता। पानी में सामान्यतया चार ऋषभ की दूरी पर तीर पहुँचा देता, स्थल में आठ ऋषभ की दूरी पर। इस प्रकार इन सात कायों को बींधने वाला होने से महाकाय बींधने वाला। **सब्बामित्ते,** सभी शत्रु। **रण कत्वा** युद्ध करके भगा दिए। **न च किञ्चि विहेठयि** किसी एक को भी कष्ट नहीं दिया। बिना कष्ट दिए उनके साथ केवल तीर भेज कर ही युद्ध करके। **सञ्ञमं अज्झुपागमि** शील-संयम रूपी प्रव्रज्या को प्राप्त किया।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय छोटा भाई आनन्द था। असदिसकुमार तो मैं ही था।

१८२. सङ्ग्रामावचर जातक

"सङ्ग्रामावचरो सूरा "यह शास्ता ने जेवतन में रहते समय नन्द स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जिस समय शास्ता पहली बार कपिलपुर[1] गए, उन्होंने छोटे भाई नन्द-

---

[1] कपिलवस्तु।

कुमार को प्रव्रजित किया। कपिलपुर से निकल क्रमशः श्रावस्ती जाते समय आयुष्मान् नन्द भागवान् का पात्र ले शास्ता के साथ साथ चले। जनपदकल्याणि[1] ने सुना तो आधे बिखरे केशो से झरोखे में से देख कर कहा कि आर्य्य-पुत्र शीघ्र लौटना। नन्द जनपदकल्याणि के इस कथन को याद करता हुआ उत्कण्ठा के कारण शासन में मन न लगा सका। वह पाण्डुवर्ण का हो गया; और उसके शरीर में नसें ही नसें दिखाई देने लगीं।

शास्ता ने उसका हाल जान सोचा कि मैं नन्द को अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित करूँ। इसलिए उन्होंने उसके रहने के परिवेण में जा वहाँ बिछे आसन पर बैठ पूछा—"नन्द! इस शासन में तेरा मन लगता है या नही?

"भन्ते! जनपदकल्याणि में आसक्ति होने के कारण मन नही लगता।"

"नन्द! तू पहले हिमालय में चारिका करने गया है?"

"भन्ते! नही गया हूँ।"

"तो! आओ चले।"

"भन्ते! मुझे ऋद्धि(-बल) नही है। मैं कैसे जाऊँगा?"

"नन्द! मैं तुझे अपने ऋद्धि(-बल) से ले जाऊँगा।"

शास्ता ने स्थविर को हाथ से पकड आकाश मार्ग से जाते हुए रास्ते में जला हुआ खेत दिखाया। वहाँ जले हुए एक ठूँठ पर एक बन्दरी बैठी दिखाई; जिसके कान, नाक और पूँछ कटी थी; जिसके बाल जल गए थे; जिसकी खाल फट गई थी; जिसकी चमड़ी मात्र बाकी रह गई थी तथा जिसमें से रक्त बह रहा था।

"नन्द! इस बन्दरी को देखते हो?"

"भन्ते! हाँ।"

"अच्छी तरह से प्रत्यक्ष करो।"

फिर उसे ले साठ योजन का मनोशिला-तल, अनवतप्त आदि सात महा-सर, पाँच महानदियाँ, स्वर्ण-पर्वत, रजत-पर्वत तथा मणि-पर्वत से युक्त सैकड़ो रमणीय-स्थान और हिमालय-पर्वत दिखा पूछा—

---

[1] नन्द की भार्य्या।

"नन्द ! तूने तावतिंस-भवन[1] देखा है ?"

"भन्ते ! नही देखा ?"

"नन्द ! आ तुझे तावतिंस भवन दिखाएँ।"

शास्ता उसे वहाँ ले जा पाण्डु-कम्बल शिला आसन पर बैठे। दोनो देव-लोकों के देवताओं सहित देवेन्द्र शक्र-राजा ने आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। उसकी ढाई करोड़ सेविकाएँ और कबूतरी की तरह लाल पाँव वाली पाँच सौ अप्सराएँ भी आकर, प्रणाम कर एक ओर बैठी। शास्ता ने नन्द को ऐसा किया कि वह उन पाँच सौ अप्सराओं पर आसक्त हो उन्हें बार बार देखने लगा।

"नन्द ! कबूतरी जैसे पाँव वाली इन अप्सराओं को देखता है ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"क्या यह अच्छी लगती है, अथवा जनपदकल्याणि ?"

"भन्ते ! जनपदकल्याणि की तुलना में जैसे वह लुजी बन्दरी थी, उसी तरह इनकी तुलना में जनपदकल्याणि है।"

"नन्द ! अब क्या करेगा ?"

"भन्ते ! क्या करने से यह अप्सराएँ मिल सकेंगी ?"

"श्रमण धर्म पूरा करने से।"

"यदि भन्ते ! आप मुझे इन्हें दिलाने के जिम्मेवार हो तो मैं श्रमण-धर्म पूरा करूँगा।"

"नन्द ! कर। मै जिम्मेवार होता हूँ।"

इस प्रकार देवसमूह के बीच में स्थविर ने तथागत को ज़िम्मेवार ठहरा कर कहा—"भन्ते ! देर न करें। आएँ चलें। मै श्रमण धर्म करूँगा।"

शास्ता उसे ले जेतवन चले आए। स्थविर ने श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया।

शास्ता ने धर्मसेनापति सारिपुत्र को सम्बोधन कर कहा—"सारिपुत्र ! मेरे छोटे भाई नन्द ने त्रयस्त्रिंशत् देवलोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ

---

[1] त्रयस्त्रिंशत् देवताओं का भवन।

दिलाने के लिए मुझे जिम्मेवार ठहराया है। इस उपाय से महामौद्गल्यायन स्थविर, महाकाश्यप स्थविर, अनुरुद्ध स्थविर, धर्मभण्डारी आनन्द स्थविर, अस्सी महाश्रावकों तथा प्रायः करके शेष सभी भिक्षुओं को कहा। धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर ने नन्द स्थविर के पास जाकर कहा—आयुष्मान् ! क्या तूने सचमुच त्रयस्त्रिंशत् लोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ मिलें तो श्रमण-धर्म करूँगा, इसके लिए दसबलधारी (बुद्ध) को जामिन ठहराया है? यदि ऐसा है तो तेरा ब्रह्मचर्य्य-जीवन स्त्रियों के लिए है, आसक्ति के लिए है। यदि तू स्त्रियों के लिए श्रमण-धर्म कर रहा है तो तुझ में और उस मजदूर में क्या अन्तर है जो मजदूरी के लिए काम करता है?" इस प्रकार नन्द स्थविर को लज्जित किया, निस्तेज किया। इसी तरह सभी अस्सी महाश्रावकों ने तथा शेष भिक्षुओं ने उस आयुष्मान् को लज्जित किया।

उसे लज्जा आई और निन्दा-भय के कारण उसने दृढ पराक्रम कर विपश्यना-भावना बढा अर्हत्व प्राप्त किया। फिर शास्ता के पास जाकर कहा—"भन्ते! मैं आपको आपकी जिम्मेवारी से मुक्त करता हूँ।" शास्ता ने कहा—"नन्द! जिस समय तूने अर्हत्व प्राप्त किया, उसी क्षण मैं अपनी जिम्मेवारी से मुक्त हो गया।"

यह समाचार सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चीत चलाई—"यह आयुष्मान् नन्द स्थविर उपदेश के कितने अधिकारी हैं। एक बार उपदेश देने से ही लज्जा तथा निन्दा-भय का ख्याल कर श्रमण-धर्म करके अर्हत्व प्राप्त कर लिया।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी, पूर्व में भी नन्द उपदेश का अधिकारी ही रहा है।"

फिर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हाथी-शिक्षक के कुल में पैदा हुए। बडे होने पर हाथी-शिक्षा के कार्य्य में

निष्णात हो वाराणसी राजा के एक शत्रु-राजा की सेवा म रहने लगा। उसने उसके मङ्गल हाथी को अच्छी तरह सिखाया। राजा ने वाराणसी राज्य को जीतने की इच्छा से बोधिसत्त्व को साथ लें मङ्गल हाथी पर चढ बडी भारी सेना के साथ चढाई की। उसने बाराणसी-नरेश के पास सन्देश भेजा—युद्ध करें वा राज्य दे।

ब्रह्मदत्त ने युद्ध करने का निर्णय किया। उसने चारदीवारी के दरवाजो पर, अट्टालिकाओ पर, नगर-द्वारो पर सेना को बिठा युद्ध करना शुरू किया।

शत्रु-राजा ने मङ्गल हाथी को कवच बाँध, स्वय भी कवच पहन, हाथी के कन्धे पर बैठ तेज़ अकुस ले हाथी को नगर की ओर बढाया, ताकि नगर (की चारदीवारी) को तोड शत्रु को मार राज्य को हस्तगत कर सके। हाथी ने जब देखा कि उधर से गर्म-गारा आदि फेंका जा रहा है तथा गुलेल और नाना प्रकार के दूसरे प्रहार किए जा रहे हैं तो वह मरने से भयभीत हो पास न जा सकने के कारण लौट पडा।

हाथी-शिक्षक ने उसके पास जाकर कहा—"तात! तू शूर है। सग्राम-जित है। इस तरह के मौके पर पीछे लौटना तेरे लिए अयोग्य है।" इतना कह हाथी को उपदेश देते हुए यह दो गाथाएँ कहीं—

> सङ्गामावचरो सूरो बलवा इति विस्सुतो
> किन्नु तोरणमासज्ज पटिक्कमसि कुञ्जर!
> ओमद्द खिप्प पळिघ एसिकानि च अब्बह
> तोरणानि पमद्दित्वा खिप्प पविस कुञ्जर!

[कुञ्जर! यह प्रसिद्ध है कि तू सग्राम-जित है, शूर है, बलवान् है। तोरण के पास पहुँच कर तू क्यो पीछे लौटता है? बाधा को जल्दी तोड डाल। स्तम्भो को उखाड फेंक। कुञ्जर! दरवाज़ो का मर्दन करके तू जल्दी नगर में प्रविष्ट हो।]

इति विस्सुतो तात! तू ऐसे सग्राम को जिसमें प्रहार मिलते हो मर्दन करके विचरने वाला होने से **सङ्गामावचरो**, दृढ-हृदय वाला होने से **सूरो**। बल-सम्पन्न होने से **बलवा**, यह प्रसिद्ध है, ज्ञात है, प्रकट है। **तोरणमासज्ज,**

नगर-द्वार पर पहुँच। पटिक्कमसि किस कारण से पीछे हटता है? किस कारण से रुकता है? प्रोमद्द मर्दन कर, नीचे गिरा दे। एसिकानि च श्रब्बह, नगर-द्वार पर सोलह हाथ या आठ हाथ भूमि के अन्दर प्रवेश करके स्थिर रूप से गाड़े हुए स्तम्भ एसिका-स्तम्भ कहलाते हैं। उन्हें जल्दी उखाड़ फेंकने की आज्ञा देता है। तोरणानि पमद्दित्वा नगर-द्वार के पीछे के चौखट मर्दित कर। खिप्प पविस, जल्दी से नगर में प्रवेश कर। कुञ्जर, नाग को सम्बोधित करता है। --

---

उसे सुन बोधिसत्त्व ने एक ही उपदेश से रुक, स्तम्भों को सूण्ड से लपेट, 'साँप की छतरियों' की तरह उखाड़, तोरण का मर्दन कर बाधा को उखाड़ फेंका। फिर नगर-द्वार को तोड़, नगर में प्रवेश कर राजा को राज्य ले दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी नन्द था। राजा आनन्द था। हाथी शिक्षक तो मैं ही था।

१८३. वाळोदक जातक

"वाळोदक अप्परस निहीनं, ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय पाँच सौ जूठन खाने वालों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ श्रावक घर-गृहस्थी का भार अपने स्त्री-बच्चों को सौंप, शास्ता का धर्मोपदेश सुनते हुए एक साथ रहते थे। उनमें कोई स्रोतापन्न थे, कोई सकृदागामी तथा कोई अनागामी, पृथक्जन कोई भी नहीं था। शास्ता को निमन्त्रित करते तो भी वह मिलकर ही निमन्त्रित करते।

उनको दातुन, मुख धोने का जल, सुगन्धि तथा माला आदि देने वाले उनके पाँच सौ छोटे सेवक जूठन खाकर रहते। वह प्रात काल का भोजन खा,

सो जाते और उठ कर अचिरवती नदी के किनारे जा कुश्ती लडते। लेकिन वह पाँच सौ उपासक हल्ला न मचाते हुए ध्यान-रत रहते थे।

शास्ता ने उन जूठन खाने वालो का शोर सुनकर पूछा—

"आनन्द! यह शोर कैसा है?"

"भन्ते! यह जूठन खाने वालो का शब्द है।"

"आनन्द! यह जूठन खाने वाले केवल अभी जूठन खाकर शोर नही मचाते, पहले भी शोर मचाते रहे है, और यह उपासक भी न केवल अभी शान्त है पहले भी शान्त रहे है।"

स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व अमात्य कुल में पैदा हुए। बडे होने पर राजा के अर्थधर्मानुशासक का पद मिला।

एक बार वह राजा यह सुन कि उसके इलाके में उपद्रव हो गया है, पाँच सौ सैन्धव घोडे तैयार करा, चतुरङ्गिनी सेना के साथ जा, इलाके को शान्त कर वाराणसी लौट आया। उसने आज्ञा दी कि घोडे थके है, इसलिए उन्हें कोई नरम चीज अगूर का पेय ही पिलाया जाए।

सैन्धव घोडे सुगन्धित पेय पीकर अश्व-शाला में आ अपनी अपनी जगह खडे हो गए। उनको जो रस दिया गया था, उसमें से बचा हुआ बहुत कसैला हो गया। आदमियो ने राजा से पूछा—"इसका क्या करें?" राजा ने आज्ञा दी—"इसमें पानी मिला, मोटे कपडे से छान, जो गधे घोडो का चारा ढो कर ले गए थे, उन्हे पिला दो।" पिला दिया गया।

गधे उस कसैले पानी को पी मस्त होकर रेकते हुए राजाङ्गण में घूमने लगे। राजा ने बडी खिडकी खोल राजाङ्गण को देखते हुए पास खडे बोधिसत्त्व को सम्बोधित करके कहा—"मित्र! यह गधे कसैला पानी पीकर मस्त हो रेंकते हुए उछलते फिरते हैं। सिन्धु-कुल में पैदा हुए सैन्धव घोडे सुगन्धित पेय पीकर नि शब्द बैठे हुए उछलते कूदते नही है। इसका क्या कारण है?"

यह पूछते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वाळोदकं अप्परसं निहीनं
पीत्वा मदो जायति गद्रभानं
इमं च पीत्वान रसं पणीतं
मदो न सञ्जायति सिन्धवानं

[गधों को थोड़े से रस वाला, तुच्छ, बोरे से छना हुआ पानी पीकर भी मद हो जाता है। सैन्धव घोड़ों को यह श्रेष्ठ रस पीकर भी मद नही होता।]

वाळोदकं बोरे से छाना हुआ पानी, वाळूदकं भी पाठ है। निहीनं हीन रस से युक्त, न सञ्जायति, सैंधव घोडो को मद नही होता है, क्या कारण है?

इसका कारण कहते हुए बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

अप्पं पिवित्वान निहीनजच्चो
सो मज्जति तेन जनिन्द फुट्ठो
धोरय्हसीली च कुलम्हि जातो
न मज्जति अग्गरसं पिवित्वा

[राजन्! हीन कुल में पैदा हुआ, थोडी भी पी लेने से उसके स्पर्श से (ही) मस्त हो जाता है। स्थिर शील वाला तथा श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ, श्रेष्ठ रस पीकर भी मस्त नही होता।]

तेन जनिन्द फुट्ठो, जनेन्द्र! श्रेष्ठ राजन्! वह हीन कुल मे पैदा हुआ, अपने कुल की हीनता के कारण मज्जति, प्रमाद को प्राप्त होता है, धोरय्हसीलो स्थिर रूप से वहन करने की योग्यता वाला सैन्धव जाति का घोड़ा, अग्गरसं सबसे पहले लिया हुआ अंगूर-रस, पिवित्वा न मज्जति।

राजा ने बोधिसत्त्व की बात सुन गधो को राजाङ्गण से निकलवाया। फिर उसी के उपदेशानुसार चल दानादि पुण्यकर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय पाँच सौ गधे यह जूठन खाने वाले थे। पाँच सौ सैन्धव घोडे यह उपासक। राजा आनन्द। अमात्य-पण्डित तो मैं ही था।

१८४. गिरिदत्त जातक

"दूसितो गिरिदत्तेन. . ." यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

पहले महिलामुख जातक[1] में जो कथा आई है, इसकी कथा भी उसी प्रकार है। शास्ता ने कहा, भिक्षुओ, यह केवल अभी विरोधी पक्ष का साथ देने वाला नहीं है, पहले भी यह विपक्ष-सेवी ही रहा है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में सामराजा नाम के राजा का राज्य था। उस समय बोधिसत्त्व अमात्यकुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके अर्थ-धर्मानुशासक[2] हुए।

राजा का पण्डव नाम का मङ्गल घोडा था। उसके शिक्षक का नाम था गिरिदत्त। वह लँगडा था। रस्सी पकड कर आगे आगे (लँगडाते

---

[1] महिलामुख जातक (१.३.६)

[2] लौकिक तथा नैतिक दोनों विषयों में सलाहकार।

हुए) जाने से घोडे ने सोचा कि यह मुझे सिखाना चाहता है। उसके अनुसार चलने से वह लँगडा हो गया। उसके लँगडेपन की बात राजा तक पहुँचाई गई। राजा ने वैद्यों को भेजा। उन्होंने जब देखा कि घोडे को कोई बीमारी नहीं है, तो उन्होंन राजा से कहा कि घोडे के शरीर में कोई रोग तो नहीं दिखाई देता।

राजा ने बोधिसत्त्व को भेजा "मित्र! जा, क्या कारण है, पता लगा।" उसने जाकर शिक्षक के लँगडे होने के कारण ही यह लँगडा हुआ है जान, राजा को सूचना दी, और यह दिखाने के लिए कि खराब संगत से ऐसा हो जाता है, यह गाथा कही—

दूसितो गिरिदत्तेन हयो सामस्स पण्डवो
पोराणं पकतिं हित्वा तस्सेव अनुविधीयति॥

[राजा साम के पण्डव घोडे को गिरिदत्त ने खराब कर दिया। वह अपने पहले स्वभाव को छोड कर उसीका अनुकरण करता है।]

हयो सामस्स सामराजा का मङ्गल घोडा, पोराणं पकतिं हित्वा अपनी पुरानी प्रकृति, शृङ्गार छोड कर, अनुविधीयति अनुसार सीखता है।

तब राजा ने पूछा—"मित्र! अब क्या करना चाहिए?" बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—अच्छा शिक्षक मिलने से फिर पहले की तरह हो जाएगा। और यह दूसरी गाथा कही—

सचेव तनुजो पोसो सिखराकारकप्पितो,
आनने तं गहेत्वान मण्डले परिवत्तये,
खिप्पमेव पहत्वान तस्सेव अनुविधीयति॥

[यदि सुन्दर आकार-प्रकार वाला, उस घोडे के अनुरूप शिक्षक उसे मुँह से पकड कर घुमाएगा, तो वह जल्दी ही यह (लँगडापन) छोड कर उसका अनुकरण करेगा।]

तनूजो, उसका अनुज, अनुकूल उत्पन्न हुआ होने से अनुज। मतलब यह है—महाराज! यदि उस श्रृङ्गार-युक्त आचारवान् घोड़े के अनुरूप आकार प्रकार वाला पोसो। सिखरकारकप्पितो शिखर अर्थात् सुन्दर तरह से जिसकी बाल दाढ़ी कढ़ी है। त घोड़े को आनने गहेत्वा घोड़े के घुमाने की जगह पर घुमाए। तो यह शीघ्र ही लँगड़ेपन को छोड़, यह श्रृङ्गारयुक्त आचारवान् अश्व शिक्षक मुझे सिखा रहा है, समझ उसका अनुकरण करेगा, उसके अनुसार सीखेगा, स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होगा।

राजा ने वैसा करवाया। घोड़ा स्वाभाविक अवस्था में प्रतिष्ठित हुआ। यह सोच कि बोधिसत्त्व पशुओं तक के आशय को समझते हैं, उन्हें बहुत धन दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय गिरिदत्त देवदत्त था। घोड़ा विरोधी पक्ष का साथ देने वाला भिक्षु। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मैं ही था।

१८५. अनभिरति जातक

"यथोदके आविले अप्पसन्ने " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण कुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में तीनों वेदों का जानकार एक ब्राह्मण-कुमार बहुत से क्षत्रिय तथा ब्राह्मणकुमारों को वेद पढ़ाता था। आगे चलकर उसने घर बसाया। वस्त्र, अलङ्कार, दास, दासी, खेत, वस्तु गौ, भैंस, पुत्र तथा स्त्री आदि की

चिन्ता करने से राग, द्वेष और मोह के वशीभूत हो वह अस्थिर चित्त हो गया। मन्त्रो को क्रम से न पढा सकता था। जहाँ तहाँ मन्त्र समझ में न आते थे।

एक दिन वह बहुत सी सुगन्धियाँ तथा माला आदि लेकर जेतवन गया। वहाँ शास्ता की पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशलक्षेम पूछने के बाद कहा—माणवक ! क्या मन्त्र पढाते हो ? मन्त्रो का अभ्यास बना है ?"

"भन्ते ! पहले मुझे मन्त्र अभ्यस्त थे। लेकिन जब से घर बसाया, तब से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। इसस मन्त्रो का अभ्यास नहीं रहा।"

शास्ता ने उसे कहा—"माणवक ! न केवल अभी, पहले भी जब तेरा चित्त स्थिर था, तभी तुझे मन्त्रो का अभ्यास था। रागादि से अस्थिर होने के समय तुझे मन्त्र समझ में नही आए।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते हुए बोधिसत्व ब्राह्मणों के एक प्रधान कुल में पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला में मन्त्र सीख प्रसिद्ध आचार्य्य हो वाराणसी में बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण कुमारो को वेद पढाने लगा।

उसके पास एक ब्राह्मण माणवक ने तीनो वेदों का अभ्यास किया। प्रत्येक पद तक में असंदिग्ध हो, उपाचार्य्य बन मन्त्र सिखाने लगा। वह आगे चलकर गृहस्थ हो गृहस्थी की चिन्ता से अस्थिर चित्त होने के कारण मन्त्रो का पाठ नही कर सकता था। आचार्य्य के पास जाने पर आचार्य्य ने पूछा—"माणवक ! क्यो तुझे मन्त्र अभ्यस्त हैं ?"

"गृहस्थ होने के समय से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। मैं मन्त्रों का पाठ नहीं कर सकता।"

ऐसा कहने पर आचार्य्य ने 'तात ! अस्थिर चित्त होने से अभ्यस्त मन्त्रो का भी प्रतिभान नही होता, स्थिर चित्त रहने पर विस्मृति होती ही नहीं' कह यह गाथाएँ कहा—

यथोदके आविले अप्पसन्ने
न पस्सति सिप्पिसम्बुकञ्च

सक्खर वालुक मच्छगुम्ब
एव ग्राविले हि चित्ते
न पस्सति ग्रत्तदत्थ परत्थ ॥
ययोदके ग्रच्छे विप्पसन्ने
सो पस्सति सिप्पिकसम्बुकस्सञ्च
सक्खर वालुक मच्छगुम्ब
एवं ग्रनाविले हि चित्ते।
सो पस्सति ग्रत्तदत्थ परत्थ ॥

[जिस प्रकार गँदले, मैले पानी में सीपी, शख, कंकर, बालू तथा मछलियो का समूह नही दिखाई देता, उसी प्रकार ग्रस्थिर चित्त होने पर ग्रात्मार्थ तथा परार्थ नही सूझता।

जिस प्रकार निर्मल, साफ पानी में सीपी, शख, कंकर, बालू तथा मछलियो का समूह दिखाई देता है, उसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर ग्रात्मार्थ तथा परार्थ सूझता है।]

ग्राविले कीचड से गँदले हुए, **ग्रप्पसन्ने** उसी गँदलपन के कारण मैले। **सिप्पिकसम्बुक,** सीपी ग्रौर शख। **मच्छगुम्ब** मछलियो का समूह। **एवं ग्राविले,** इसी प्रकार रागादि से ग्रस्थिर चित्त **ग्रत्तदत्थ परत्थ,** न ग्रात्मार्थ न परार्थ देखता है—यही ग्रर्थ है। **सो पस्सति,** इसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर वह ग्रादमी ग्रात्मार्थ तथा परार्थ देखता है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, ग्रार्य(-सत्यो) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

ग्रार्य(सत्यो) का प्रकाशन समाप्त होने पर ब्राह्मण कुमार स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुग्रा।

उस समय माणवक यही माणवक था। ग्राचार्य्य तो मैं ही था।

१८६. दधिवाहन जातक

"वण्णगन्धरसूपेतो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जो कथा पहले आ चुकी है,[1] *वैसी ही कथा है।* शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ! बुरे की सगत बुरी होती है, अनर्थकारी होती है। मनुष्यो के लिए कुसगति के दुष्परिणाम का क्या कहना? पूर्व समय में अस्वादिष्ट, अमधुर नीम के वृक्ष की सगति के कारण मधुर-रस वाला, दिव्य-रस वाला, जड, आम का वृक्ष भी अमधुर, कडुआ हो गया।" *इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।*

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय काशी राष्ट्र में चार ब्राह्मण भाई ऋषियो के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो, हिमवन्त प्रदेश में क्रम से पर्णशालाएँ बना रहने लगे। उनमें से जो ज्येष्ठ था वह मर कर शक्र देवता हुआ।

इस बात को जान वह बीच बीच में सातवें आठवे दिन अपने उन भाइयो की सेवा में आता। एक दिन उसने ज्येष्ठ तपस्वी को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते! आपको किस चीज की जरूरत है?"

पाण्डु-रोग से पीडित तपस्वी ने कहा—"मुझे आग की जरूरत है।" उसने उसे छुरी-कुल्हाडी दी। यह छुरी-कुल्हाडी दस्ते के हिसाब से जैसे दस्ता

---

[1] देखो गिरिदत्त जातक (१८४)

डाला जाता छुरी भी वन जाती, कुल्हाडी भी वन जाती। तपस्वी ने पूछा—"इसे लेकर कौन मेरे लिए लकडियाँ लाएगा ?"

शक्र ने कहा—"भन्ते ! जब आपको लकडी की जरूरत हो, इस कुल्हाडी को हाथ से रगड कर कहें, जाओ मेरे लिए लकडियाँ ला कर आग बना दो। यह लकडियाँ लाकर आग बना देगी।"

उसे छुरी-कुल्हाडी दे दूसरे से भी जाकर पूछा—"भन्ते ! तुम्हें क्या चाहिए ?" उसकी पर्णशाला के पास से हाथियो के आने जाने का रास्ता था। उसे हाथियो का उपद्रव था। इसलिए उसने कहा—"मुझे हाथियो के कारण दुःख होता है। उन्हे भगा दें।"

शक्र ने उसे एक ढोल लाकर दिया और कहा कि इस ओर बजाने से तुम्हारे शत्रु भाग जाएँगे, और इस ओर बजाने से मैत्री भाव युक्त हो चारो प्रकार की सेना सहित तुम्हारे पास आ जाएँगे। इतना कह और वह ढोल दे छोटे भाई के पास जा पूछा—"भन्ते ! तुम्हें क्या चाहिए ?"

उसकी भी पाण्डुरोग की प्रकृति थी। इसलिए उसने कहा कि मुझे दही चाहिए। शक्र ने उसे एक दही का घडा दिया और कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसे उलटना। उलटने पर यह महानदी बहाकर, बाढ़ लाकर तुम्हें राज्य भी लेकर दे सकेगा" इतना कह कर इन्द्र चला गया।

उस समय से छुरी-कुल्हाडी ज्येष्ठ भाई के लिए आग बना देती। दूसरा जब ढोल बजाता तो हाथी भाग जाते। छोटा दही खाता।

उस समय किसी उजडे हुए गाँव की जगह पर घूमते हुए एक सूअर ने एक दिव्य मणि-खण्ड देखा। उसने उस मणि-खण्ड को मुँह से उठा लिया। उसके प्रताप से वह आकाश में ऊँचे उडा। वहाँ से उसने समुद्र के बीच में एक द्वीप पर पहुँच सोचा—मुझे यहाँ रहना चाहिए। इसलिए वहाँ उतर एक गूलर के वृक्ष के नीचे सुख पूर्वक रहने लगा। एक दिन वह उस वृक्ष के नीचे उस मणि-खण्ड को अपने सामने रख सो गया।

काशी राष्ट्र का एक आदमी, जिसे उसके माता पिता ने निकम्मा समझ घर से निकाल दिया था, एक पत्तन गाँव पर पहुँचा। वहाँ उसने नाविको के पास नौकरी की। नौका पर चढ कर जा रहा था कि समुद्र के बीच में नौका टूट गई। वह एक लकडी के तख्ते पर बैठा उस द्वीप में पहुँचा। वहाँ फलमूल

खोजते हुए उसने उस सूअर को सोते हुए देख आहिस्ता से समीप जा मणि-खण्ड उठा लिया। उसके प्रताप से आकाश में उड गूलर के वृक्ष पर बैठ सोचने लगा—यह सूअर इसी के प्रताप से आकाश में घूमता हुआ यहाँ रहता है। मुझे पहले ही इसे मार कर मास खाकर पीछे जाना चाहिए।

उसने एक डण्डा तोड कर उसके सिर पर गिराया। सूअर ने जागकर जब मणि को न देखा तो वह काँपता हुआ इधर उधर दौडने लगा। वृक्ष पर बैठा हुआ आदमी हँसा। सूअर ने उसे देखा तो वृक्ष से सिर दे मारा, और वहीं मर गया।

उस आदमी ने उतर कर आग बनाई और उसका मास पका कर खाया। फिर आकाश में उडकर हिमालय के ऊपर से जाते हुए उस आश्रम को देख ज्येष्ठ तपस्वी के आश्रम पर उतरा। दो तीन दिन रह कर तपस्वी की सेवा की। वहाँ उसने छुरी-कुल्हाडी की महिमा देखी। 'इसे मुझे लना चाहिए' सोच उसने तपस्वी को मणि-खण्ड की महिमा बता कर कहा—भन्ते! यह मणि-खण्ड लेकर मुझे यह छुरी-कुल्हाडी दें। आकाश मे घूमने की इच्छा से उस तपस्वी ने मणि-खण्ड लेकर वह छुरी-कुल्हाडी दे दी।

उसने थोडी दूर जा छुरी-कुल्हाडी को हाथ से रगड कर कहा—"छुरी-कुल्हाडी! तपस्वी के सिर को काटकर मेरा मणि-खण्ड ले आ।" वह जाकर तपस्वी का सिर काट मणि-खण्ड ले आई।

उस आदमी ने छुरी-कुल्हाडी को एक जगह छिपा कर मँझले तपस्वी के पास जा, कुछ दिन रह, ढोल की महिमा देख मणि-खण्ड दे, भेरी ली। फिर पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवा छोटे तपस्वी के पास जा, दही के घड की महिमा देख पूर्वोक्त प्रकार से ही उसका भी सिर कटवा, मणि-खण्ड, छुरी-कुल्हाडी, ढोल तथा दही का घडा ले, आकाश मे उड कर वाराणसी के पास पहुँचा। वहाँ से उसने वाराणसी के राजा के पास एक आदमी के हाथ पत्र भेजा—युद्ध करें अथवा राज्य दें।

राजा सन्देश सुनते ही विद्रोही को पकडने के लिए निकल पडा। उसने ढोल के एक तल को बजाया। चारो प्रकार की सेना पहुँच गई। जब उसने देखा कि राजा ने अपनी सैना पंक्ति-बद्ध कर ली, उसने दही के घडे को छोडा। बडी भारी नदी वह निकली। जनसमूह दही में डूब गया और निकल न सका।

छुरी-कुल्हाडी पर हाथ फेर उसे आज्ञा दी कि जाकर राजा का सिर ले आए। छुरी-कुल्हाडी ने जाकर राजा का सिर ला पैरो पर रख दिया। एक भी आदमी हथियार न उठा सका।

उसने बडी सेना के साथ नगर में प्रवेश कर, अभिषेक करवा, दधिवाहन नाम से धर्मपूर्वक राज्य किया।

एक दिन वह महानदी में जाल की टोकरी फेंक कर खेल रहा था। कण्ण-मुण्ड सरोवर से देवताओ के उपभोग में आने वाला एक पका आम आकर जाल में लगा। जाल उठाने वालो ने उसे देख कर राजा को दिया। वह बडा था, घडे के प्रमाण का था, गोलाकार था, सुनहरी रग का था। राजा ने बनचरो से पूछा—"यह किसका फल है?" उन्होने बताया—आम्रफल। राजा ने उसे खाकर उसकी गुठली अपने उद्यान में लगवा, उसे दूध-पानी से सिंचवाया। पेड लगकर उसने तीसरे वर्ष फल दिया। आम के पेड का बहुत सत्कार होने लगा। दूध-पानी से उसे सीचते, सुगन्धित द्रव्यो के पञ्चागुलि-चिन्ह लगाते, और मालाओ के जाल फबते। सुगन्धित तेल के दीपक जलाते। यह कीमती कपड की कनातो से घिरा रहता। इसके फल मधुर तथा सुनहरी रग के होते।

जब दधिवाहन राजा दूसरे राजाओ के पास आम के फल भेजता तो इस डर से कि कही गुठली से पेड न लग जाए वह अकुर निकलने की जगह को काँटे से बींध देता। वे आम खाकर गुठली को रोपते। पेड न लगता। उहोने पूछा तो पता लगा कि क्या कारण है?

एक राजा ने अपने माली को बुलाकर पूछा कि क्या वह दधिवाहन राजा के आमो के रस को नष्ट कर उन्हें कड़ुवा बना सकेगा? उसने कहा—देव! हाँ। "तो जा" कह, उसे हजार देकर विदा किया।

उसने वाराणसी पहुँच राजा के पास खबर भिजवाई कि एक माली आया है। राजा न उसे बुलवाया। उसने जा राजा को प्रणान कर "तू माली है?" पूछने पर कहा—"देव! हाँ" और अपनी योग्यता का बखान किया। राजा ने आज्ञा दी—जा हमारे माली के साथ रह।

उस समय से वह दोना जने बाग की सार सभाल रखते। नए माली ने अकाल-फूल फुला कर और अकाल-फल लगाकर उद्यान को रमणीय बना दिया।

राजा ने उस पर प्रसन्न हो पुराने माली को निकाल उसीको उद्यान सौंप दिया। उसने उद्यान को अपने हाथ में जान, आम के वृक्ष के चारो ओर नीम और कड़वी लताएँ लगा दी। क्रम से नीम के वृक्ष बढे। जडो से जडें तथा शाखाओ से शाखाएँ इकट्ठी हो एक दूसरे में मिल गईं। उनके अस्वादिष्ट अमधुर रस के संसर्ग से वैसा मधुर फल वाला आम कड़वा हो गया। उसका रस नीम के पत्ते जैसा हो गया। यह देख कि आम के फल कड़वे हो गए, माली भाग गया। दधिवाहन ने उद्यान में जाकर आम का फल खाया, तो मुँह में डाला हुआ आम का रस उसे नीम की तरह कसैला लगा। उसे सहन न कर सकने के कारण, उसने खखार कर थूक दिया।

उस समय बोधिसत्त्व उस राजा के अर्थधर्मानुशासक थे। राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—

"पण्डित! इस वृक्ष की जो सेवा पहले होती थी, वह अब भी होती है। ऐसा होने पर भी इसका फल कड़वा हो गया है। क्या कारण है?" ऐसा कहते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वण्णगन्धरसूपेतो अम्बाय अहुवा पुरे,
तमेव पूज लभमानो केनम्बो कटुकप्फलो ॥

[यह आम पहले वर्ण और रस से युक्त था। इसकी वही सेवा होती है, तो भी इसका फल कैसे कड़वा हो गया।]

इसका कारण बताते हुए बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

पुचिमन्दपरिवारो अम्बो ते दधिवाहन!
मूल मूलेन ससट्ठ साखा साखा निसेवरे
असातसन्निवासेन तेनम्बो कटुकप्फलो ॥

[हे दधिवाहन! तेरा आम्र-वृक्ष नीम से घिरा है। उसकी जड जड से तथा शाखाएँ शाखाओं से सटी हैं। कड़वे के साथ होने से आम का फल कड़वा हो गया।]

पुचिमन्दपरिवारो, नीम के वृक्ष से घिरा हुआ साखा साखा निसेवरे, पुचिमन्द की शाखाएँ आम की शाखाओं को घेर हैं। असातसन्निवासेन अमधुर

नीम के साथ रहने से, तेन उस कारण से यह ***अम्बो कटुकप्फलो,*** *अस्वादिष्ट-*फल, कड़वे फल वाला हो गया।

राजा ने उसकी बात सुन सभी नीम तथा कड़वी लताएँ कटवा कर, जड़े उखडवा कर, चारो ओर से अमधुर बालू हटवा कर, उसकी जगह मधुर बालू डलवा कर, दुग्ध-जल से, शक्कर-जल से तथा सुगन्धित जल से आम की सेवा कराई।

मधुर रस के ससर्ग से वह फिर मधुर हो गया। राजा ने जो पहला माली था, उसीको उद्यान सौंप दिया। आयु भर जी कर वह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मै ही पण्डित अमात्य था।

१८७. चतुमट्ठ जातक

"उच्चे विटभिमारुय्ह..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढे भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन जब दोनो प्रधान शिष्य बैठे एक दूसरे से प्रश्नोत्तर कर रहे थे, एक बूढा उनके पास गया और उन दोनो में स्वय तीसरा बन बैठ कर बोला—भन्ते! हम भी आपसे प्रश्न पूछेगे। आप भी हमसे अपनी शकाएँ निवारण करें।

स्थविर उसके प्रति घृणा प्रकट करते हुए उठ कर चले गए। स्थविरो

से धर्म सुनने के लिए इकट्ठी हुई परिषद, सभा के टूटने पर, उठ कर शास्ता के पास गई। बुद्ध ने पूछा—असमय कैसे आए ? उन्होंने यह बात कही। शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र मौद्गल्यायन इनके प्रति जिगुप्सा दिखा बिना कुछ कहे चल देते हैं, पहले भी चल दिए थे।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व जगल में वृक्ष-देवता हुए। दो हस-बच्चे चित्तकूट पर्वत से निकल, उस वृक्ष पर बैठ चुगने जाते। फिर लौटते हुए भी वहीं विश्राम लेकर, चित्तकूट पर्वत पर जाते। समय बीतते बीतते उनकी बोधिसत्त्व के साथ मैत्री हो गई। आते जाते एक दूसरे से कुशलक्षेम पूछ धार्मिक कथा कह जाते।

एक दिन उनके वृक्ष के सिरे पर बैठ बोधिसत्त्व के साथ बातचीत करते हुए एक गीदड ने उस वृक्ष के नीचे खडे हो उन हस-बच्चो के साथ मन्त्रणा करते हुए पहली गाथा कही—

उच्चे विटभिमारुय्ह मन्तयव्हो रहोगता
नीचे ओरुय्ह मन्तव्हो मिगराजापि सोस्सति ॥

[ऊँचे वृक्ष पर चढ कर एकान्त में मन्त्रणा करते हो। नीचे उतर कर बात-चीत करो, जिससे मृगराज भी सुने।]

उच्चे विटभिमारुय्ह, स्वभाव से ही ऊँचे वृक्ष की एक ऊँची टहनी पर चढ कर। मन्तयव्हो मन्त्रणा करते हो, बातचीत करते हो। नीचे ओरुय्ह उतर कर नीचे स्थान पर खडे होकर मन्त्रणा करो। मिगराजापि सोस्सति, अपने को मृगराज करके कहता है।

हस-बच्चे घृणा कर उठ कर चित्तकूट ही चले गए। उनके चले जाने पर बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

यं सुपण्णो सुपण्णेन देवो देवेन मन्तये
किं तेत्थ चतुमट्ठस्स बिलं पविस जम्बुक ।।

[पक्षी पक्षी के साथ, देवता देवता के साथ मन्त्रणा करे तो हे चारो दोषो से युक्त गीदड तुझे क्या ? तू बिल में जा।]

सुपण्णो सुन्दर पङ्ख, सुपण्णेन दूसरे हस-बच्चे के साथ। देवो देवन उन दोनो को ही देवता करके कहता है। चतुमट्ठस्स शरीर से, जाति से, स्वर से तथा गुण से—इन चारो से मृष्ट वा शुद्ध यही शब्दार्थ है; किन्तु भावार्थ है अशुद्ध। लेकिन उसे प्रशंसा के बहाने निन्दा करते हुए यह कहा—चारो बुराइयो वाले तुझ गीदड़ को यहाँ क्या ? यही मतलब है। बिलं पविस बोधिसत्त्व ने डर दिखा उसे भगाते हुए यह कहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। बूढ़ा उस समय का श्रृगाल था। दो हस-बच्चे सारिपुत्र-मौद्गल्यायन थे। वृक्षदेवता तो मैं ही था।

१८८. सीहकोत्थुक जातक

"सीहङ्गुली सीहनखो. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दूसरे बहुश्रुत भिक्षुओ के धर्म बाँचते समय कोकालिक की भी धर्म बाँचने की इच्छा हुई—इस प्रकार सारी कथा उक्त प्रकार से ही विस्तार

पूर्वक कहनी चाहिए। उस समाचार को जान शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण प्रकट हो गया, वह पहले भी जाहिर हो गया था।" इतना कह शास्ता ने अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में पैदा हुए। वहाँ उन्हें एक शृगाली के साथ सहवास करने के फलस्वरूप एक पुत्र हुआ। उसकी अँगुलियाँ, उसके नख, उसके केसर, उसका रग, उसका आकार प्रकार पिता की तरह का था। स्वर माता की तरह का।

एक दिन वर्षा हो चुकने पर सिंहो के दहाड दहाड कर सिंह क्रीडा करते समय, उसने भी उनके बीच म दहाडने की इच्छा से शृगाल की तरह आवाज की। उसकी बोली सुनकर सब सिंह चुप हो गए। सिंह का अपना एक स्वजातीय पुत्र था। उसने उसकी आवाज सुनकर पूछा—"तात ! यह सिंह वर्ण आदि से तो हमारे ही जैसा है, लेकिन इसका स्वर दूसरी तरह का है। यह कौन है ?" ऐसा प्रश्न करते हुए उसने यह गाथा कही—

> सीहङ्गुली सीहनखो सीहपादपतिट्ठितो
> सो सीहो सीहसङ्घम्हि एको नदति अञ्ञथा ॥

[सिंह की सी अँगुलियाँ, सिंह के से नाखून और सिंह के से पैरो वाला वह सिंह सिंहो की जमात में दूसरी तरह की आवाज करता है।]

सीहपादपतिट्ठितो, सिंह के पैरो ही पर प्रतिष्ठित। एको नदति अञ्ञथा, अकेला दूसरे सिंहो से भिन्न शृगाल-स्वर से बोलता हुआ अन्यथा बोलता है।

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा—"तात ! यह तेरा भाई शृगाली का लडका है। इसका रूप मेरे जैसा है, आवाज माता जैसी।" फिर शृगाल-पुत्र को बुलाकर कहा—"तात ! अब से तू जब तक यहाँ रहे अधिक मत बोलना।

यदि फिर ऊँचे बोलेगा, तो तेरा शृगाल होना जान लेंगे।" इस प्रकार उपदेश देते हुए दूसरी गाथा कही—

मा त्वं नदि राजपुत्त ! अप्पसद्दो वने वस,
सरेन खो तं जानेय्युं न हि ते पेत्तिको सरो ॥

[राजपुत्र ! तू ऊँचे स्वर मे मत बोल। धीरे बोलता हुआ वन में रह। तेरे स्वर से जान लेंगे, (कि तू गीदड है) क्योकि तेरा स्वर पिता का स्वर नहीं।]

राजपुत्त, मृगराज सिंह का पुत्र। इस उपदेश को सुनकर उसने फिर जोर से बोलने की हिम्मत नहीं की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शृगाल कोकालिक था। स्वजातीय पुत्र राहुल। मृगराज तो मैं ही था।

१८६ सीहचम्म जातक

"नेतं सीहस्स नदितं ..." यह भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह (भिक्षु) उस समय स्वर से सून पाठ करना चाहता था। शास्ता ने वह समाचार सुन पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कृषक कुल में पैदा हो बडे होने पर खेती करके जीविका चलाते थे।

उस समय एक बनिया गधे पर बोझा लाद कर व्यापार करता हुआ घूमता था। वह जहाँ जहाँ जाता वहाँ वहाँ गधे की पीठ पर से सामान उतार, गधे को सिंह की खाल पहना, धान तथा जौ के खेत में छोड़ देता। खेत की रखवाली करने वाले उसे देख, शेर समझ, पास न जा सकते थे।

एक दिन उस बनिए ने एक ग्राम-द्वार पर ठहर प्रात काल का भोजन पकाते समय गधे को सिंह की खाल पहना जौ के खेत में छोड़ दिया। खेत की रखवाली करने वालो ने उसे शेर समझ पास न जा सकने के कारण घर जाकर खबर दी। सारे ग्रामवासी आयुध ले, शङ्ख फूंकते तथा ढोल बजाते हुए खेत के समीप पहुँच चिल्लाने लगे। गधे ने मृत्युभय से डर गधे की तरह आवाज की। वह गधा है जान बोधिसत्त्व ने पहली गाथा कही—

नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो,
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो ॥

[न यह शेर की आवाज है, न व्याघ्र की, न चीते की, शेर की खाल पहन कर दुष्ट गधा चिल्लाता है।]

जम्मो, नीच।

ग्रामवासयो ने भी यह जान कि वह गधा है, उसकी हड्डियाँ तोडते हुए उसे पीटा और सिंह की खाल लेकर चले गए। उस बनिए ने आकर जब विपत्ति में पडे उस गधे को देखा तो दूसरी गाथा कही—

चिरम्पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवं,
पारुतो सीहचम्मेन रवमानोव दूसयि ॥

[सिंह की खाल पहन कर तू चिरकाल तक हरे जौ खाता। हे गधे तूने बोल कर ही अपने को नष्ट किया।]

तं निपात मात्र है। यह गद्रभो अपने गधेपन को छिपा सीहचम्मेन पारुतो चिरम्पि देर तक हरितं यवं खादेय्य अर्थ है। रवमानोव दूसयि अपने गधे की

आवाज करके ही अपने को विपत्ति में डाला। इसमें सिंह की खाल का दोष नहीं।

उसके ऐसा कहते ही गधा वहीं गिर कर मर गया। बनिया भी उसे छोड़कर चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गधा कोकालिक था। पण्डित काश्यप तो मैं ही था।

१९०. सीलानिसंस जातक

"पस्स सद्धाय सीलस्स...." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक श्रद्धावान् उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रद्धावान् प्रसन्नचित्त आर्य-श्रावक था। एक दिन जेतवन जाते समय उसने शाम को अचिरवती नदी के किनारे पर जाकर देखा कि नाविक नौकाओं को किनारे पर छोड़ धर्म सुनने के लिए चले गए। वह घाट पर नौका न देख, बुद्ध की याद से मन को प्रसन्न कर नदी में उतर पड़ा। पाँव पानी में नहीं भीगे। पृथ्वीतल पर चलते हुए की तरह बीच में पहुँचने पर उसने लहर को देखा। उसकी बुद्ध-भक्ति मन्द पड़ गई थी; इससे उसके पैर डूबने लगे।

उसने बुद्ध-भक्ति को दृढ़ कर पानी पर ही चल, जेतवन में प्रवेश कर शास्ता को प्रणाम किया। वह एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बात-चीत करते हुए पूछा—"उपासक ! क्या रास्ते में आते हुए अधिक कष्ट तो

नहीं हुआ ?" "भन्ते ! बुद्ध की याद से मन को प्रीति-युक्त कर, पानी के
प्रतिष्ठित हो मैं पृथ्वी को मर्दन करते हुए की तरह आया हूँ।" "उ
न केवल तूने ही बुद्ध के गुणों का स्मरण कर रक्षा प्राप्त की है। प
समुद्र में नौका के टूटने पर उपासकों ने बुद्ध के गुणों की याद कर रक्ष
की।" इतना कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय में एक स्रोतापन्न
श्रावक, एक नाई गृहस्थ के साथ नौका पर चढ़ा। उस नाई की भार्या
नाई को उपासक को सौंपा—आर्य ! इसके सुख दुःख का भार आप प

सातवें दिन वह नौका समुद्र के बीच में टूट गई। वे दोनों जने एक
से चिमटे, एक द्वीप पर पहुँचे। वह नाई पक्षियों को मार कर, पका क
के समय उपासक को भी देता। वह उपासक 'मुझे नहीं चाहिए' क
न खाता। वह सोचता त्रिरत्न की शरण को छोड़ कर हमारे लिए यह
दूसरा सहारा नहीं। उसने त्रिरत्न के गुणों का स्मरण किया।

उसके स्मरण करते करते उस द्वीप के नागराज ने अपने शरीर की
नौका बनाई। समुद्र-देवता नौका चलाने वाला था। नौका सात रत
भरी गई। तीन मस्तूल थे। इन्द्रनीलमणि की जोतें। सोने के चप्पू।
देवता ने नौका में खड़े होकर घोषणा की—क्या कोई जम्बूद्वीप जाने
है ? उपासक बोला—हम जाएँगे ? तो आ नौका पर चढ़। उसने
पर चढ़ नाई को आवाज दी। समुद्रदेवता ने कहा—तुझे ही जाना मिल
इसे नहीं। क्या कारण है ? कारण यही है कि यह शीलवान् नहीं है
नौका तेरे लिए लाया हूँ। इसके लिए नहीं।

"रहो। मैं अपने दिए दान का, रक्षा किए गए शील का, तथा भावन
गई भावना का इसे हिस्सेदार बनाता हूँ।"

"स्वामी ! मैं अनुमोदन करता हूँ।"

"अब ले चलूँगा" कह देवता ने उसे भी चढ़ा, दोनों जनों को समुद्र
निकाल, नदी से वाराणसी पहुँचा अपने प्रताप से उन दोनों के घर पर धन प

दिया। फिर, 'पण्डित की ही सगति करनी चाहिए। यदि इस नाई की इस उपासक के साथ सगति नहीं होती, तो यह समुद्र के बीच म ही नष्ट हो जाता, कहते हुए देवता न पण्डित की सगति की महिमा बखानते हुए यह दो गाथाएँ कही—

पस्स सद्धाय सीलस्स चागस्स च अय फल
नागो नावाय वण्णेन सद्ध वहति उपासक ॥
सब्भिरेव समासेय सब्भि कुब्बेथ सन्यव
सत हि सन्निवासेन सोत्थि गच्छति नहापितो ॥

[श्रद्धा, शील और त्याग के इस फल को देखो। नाग नौका की शकल बना कर श्रद्धावान् उपासक का वहन करता है। सत्पुरुष के साथ रहे, सत्पुरुष के ही साथ दोस्ती कर। सत्पुरुष के साथ रहने से नाई कल्याण को प्राप्त होता है।]

पस्स किसी विशष को सम्बोधन न कर केवल देखने को कहता है। **सद्धाय** लौकिक तथा लोकोत्तर श्रद्धा से। शील में भी इसी प्रकार। **चागस्स** दान का त्याग तथा चित्तमैल का त्याग। **अय फल** यह फल। गुण या परिणाम अर्थ है। अथवा त्याग के फल को देखो। यह नाग नौका की शकल में, यह अर्थ भी समझना चाहिए। **नावाय वण्णेन** नौका के आकार से। **सद्ध** तीन रत्नो में प्रतिष्ठित श्रद्धा। **सब्भिरेव** पण्डितो के ही साथ। **समासेय** एक साथ रह निवास कर यही अर्थ है। **कुब्बेथ**, कर। **सन्थव** मित्रता, तृष्णा-पूर्ण दोस्ती तो किसी से न करनी चाहिए। **नहापितो**—नाई गृहस्थ। **न्हापितो** यह भी पाठ है।

इस प्रकार समुद्र देवता आकाश में ठहर, धर्मोपदेश दे तथा नसीहत कर, नागराजा को साथ ले अपने विमान को ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। आर्य-सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उपासक सकृदागामीफल म प्रतिष्ठित हुआ। तब स्रोतापन उपासक परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ। नागराजा सारिपुत्र। समुद्रदेवता तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

५. रुहक वर्ग

१९१. रुहक जातक

"अम्भो रुहक ! छिन्नापि .." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पहली स्त्री से लुभाए जाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा आठवें परिच्छेद की इन्द्रिय जातक[1] में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—"भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी इसने तुझे राजा सहित परिषद के बीच में लज्जित कर घर से बाहर निकलने के योग्य नहीं रखा।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। बड़े होने पर, पिता के मरने के बाद राजा बन धर्म से राज्य करने लगे। उसका रुहक नाम का पुरोहित था। रुहक की पुराणी नाम की भार्य्या थी।

राजा ने ब्राह्मण को, साज से सजाकर एक घोड़ा दिया। वह उस घोड़े पर चढ़ कर राजा की सेवा में आता था। उसे अलङ्कृत घोड़े की पीठ पर आते जाते देखकर जहाँ तहाँ खड़े आदमी घोड़े की प्रशंसा करते थे—ओह !

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)

अश्व का रूप कैसा है ! ओह ! अश्व कितना सुन्दर है !

उसने घर आ प्रासाद पर चढ भार्य्या को बुलाया—भद्रे ! हमारा घोडा बडा सुन्दर लगता है। दोनो ओर खडे आदमी हमारे घोडे की ही प्रशसा करते हैं।

वह ब्राह्मणी थोडी धूर्त थी। उसने उसे कहा—आर्य ! तू घोडे के सौन्दर्य्य के कारण को नही जानता। यह घोडा अपने साज के कारण शोभा देता है। यदि तू भी अश्व की तरह सुन्दर लगना चाहता है, तो घोडे का साज पहन, बाजार में उतर, अश्व की तरह पैरो की टाप देते हुए, जाकर राजा को देख। राजा भी तेरी प्रशसा करेगा। आदमी भी तेरी ही प्रशसा करेगे।

उस पगले ब्राह्मण ने उसकी बात सुन, अमुक कारण से यह ऐसा कहती है न समझ, उसकी बात में विश्वास कर वैसा किया। जो जो देखते वे वे मजाक करते हुए कहते—आचार्य्य ! खूब शोभा देते हैं।

राजा न उससे पूछा—"आचार्य्य ! क्या पित्त प्रकोप हुआ है ? क्या तू पगला हो गया है ?" इस प्रकार लज्जित किया।

उस समय ब्राह्मण ने सोचा 'मैंने अनुचित किया।' वह लज्जित हुआ। ब्राह्मणी से क्रुद्ध हो, 'उसने मुझे राजा सहित सेना के बीच में लज्जित किया' सोच उसे पीट कर घर से निकालने के लिए घर गया। धूर्त ब्राह्मणी को जब मालूम हुआ कि वह उस पर क्रोधित होकर आया है, तो वह पहले ही छोटे दरवाजे से निकल राज-महल में जा पहुँची। वह चार पाँच दिन वही रही। राजा ने वह समाचार जान पुरोहित को बुला कर कहा—

"आचार्य्य ! स्त्री से दोष होता ही है। ब्राह्मणी को क्षमा करना चाहिए।" उसे क्षमा दिलाने के लिए पहली गाथा कही—

> अम्भो रुहक छिन्नापि जिया सधीयते पुन,
> सन्धीयस्सु पुराणिया मा कोधस्स वस गमि ॥

[भो रुहक ! धनुष की डोरी टूट कर फिर भी जुड जाती है। पुराणि के साथ मेल कर लो। क्रोध के वशीभूत मत हो।]

संक्षेपार्थ—भो रुहक ! छिन्नापि धनुप की डोरी जुड ही जाती है। इसी प्रकार तू भी पुराणी के साथ सन्धीयस्सु कोधस्स वस मा गमि।

उसे सुनकर रुहक ने दूसरी गाथा कही—

विज्जमानासु मरुवासु विज्जमानेसु कारिसु
अञ्ञ जिय करिस्साम अलञ्ञेव पुराणिया ॥

[मरुव नाम की छाल के रहते और बनाने वालो के रहते मैं दूसरी डोरी बनवा लूँगा। मुझे पुरानी की जरूरत नही।]

महाराज ! मरुव छाल और डोरी बनाने वाले मनुष्यों के रहते दूसरी डोरी बनवा लूँगा। इस टूटी हुई पुरानी डोरी की मुझे जरूरत नही। ऐसा कह उसे निकाल दूसरी ब्राह्मणी को ले आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न चित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पुराणि पूर्व-भार्य्या थी। रुहक उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। बाराणसी राजा तो मै ही था।

१६२. सिरिकालकण्णि जातक

"इत्थी सिया रूपवती " यह सिरिकालकण्णि जातक महाउम्मग्ग जातक[1] में आएगी।

---

[1] महाउम्मग्ग जातक (५४६)

१९३. चुल्लपदुम जातक

"अयमेव सा अहमपि सो अनञ्ञो. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए, उद्विग्नचित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा उम्मदन्ति जातक[1] में आयेगी। शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है?"

"भगवान्! सचमुच।"

"तुझे किसने उद्विग्न किया है?"

"भन्ते! मै एक अलङ्कृत सजीधजी स्त्री को देख कर आसक्त होने के कारण उद्विग्न हुआ हूँ।"

"भिक्षु! स्त्री अकृतज्ञ होती है, मित्रद्रोही होती है, कठोर हृदया होती है। पुराने पण्डित दाहिनी जाँघ का लहू पिलाकर भी, जीवनदान देकर स्त्री का चित्त न जीत सके।"

शास्ता ने यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। नामकरण के दिन उसका नाम पदुम-कुमार रक्खा गया। उसके और छ भाई थे। यह सातो जने क्रम से बडे हो, विवाह कर राजा के मित्रो की तरह रहने लगे।

---

[1] उम्मदन्ति जातक (५२७)

एक दिन राजा ने राजागण में खडे होकर उन्हें बडे ठाट बाट से राजा की सेवा में आते देख, सोचा—यह मुझे मारकर राज्य भी ले सकते हैं। इस शङ्का से सशङ्कित हो उसने उन्हें बुलाकर कहा—तात ! तुम इस नगर में नही रह सकते। दूसरी जगह जाओ। मेरे मरने पर आकर कुल-प्राप्त राज्य ग्रहण करना।

वे पिता का कहना मान रोते पीटते घर गए। अपनी अपनी स्त्रियो को ले, जहाँ कही जाकर जीवन बिताने के लिए नगर से निकले। रास्ते चलते हुए वे एक कान्तार में पहुँचे। वहाँ खाना पीना न मिला। भूख न सह सकने के कारण उन्होने सोचा, जीते रहेंगे तो स्त्रियाँ मिलेंगी। सबसे छोटे भाई की स्त्री को मारकर उसके तेरह टुकडे कर उसका मास खाया।

बोधिसत्त्व ने अपने और भार्य्या के लिए मिले दो हिस्सो में से एक रख छोडा, एक को दोनो ने खाया। इस प्रकार छ दिनो में छ स्त्रियो का मास खाया गया। बोधिसत्त्व ने एक एक करके छ दिनो में छ टुकडे रख छोडे। सातवें दिन 'बोधिसत्त्व की भार्य्या को मारेंगे' कहने पर बोधिसत्त्व ने वे छ टुकडे उन्हें देकर कहा कि आज यह खाओ। कल देखेंगे।

जिस समय वह मास खाकर सो रहे थे, बोधिसत्त्व अपनी भार्य्या को लेकर भाग निकले। उसने थोडी दूर चलकर कहा स्वामी ! चल नही सकती हूँ। बोधिसत्त्व उसे कन्धे पर लेकर सूर्य्योदय के समय कान्तार से निकले। सूर्य्योदय होने पर उसने कहा—स्वामी ! प्यास लगी है। बोधिसत्त्व ने कहा—भद्रे ! पानी नही है। लेकिन बार बार माँगने पर बोधिसत्त्व ने अपनी दाहिनी जाँघ में तलवार का प्रहार कर कहा—भद्रे ! पानी नहीं है। यह मेरी दाहिनी जाँघ का लहू पी ले। उसने वैसा किया।

वे क्रम से महानदी पर आए। पानी पी, नहा कर फलमूल खाते हुए, आराम करने की एक जगह पर विश्राम किया। फिर गङ्गा के मोड की जगह पर आश्रम बनाकर रहने लगे।

गङ्गा के ऊपर के हिस्से में किसी राज्यापराधी चोर को हाथ पाँव तथा नाक काट कर डोरे में बिठा गङ्गा में बहा दिया गया था। वह बहुत चिल्लाता हुआ उस जगह आ लगा। बोधिसत्त्व ने उसकी करुणापूर्ण रोने पीटने की आवाज सुन 'मेरे रहते कोई दुःख प्राप्त प्राणी नष्ट न हो' सोच गङ्गा किनारे

जा, उसे उठा आश्रम पर ला, कापाय से धो लेप कर उसके जखमो की चिकित्सा की। उसकी भार्य्या घृणा से उस पर थूकती हुई फिरती थी—इस प्रकार के लुञ्जे को गङ्गा से लाकर उसकी सेवा करते है !!!

उसके जखम ठीक होने पर बोधिसत्त्व उसे और अपनी भार्य्या को आश्रम पर छोड, जगल से फलमूल लाकर उसका तथा भार्य्या का पालन करने लगे।

उनके इस प्रकार रहते हुए वह स्त्री उस लुञ्जे से आकृष्ट हो गई। उसने उसके साथ अनाचार किया। फिर किसी उपाय से बोधिसत्त्व को मार डालना चाहिए, सोच बोली—"स्वामी ! मैंने, तुम्हारे कन्धे पर बैठे हुए जिस समय कान्तार से निकल रही थी इस पर्वत को देख कर एक मिन्नत मानी थी—हे पर्वतनिवासी देवता ! यदि मैं और मेरा स्वामी सकुशल जीते निकल जाएँगे तो मैं तुम्हारी बलि चढाऊँगी। सो, वह देवता जिसकी मिन्नत मानी थी तग करता है। उसकी बलि दे।"

बोधिसत्त्व उसकी माया नही जानते थे। उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और बलिकर्म तैयार कर उससे बलि-पात्र उठवा पर्वत पर चढे।

उस स्त्री ने बोधिसत्त्व से कहा—"स्वामी ! देवता से भी बढकर तुम ही उत्तम देवता हो। इसलिए पहले तुम्हें ही वन-पुष्पो से पूज, प्रदक्षिणा कर, वन्दना कर पीछे देवता की बलि दूँगी।" उसने बोधिसत्त्व को प्रपात की ओर कर वन-पुष्पो से पूजा की। फिर प्रदक्षिणा कर, प्रणाम करने वाली की तरह हो, पीछे जा, पीठ में धक्का दे, प्रपात से गिरा दिया। 'शत्रु की पीठ देख ली' सोच सन्तुष्ट हो, वह पर्वत से उतर लुञ्जे के पास गई। बोधिसत्त्व भी प्रपात के किनारे से पर्वत से गिरते हुए, एक गूलर के वृक्ष पर पत्तो से ढके कण्टकरहित गुम्ब में जा लगे। पर्वत से नीचे उतरने में असमर्थ थे। वह गूलर खाकर शाखाओ के बीच में बैठे रहे।

एक गोह, जिसका शरीर बडा था पर्वत के नीचे से उस गूलर के पेड पर चढ फल खाता था। वह उस दिन बोधिसत्त्व को देखकर भाग गया। अगले दिन आया और एक ओर से फल खाकर चला गया। इस प्रकार बार बार आने से जब वह बोधिसत्त्व का विश्वासी हो गया तो उसने पूछा—"तू इस जगह कैसे आया ?" "इस कारण से" बताने पर उसने कहा—"तो मत डर।" उसने बोधिसत्त्व को अपनी पीठ पर लिटा, उतार कर जगल से निकल, महामार्ग

पर ले जाकर कहा—"इस मार्ग से जा।" बोधिसत्व को उत्साहित कर वह स्वय जगल में चला गया।

बोधिसत्व एक गामडे में जाकर रहने लगे। वहाँ रहते हुए, पिता के मरने का समाचार मिला। वह बाराणसी पहुँच, कुलागत राज्य पर अधिकार कर, पदुमराजा नाम से, दस राजधर्मों से विरुद्ध न जा धर्म से राज्य करने लगे। चारो नगर-द्वारो पर, नगर के बीच में तथा महल के द्वार पर छ दानशालाएँ बनवा प्रति दिन छ हजार खर्च कर दान देते।

वह पापी स्त्री भी उस लुञ्जे को कन्धे पर बिठा जगल से निकल बस्तियो मे भिक्षा माँग कर यागु-भात इकट्ठा कर उस लुञ्जे को पोसती थी। उससे यदि कोई पूछता कि यह तेरा क्या लगता है, तो वह उत्तर देती—"मैं इसके मामा की लडकी हूँ और यह मेरी बुआ का लडका है। मैं इसीको दी गई। सो मैं अपने स्वामी को—जो इस तरह दण्डित भी किया गया है—उठाए लिए फिर कर, भीख माँग कर पालती हूँ।" मनुष्यों ने समझा—यह पतिव्रता है। उसके बाद और भी यवागु भात देने लगे। दूसरो ने कहा—"तू इस तरह मत घूम। पदुमराज बाराणसी में राज्य करता है। सारे जम्बूद्वीप को उद्वेलित कर दान देता है। वह तुझे देखकर प्रसन्न होगा। बहुत धन देगा।" उन्होने उसे एक बेत की टोकरी दी और कहा कि अपने स्वामी को इसमें बिठा कर ले जा। वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को बेत की टोकरी में बिठा, टोकरी को उठा, बाराणसी पहुँच वहाँ दानशालाओ में खाती हुई घूमने लगी।

बोधिसत्त्व अलङ्कृत हाथी के कन्धे पर बैठ, दानशाला जा, वहाँ आठ या दस को अपने हाथ से दान देकर घर जाते। वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को टोकरी में बिठा, टोकरी उठा, राजा के रास्ते में खडी हुई। राजा ने देखकर पूछा—"यह क्या है?"

"देव! एक पतिव्रता है।"

उसे बुलवा कर, पहचान कर, लुञ्जे को टोकरी से निकलवा कर पूछा—"यह तेरा क्या लगता है?"

"देव! यह मेरी बुआ का लडका है। कुलवालो ने मुझे इसे सौंपा है। *यह मेरा स्वामी है।*"

मनुष्य उनके बीच के भेद को न जानते थे। वे उस अनाचारिणी की

प्रशंसा करने लगे—ओह! पतिदेवता!

राजा ने फिर उससे पूछा—"तुझे कुलवालों ने इसे सौंपा है? यह तेरा स्वामी है?"

उसने राजा को न पहचानते हुए वीर बन कर कहा—"देव! हाँ।"

तब राजा ने उसे पूछा—"क्या यह वाराणसी राजा का पुत्र है? क्या तू पदुमकुमार की भार्य्या अमुक राजा की अमुक नाम की लड़की नहीं है? मेरी जाँघ का लहू पीकर इस लुञ्जे के प्रति आसक्त हो मुझे प्रपात से गिरा दिया। वह तू अब अपने सिर पर मृत्यु ले मुझे मरा समझ यहाँ आई है? मैं जीता हूँ।" इतना कह, अमात्यों को बुला राजा ने कहा—"अमात्यो! क्या मैंने तुम लोगों के पूछने पर यह नहीं कहा था कि मेरे छ छोटे भाइयों ने छ स्त्रियों को मार कर मास खाया। लेकिन मैंने अपनी स्त्री को सकुशल गङ्गा किनारे लाकर एक आश्रम में रहते हुए, एक दण्ड-प्राप्त लुञ्जे को (पानी से) निकाल सेवा की। उस स्त्री ने उस आदमी के प्रति आसक्त हो मुझे पर्वत पर से गिरा दिया। मैं अपने मैत्रीचित्त के कारण नहीं मरा। जिसने मुझे पर्वत से गिराया था, वह कोई और नहीं थी, यही दुराचारिणी थी। जो दण्ड-प्राप्त लुञ्जा था, वह भी कोई दूसरा न था, यही था।"

यह कह यह गाथाएँ कहीं—

> अयमेव सा अहमपि सो अनञ्ञो,
> अयमेव सो हत्थच्छिन्नो अनञ्ञो;
> यमाह कोमारपती ममन्ति,
> वज्झित्थियो नत्थि इत्थीसु सच्चं॥
>
> इमञ्च जम्मं मुसलेन हन्त्वा,
> लुद्दं छवं परदारूपसेविं;
> इमिस्सा च न पापपतिब्बताय,
> जीवन्तिया छिन्दथ कण्णनासं॥

[यही वह है। मैं भी वही हूँ। यह हाथ कटा भी वही है। दूसरा नहीं है जिसे 'यह मेरा कौमारपति' कहती है। स्त्रियाँ वध्य करने योग्य हैं। उनमें सत्य नहीं होता।

इस नीच-लोभी, मृतसदृश, पराई स्त्री का सेवन करने वाले को मूसल से मार डालो। और इस पापी पति-व्रता के जीते जी (इसके) कान नाक काट डालो।]

यमाह् कोमारपती ममं, जिसे यह मेरा कोमारपति, जिसे मैं कुल द्वारा सौंपी गई, स्वामी कहती हूँ। अयमेव सो न अञ्ञो। यमाहु कुमारपति, यह भी पाठ है। यही पुस्तको मे लिखा है। उसका भी यही अर्थ है। वचन-भेद मात्र है। जो राजा ने कहा, वही यहाँ आ गया। वज्झित्थियो, स्त्रियाँ वध्य होती है, बध करने के योग्य ही होती हैं। नत्थि इत्थीसु सच्चं, इनका स्वभाव एक नही रहता। इमञ्च जम्मं, यह उन दोनो को दण्डाज्ञा देने के लिए कहा।

जम्मं नीच। मुसलेन हन्त्वा, मूसल से मारकर, पीटकर, हड्डियों को तोडकर, चूर्ण विचूर्ण करके। लुद्दं कठोर। छवं निर्गुण होने से निर्जीव मृत-सदृश। इमिस्सा च नं, इसमें नं निपातमात्र है। इसके पापपतिब्बताय अनाचारिणी दुश्शीला के जीवन्तियाव कण्णं नासं छिन्दथ।

बोधिसत्त्व ने क्रोध को न सम्भाल सकने के कारण उनको ऐसे दण्ड की आज्ञा दे दी; लेकिन वैसा करवाया नही। क्रोध को कम करके उसने टोकरी को उसके सिर पर ऐसे कसकर बँधवाया कि वह उतार न सके। फिर उस लुञ्जे को उसमें फिकवा उसे अपने राज्य से निकलवा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय छ भाई कोई स्थविर थे। भार्य्या चिञ्चामाणविका थी। लुञ्जा देवदत्त था। गोहराज आनन्द था। पदुमराज तो मैं ही था।

१९४. मणिचोर जातक

"न सन्ति देवा पवसन्ति नून..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय वध का प्रयत्न करने वाले देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कर कि देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्न करता है, 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी देवदत्त ने मेरे वध का प्रयत्न किया ही है, लेकिन सफल नहीं हुआ" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वाराणसी के समीप के एक गामडे में गृहपति कुल में पैदा हुए। उसके बडे होने पर उसके लिए वाराणसी से एक लडकी लाई गई। वह प्रिया थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी देवअप्सराओं के समान वा पुष्पित लता के समान। वह मस्त किन्नरी की तरह क्रीडा करने वाली थी। नाम था सुजाता। पतिव्रता थी; सदाचारिणी थी और थी कर्तव्यपरायणा। पति की सेवा तथा सास ससुर की सेवा वह नित्य करती थी। वह बोधिसत्त्व को प्रिय थी, मन के अनुकूल थी। वे दोनो प्रसन्नतापूर्वक एक चित्त हो मेल से रहते थे।

एक दिन सुजाता ने बोधिसत्त्व से कहा—मैं मातापिता को देखना चाहती हूँ। उसने कहा—भद्रे! अच्छा पर्याप्त पाथेय तैयार करो। खाद्य-पकवान पकवा, खाद्य आदि गाडी पर रखवा, गाडी को हाँकता हुआ वह स्वयं आगे बैठा। वह पीछे बैठी। नगर के समीप पहुँच गाडी खोल नहा कर उन्होंने खाया। फिर बोधिसत्त्व ने गाडी जोती और स्वयं आगे बैठा।

सुजाता कपडे वदल अलङ्कृत हो पीछे बैठी। जिस समय गाडी ने नगर में प्रवेश किया, उसी समय हाथी के कन्धे पर बैठ नगर की प्रदक्षिणा करता हुआ वाराणसी नरेश उधर आ निकला। सुजाता उतर कर गाडी के पीछे पीछे पैदल चल रही थी। राजा ने उसे देख, उसके सौन्दर्य्य पर ऐसे मुग्ध हो मानो वह उसकी आँखें खींच ले रहा हो, एक अमात्य को भेजा कि पता लगाए कि उसका स्वामी है वा नहीं? उसने जाकर पता लगाया कि उसका स्वामी है और आकर निवेदन किया—"देव! वह विवाहिता है। गाडी में बैठा हुआ आदमी उसका स्वामी है।"

राजा अपनी आसक्ति को हटाने में असमर्थ था। उसने कामातुर हो सोचा, किसी उपाय से इस आदमी को मरवा कर स्त्री को लूँगा; और एक आदमी को बुलाकर कहा—"अरे! यह चूडामणि ले जाकर रास्ते चलते हुए की तरह जाते हुए इसे इस आदमी की गाडी में फेंक कर आओ।" उसे चूडामणि देकर भेजा। उसने "अच्छा" कह उसे ले जाकर गाडी में डाल आकर कहा—"देव! मैंने डाल दी।" राजा ने कहा—मेरी चूडामणि खो गई। लोगो ने शोर मचा दिया। राजा ने आज्ञा दी—"सब दरवाजो को बन्द कर, रास्ते रोक कर चोर का पता लगाओ।" राजपुरुषो ने वैसा ही किया। नगर एक सिरे से क्षुब्ध हो गया। एक जन आदमियो को लेकर बोधिसत्त्व के पास जा बोला—"अरे! गाडी रोको। राजा की चूडामणि खो गई है। गाडी की तलाशी लेगे।" उसने गाडी की तलाशी लेते हुए अपनी रक्खी हुई मणि उठा, बोधिसत्त्व को पकड, 'यह मणि-चोर है' कहते हुए हाथों और पाँवों से पीट, उसके हाथो को पिछली तरफ बाँध उसे ले जाकर राजा के सामने पेश किया—यह मणि-चोर है। राजा ने आज्ञा दी—इसका सिर काट डालो।

राजपुरुष उसे चार चार बेतो से पीटते हुए नगर से बाहर ले गए।

सुजाता भी गाडी छोड दोनो हाथ उठा 'मेरे कारण स्वामी इस दुःख को प्राप्त हुए' कह रोती पीटती उसके पीछे पीछे चली। राज पुरुषो ने बोधिसत्त्व का सिर काटने के लिए उसे सीधे लिटाया। उसे देख सुजाता ने अपने सदाचार का ध्यान कर "मालूम होता है इस लोक में कोई ऐसा देवता नही है जो पापी दुस्साहसियो को सदाचारियो पर अत्याचार करने से रोक सके" कह, रोते पीटते पहली गाथा कही—

न सति देवा पवसन्ति नून
नहनून सन्ति इध लोकपाला
सहसा करोन्तान असञ्ञतान
नहनून सन्ति पटिसेधितारो ॥

[असयमी, दुस्साहसिक दुष्कर्म करने वालो को रोकने वाले न देवता हैं (यदि है तो समय पर चले जाते है) न ही यहाँ लोकपाल हैं—उन्हें रोकने वाला कोई नही ।]

न सन्ति देवा इस लोक में सदाचारियो की देख भाल करने वाले तथा पापियो को रोकने वाले देवता नही है। **पवसन्ति नून**, अथवा इस प्रकार के मौको पर वह निश्चय से प्रवास को चले जाते है। **इध लोकपाला** इस लोक में लोकपाल कहलाने वाले श्रमण-ब्राह्मण भी सदाचारियो पर अनुग्रह करने वाले **नह नून सन्ति**। **सहसा करोन्तान असञ्ञतान**, सहसा बिना विचारे दुस्साहस, कठोर-कर्म करने वाले दुराचारियो को। **पटिसेधितारो** इस प्रकार का कर्म मत करो। ऐसा करना नही मिलेगा—इस प्रकार रोकने वाले नही।

इस प्रकार उस सदाचारिणी के रोने पीटने से देवेन्द्र शक्र का आसन गर्म हुआ। शक्र ने सोचा कौन है जो मुझे मेरे आसन से गिराना चाहता है? पता लगाने से जब उसे यह कारण मालूम हुआ तो उसने सोचा—'बाराणसी नरेश अत्यन्त निर्दयता का काम कर रहा हैं। सदाचारिणी सुजाता को कष्ट दे रहा है। अब मुझे पहुँचना चाहिए।' उसने देवलोक से उतर अपने प्रताप से हाथी की पीठ पर जाते हुए उस पापी राजा को उतार सीस काटने की जगह पर सीधा लिटा, बोधिसत्त्व को उठा सब अलङ्कारो से अलङ्कृत कर राजवेष पहना हाथी के कन्धे पर बिठाया। फरसा उठा कर खडे सीस काटने वालो ने राजा का सिर काट दिया। सीस कट जाने पर ही उन्हें पता लगा कि यह राजा का सिर था।

देवेन्द्र शक्र ने दिखाई देने वाले शरीर से बोधिसत्त्व के पास जा बोधिसत्त्व को राज्याभिषेक तथा सुजाता को अग्रमहिषीपद दिलवाया। अमात्य तथा

ब्राह्मण-गृहपति आदि देवेन्द्र शक्र को देखकर प्रसन्न हुए—अधार्मिक राजा मारा गया। अब हमें शक्र का दिया हुआ धार्मिक राजा प्राप्त हुआ। शक्र ने भी आकाश में खड़े हो कहा—"यह शक्र का बनाया हुआ राजा अब से धर्मपूर्वक राज्य करेगा। यदि राजा अधार्मिक होता है तो वर्षा असमय होती है, समय पर नहीं होती है, अकाल-भय, रोग-भय तथा शस्त्र-भय बना ही रहता है।" इस प्रकार उपदेश देते हुए शक्र ने दूसरी गाथा कही—

अकाले वस्सति तस्स काले तस्स न वस्सति
सग्गा च चवतिट्ठाना ननु सो तावता हतो ॥

[उसके राज्य में असमय वर्षा होती है, समय पर नहीं होती। वह स्वर्ग-स्थान से गिरता है। निश्चय से वह उतने से मारा गया।]

अकाले, अधार्मिक राजा के राज्य करने के समय—अनुचित समय पर खेती के पकने के समय वा कटाई तथा मर्दन करने के समय देव वस्सति। काले, योग्य समय पर, बोने के समय, खेती छोटी रहने के समय वा दाना पड़ने के समय न वस्सति। सग्गा च चवतिट्ठाना, स्वर्ग-स्थान से अर्थात् देवलोक से। अधार्मिक राज अप्रतिलाभ होने से देवलोक से च्युत होता है। यह भी अर्थ है कि स्वर्ग में भी राज्य करता हुआ अधार्मिक राजा वहाँ से च्युत होता है। ननु सो तावता हतो, निश्चय से वह अधार्मिक राजा इस से मारा जाता है। अथवा "नु" यहाँ एकानवाची है, न केवल वह इतने से मारा गया, बल्कि वह आठ महा नरकों में तथा सोलह उस्सद नरकों में चिरकाल तक भोग जाएगा।

इस प्रकार शक्र जन-समूह को उपदेश दे अपने देवस्थान को ही चला गया। बोधिसत्व न भी धर्म से राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय अधार्मिक राजा देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। सुजाता राहुल-माता थी। शक्र का बनाया हुआ राजा तो मैं ही था।

---

१९५. पब्बतूपत्थर जातक

"पब्बतूपत्थरे रम्मे. " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के एक अमात्य ने रनिवास को दूषित किया। राजा ने खोज करके उसे ठीक ठीक जान शास्ता को निवेदन करने की इच्छा से जेतवन जा, शास्ता को प्रणाम कर पूछा— भंते ! हमारे रनिवास को एक अमात्य ने दूषित किया है। उसको क्या करना चाहिए?" शास्ता ने पूछा—"महाराज ! वह अमात्य उपकारी है ? वह स्त्री प्रिया है ?"

"हाँ भन्ते ! बहुत उपकारी है। सारे राजकुल को सँभालता है। वह स्त्री भी मेरी प्रिया है।

"महाराज ! अपने उपकारी सेवकों के प्रति तथा प्रिया स्त्री के प्रति बुरा व्यवहार नहीं किया जा सकता। पूर्व समय में भी राजा लोग पण्डितों की बात सुन उपक्षावान् हो गए थे।"

उनके याचना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अमात्यकुल में पैदा हो बड़े होने पर उस राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए। उस राजा के एक अमात्य ने रनिवास दूषित किया। राजा ने उसका ठीक ठीक पता लगा सोचा—अमात्य भी मेरा बहुत उपकारी है। यह स्त्री भी प्रिया है। मैं इन दोनों को नष्ट नहीं कर सकता। पण्डित-अमात्य से प्रश्न पूछकर

यदि सहन करने योग्य होगा तो सहन कर लूंगा; नहीं सहन करने योग्य होगा तो नहीं सहन करूँगा।" उसने बोधिसत्त्व को बुला, आसन दे पूछा—

"पण्डित ! प्रश्न पूछता हूँ।"

"महाराज ! पूछें, उत्तर दूंगा।"

राजा ने प्रश्न पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

पब्बतूपत्थरे रम्मे जाता पोक्खरणी सिवा
तं सिगालो अपापासि जानं सीहेन रक्खितं ॥

[पर्वत के रम्य दामन में सुन्दर पुष्करिणी रही। यह जानते हुए भी कि इसे सिंह ने अपने लिए सुरक्षित रक्खा है, उसमें शृगाल ने पानी पिया।]

पब्बतूपत्थरे हिमालय पर्वत के दामन में फैले हुए आँगन में जाता पोक्खरणी सिवा, शीतल, मधुर जल वाली पुष्करिणी पैदा हुई। कमल से ढकी हुई नदी भी पुष्करिणी ही। अपापासि, अप उपसर्ग है अपासि अर्थ है। जानं सीहेन रक्खितं यह पुष्करिणी सिंह के परिभोग की है, सिंह के द्वारा रक्षित है; उस शृगाल ने यह जानते हुए ही कि यह सिंह द्वारा रक्षित है जल पिया। तू क्या समझता है? शृगाल सिंह का भय न मान कर इस प्रकार की पुष्करिणी से जल पिए?

बोधिसत्त्व ने यह समझ कर कि निश्चय से इसके रनिवास को किसी अमात्य ने दूषित किया होगा, दूसरी गाथा कही—

पिपन्ति वे महाराज ! सापदानि महानदिं
न तेन अनदी होति खमस्सु यदि ते पिया ॥

[महाराज ! महानदी पर सभी प्राणी जल पीते हैं। उससे नदी अनदी नहीं होती। यदि वह प्रिया है, तो क्षमा करें।]

सापदानि न केवल गीदड ही किन्तु चीते, कुत्ते, खरगोश, बिल्ले, हिरन आदि सभी प्राणी कमल से ढकी हुई होने के कारण पुष्करिणी कहलाने वाली

नदी पर पानी पीते ही हैं। न तेन अनदी होति नदी पर दो पैरों वाले, चार पैरों वाले, साँप-मत्स्य आदि सभी प्यासे पानी पीते हैं। उससे वह न अनदी होती है, न जूठी। क्यों? सब के लिए साधारण होने से। जिस प्रकार नदी जिस किसी के पानी पीने से दूषित नहीं होती उसी प्रकार स्त्री भी कामुकता के वशीभूत हो अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे से सहवास करने से अनिस्त्री नहीं होती। क्यों? सब के लिए साधारण होने से। न हि स्त्री जूठी होता है। क्यों? जल-स्नान से शुद्ध हो सकने के कारण। खमस्सु यदि ते पिया, यदि यह स्त्री तुझे प्रिया है तथा वह अमात्य बहुत उपकारी है; उन दोनों को क्षमा कर। उपेक्षावान् हो।

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को उपदेश दिया। राजा ने उसका उपदेश मान 'फिर ऐसा पापकर्म न करना' कह दोनों को क्षमा किया। उसके बाद से वह विरत रहे।

राजा भी दानादि पुण्य कर्म करते हुए मरने पर स्वर्ग सिधारे। कोशल नरेश भी यह धर्मदेशना सुन उन दोनों को क्षमा कर उपेक्षावान् हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१९६. वालाहस्स जातक

"ये न काहन्ति ओवादं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—"क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?" "सचमुच" कहने पर पूछा—किस कारण से उत्कण्ठित है? उसने उत्तर दिया—

"एक अलङकृत स्त्री को देखकर कामुकता का भाव उत्पन्न हो जाने के कारण
शास्ता ने कहा—"भिक्षु ! स्त्रियाँ अपने रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श त
हासविलास से पुरुषो को आसक्त कर, जब उन्हें अपने वश में हुआ समभ
हैं, तो उनका शील और धन नष्ट कर डालती हैं। इसीसे यह यक्षिणियाँ क
लाती हैं। पहले भी यक्षिणियो ने स्त्रियो के हासविलास से एक काफले के प
जा, व्यापारियो को आकृष्ट कर, अपने वशीभूत कर, फिर दूसरे आदमियो
देख पहले के सब आदमियो को मार डाला। और दोनो दाढो से रक्त ब
हुए, उन्हें मुरमुरे की तरह खा डाला।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म
कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में ताम्रपर्णी द्वीप में सिरीसवत्थु नाम का यक्षो का नगर थ
वहाँ यक्षिणियाँ रहती थी। जिन व्यापारियो की नौकाएँ टूट जाती, उ
आने पर वे सजसजा कर खाद्य भोज्य लिवा, दासियो से घिरी हुई तथा ग
में बच्चो को उठाए व्यापारियो के पास जाती। उन पर यह प्रकट करने
लिए कि वे मनुष्य-निवास मे आए है, जहाँ तहाँ कृषि, गोरक्षा आदि क
हुए आदमी, गौएँ कुत्ते आदि दिखाती। व्यापारियो के पास जाकर कहती
यह यवागू पीएँ। भोजन करें। खाद्य खाएँ। व्यापारी न जानने के का
उनका दिया खा लेते।

उनके खा-पीकर विश्राम करने के समय उनसे कुशल क्षेम पूछती—"इ
कहाँ के रहने वाले है ? कहाँ से आए हैं ? कहाँ जाएँगे ? यहाँ किस का
से आए ?" वे कहते कि नौका टूट जाने के कारण इधर आये। तब वे कहती
"आर्यो ! अच्छा ! हमारे स्वामियो को भी नौका पर चढ कर गए तं
वर्ष हो गए। वे मर गए होगे। आप लोग भी व्यापारी ही है। हम आप
चरण-सेविकाएँ होकर रहगी।"

इस प्रकार वे उन व्यापारियो को स्त्रियो के हासविलास से आसक्त क
यक्ष-नगर ले जाती। यदि पहले से पकडे हुए आदमी (अभी जीवित) हे
तो उन्हें जादू की जजीर से बाँध कारा-गृह में डाल देती। जब उन्हें अ
निवास-स्थान पर ऐसे आदमी जिनकी नौकाएँ टूट गई हो, न मिलते तो उ

कल्याणि (नदी) और इधर नाग द्वीप—इन दोनो के बीच में समुद्र तट पर घूमती। यही उनका स्वभाव था।

एक दिन पांच सौ ऐसे व्यापारी जिनकी नौकाएँ टूट गई थी, उनके नगर के पास उतरे। वे उनके पास गईं और उन्हें लुभा कर यक्ष-नगर ला पहले जिन आदमियो को पकडा था, उन्हे जादू की जजीर मे बाँध कारा-गृह में डाल दिया। ज्येष्ठ यक्षिणी ने ज्येष्ठ व्यापारी को शेष यक्षिणियो ने शेष व्यापारियो को, इस प्रकार उन पाँच सौ यक्षिणियो ने पाँच सौ व्यापारियो को अपना पति बनाया।

वह ज्येष्ठ यक्षिणी रात को जिस समय व्यापारी सोए रहते उठ कर जा कारा-गृह मे आदमियो को मार उनका मास खाकर आती। बाकी भी उसी तरह करती। ज्येष्ठ यक्षिणी जिस समय मनुष्य-मास खाकर लौटती उसका शरीर ठडा होता। ज्येष्ठ व्यापारी ने उसका स्पर्श किया तो उसे पता लगा कि यह यक्षिणी है। उसने सोचा यह पाँच सौ भी यक्षिणियाँ ही होगी। हमें भागना चाहिए।

अगले दिन प्रात काल ही मुँह धोने जाकर उसने बाकी व्यापारियो को कहा—"यह मानवी नही है। यह यक्षिणियाँ हैं। दूसरे नौका-टूटे व्यापारियो के आने पर उन्हें स्वामी बना हमें खा डालेंगी। हम यहाँ से भागें।"

उनमें से ढाई सौ बोले—"हम इन्हे नही छोड सकते। तुम जाओ। हम नही भागगे।"

ज्येष्ठ व्यापारी अपनी बात मानने वाले ढाई सौ जनो को ले उनसे डर कर भाग गया।

उस समय बोधिसत्त्व बादल-अश्व की योनि में पैदा हुए थे। सारा रग श्वेत। सिर कौए जैसा। बाल मूँज के से। ऋद्धिमान। आकाशचारी। वह हिमालय से आकाश में चढ कर ताम्रपर्णी द्वीप जा वहाँ ताम्रपर्णी तालाब के कीचड में अपने से उगे हुए धान खाकर लौटता। इस प्रकार जाते हुए वह दया से प्रेरित हो तीन बार मानुषी-वाणी बोलता—"कोई जनपद जाने वाला है? कोई जनपद जाने वाला है?"

उन्होने उसकी बात सुन, पास जा हाथ जोड कर कहा—"स्वामी! हम जनपद जाएँगे।"

"तो मेरी पीठ पर चढ़ो।"

कुछ चढ़े। कुछ ने पूँछ पकड़ी। कुछ हाथ जोड़े खड़े ही रहे। बोधिसत्त्व अपने प्रताप से सभी ढाई सौ व्यापारियों को, जो हाथ जोड़े खड़े थे उन तक को जनपद ले गए। वहाँ उन्हें उन उनके स्थान पर पहुँचा स्वयं अपने निवास-स्थान को गए। वह यक्षिणियाँ भी औरों के आने पर उन ढाई सौ व्यापारियों को जो पीछे रह गए थे मार कर खा गई।

शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर कहा—"भिक्षुओ, जैसे उन यक्षिणियों के वशीभूत हुए व्यापारी विनाश को प्राप्त हुए। बादल अश्व-राज का कहना मानने वाले अपने अपने स्थान पर पहुँच गए। इसी प्रकार बुद्धों के उपदेश के अनुसार न चलने वाले भिक्षु, भिक्षुणियाँ तथा उपासक और उपासिकाएँ भी चारों नरकों तथा पाँच प्रकार के बन्धन, दण्ड आदि से महान् दु ख को प्राप्त होते हैं। उपदेश मानने वाले तीन कुल-सम्पत्तियाँ,[1] छ काम-स्वर्ग तथा बीस ब्रह्मलोकों को प्राप्त हो, अमृत महानिर्वाण को साक्षात कर महान् सुख का अनुभव करते हैं।" अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कहीं—

> ये न काहन्ति ओवादं नरा बुद्धेन देसितं,
> ब्यसनं ते गमिस्सन्ति रक्खसीहीव वाणिजा ॥१॥
> ये च काहन्ति ओवादं नरा बुद्धेन देसितं,
> सोत्थि पारङ्गमिस्सन्ति वालाहेनेव वाणिजा ॥२॥

[जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करते वे उसी तरह दु ख को प्राप्त होते हैं जैसे राक्षसियों द्वारा व्यापारी। जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार चलते हैं वे उसी तरह सकुशल पार पहुँच जाते हैं जैसे बादल (के अश्व) की सहायता से व्यापारी।]

ये न काहन्ति जो नहीं करेंगे। **ब्यसनं ते गमिस्सन्ति**, वे महान् दु ख को प्राप्त होंगे। **रक्खसीहीव वाणिजा** राक्षसियों द्वारा लुभाए गए व्यापारियों की तरह। **सोत्थि पारङ्गमिस्सन्ति** बिना किसी विघ्न के निर्वाण को प्राप्त

---

[1] ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य।

करेंगे। वालाहेनेय वाणिजा बादल के घोड़े के 'भाग्रो' कहने पर उसका कहना मानने वाले व्यापारियों की तरह। जैसे वह समुद्र पार जाकर अपने अपने स्थान पर पहुँच गए; उसी प्रकार बुद्धों का उपदेश मानने वाले संसार को पार कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं। अमृत महानिर्वाण से धर्मदेशना को समाप्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। और भी बहुतों को स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत फल प्राप्त हुआ।

उस समय बादल अश्व-राज का कहना मानने वाले ढाई सौ व्यापारी बुद्ध-परिषद थे। बादल अश्व-राज तो मैं ही था।

१९७. मित्तामित्त जातक

"न नं उम्हयते दिस्वा. . . ." यह शास्ता ने श्रावस्ती में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु ने यह समझ कि मेरे ले लेने पर मेरा उपाध्याय बुरा नहीं मानेगा, विश्वास कर उसके रखे हुए एक वस्त्र-खण्ड को ले उससे जूता रखने की थैली बना ली। पीछे उपाध्याय को कहा। उपाध्याय ने पूछा—"क्यों लिया?"

"मेरे लेने से आप क्रोधित नहीं होंगे; आपका ऐसा विश्वास करके।"

उपाध्याय ने क्रोध से उठकर पीटा—"तेरा मेरा विश्वास क्या है ?"

उसकी वह करनी भिक्षुओं में प्रकट हो गई। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—"आयुष्मानो ! अमुक तरुण-भिक्षु ने उपाध्याय का विश्वास कर वस्त्र-खण्ड ले उससे जूता रखने की थैली बनाई। उपाध्याय ने 'तेरा मेरा क्या विश्वास है' कह क्रोध से उठकर पीटा।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, यह भिक्षु न केवल अभी अपने शिष्य का अविश्वासी है, पहले भी अविश्वासी ही था।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर गण के नेता हो वह हिमालय-प्रदेश में रहने लगे।

उन ऋषियों के समूह में एक तपस्वी था, जो बोधिसत्त्व का कहना न मान एक हाथी के बच्चे को जिसकी माँ मर गई थी, पालता था। बड़े होने पर वह उस तपस्वी को मार जंगल में चला गया। उसका शरीर-कृत्य कर ऋषियों ने बोधिसत्त्व को घेर कर पूछा—"भन्ते ! मित्र या अमित्र कैसे पहचाना जा सकता है ?"

बोधिसत्त्व ने 'इस इस बात से' कहते हुए यह गाथा कही—

न नं उम्हयते दिस्वा न च नं पटिनन्दति
चक्खूनि चस्स न ददाति पटिलोमञ्च वत्तति ॥१॥
एते भवन्ति आकारा अमित्तस्मिं पतिट्ठिता
येहि अमित्तं जानेय्य दिस्वा सुत्वा च पण्डितो ॥२॥

[न उसे देखकर मुस्कराता है, न प्रसन्न होता है। न उसकी ओर आँख

करता है; और उलटा बर्तता है। ये अमित्र के रगढंग हैं, उन्हें देख सुनकर पण्डित आदमी को अपने अमित्र को पहचानना चाहिए।]

न नं उम्हयते दिस्वा जो जिसका अमित्र होता है वह उसे देख कर न मुस्कराता है, न हँसता है; प्रसन्नाकार प्रदर्शित नही करता। **न च नं पटिनन्दति** उसकी बात सुनकर उसे आनन्द नही होता, 'अच्छा' कहा है, 'सुभाषित है' (कह) अनुमोदन नही करता। **चक्खूनि चस्स न ददाति,** आँख से आँख मिलाकर सामने नही देखता, आँख दूसरी ओर ले जाता है। **पटिलोमञ्च वत्तति,** उसका काय-कर्म अथवा वाणी का कर्म भी उसे अच्छा नही लगता; विरोधी-भाव ही ग्रहण करता है। **आकारा,** बातें। **येहि अमित्तं** जिन बातो से वे बातें। **दिस्वा च सुत्वा च पण्डितो** आदमी को चाहिए कि पहचान करे कि यह मेरा अमित्र है। इससे विरुद्ध बातो से मित्र-भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व मित्र तथा अमित्र के लक्षण कह ब्रह्मविहारो की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी को पालने वाला तपस्वी शिष्य था। हाथी उपाध्याय था। ऋषिगण बुद्ध-परिषद थी। गण का नेता तो मैं ही था।

१९८. राध जातक[1]

"**पवासा आगतो तात....**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

---

[1] राधजातक (१४५)

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—"भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?"

"भन्ते ! सचमुच।"

"किस कारण से ?"

"एक अलङ्कृत स्त्री को देखकर कामुकता के कारण।"

"भिक्षु, स्त्री की जाति की सँभाल नही की जा सकती। पूर्व समय में द्वारपाल रखकर हिफाजत करने वाले भी हिफाजत नहीं कर सके। तुझे स्त्री से क्या ? मिलने पर भी उसकी हिफाजत नही की जा सकती।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तोते की योनि में पैदा हुए। उसका नाम था राध। उसके छोटे भाई का नाम था पोट्ठपाद। उन दोनो को ही, जब वह छोटे ही थे एक चिडीमार ने पकड कर वाराणसी के एक ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण ने उन्हें पुत्र की तरह पाला। उसकी ब्राह्मणी दुराचारिणी थी, उसकी हिफाजत नहीं की जा सकती थी।

ब्राह्मण ने व्यापार करने के लिए जाते समय उन तोते-बच्चो को बुलाकर कहा—"तात ! मै व्यापार के लिए जाता हूँ। समय असमय तुम अपनी माता की करनी पर नजर रखना। दूसरे आदमी का अन्दर आना जाना देखना।" इस प्रकार वह उन तोते-बच्चो को ब्राह्मणी सौंप कर गया।

वह उसके बाहर जाने के समय से ही अनाचार करने लगी। रात को भी, दिन को भी आने जाने वालो की सीमा न रही। उसे देख पोट्ठपाद ने राध से कहा—"ब्राह्मण इस ब्राह्मणी को हम सौंप कर गया। यह पापकर्म करती है। मैं इसे मना करूँ ?" राध न कहा—"मत बोल।" वह उसका कहना न मान बोला—"अम्म ! तू पापकर्म किस लिए करती है ?"

उसने उसे मार डालने की इच्छा से कहा—"तात ! तू मेरा पुत्र है। अब से न करूँगी। जरा, यहाँ आ।" इस प्रकार प्यार करती हुई की तरह

उसे बुलाकर, भागे पर पकड़ लिया। फिर 'तू मुझे उपदेश देता है। अपनी हैसियत नहीं देखता?' कह, गरदन मरोड़ मारकर चूल्हे में फेंक दिया। ब्राह्मण ने लौट कर, विश्राम ले बोधिसत्व से कहा—"तात राध ! तुम्हारी माता अनाचार करती थी या नहीं करती थी?" पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

पवासा आगतो तात ! इदानि न चिरागतो,
कच्चिन्नु तात ! ते माता न अञ्ञमुपसेवति ॥

[तात ! मैं अब प्रवास से लौट आया हूँ। मैं अभी आ रहा हूँ। तात ! क्या तेरी माता दूसरे पुरुष का सेवन करती थी ?]

मैं तात पवासा आगतो, अब मैं अभी आया हूँ। न चिरागतो, इसीलिये समाचार न जानने के कारण पूछता हूँ। कच्चिन्नु तात ते माता अञ्ञं पुरिसं नो न उपसेवति ?

राध ने 'तात ! पण्डित लोग भी समय अकल्याणकर बात नहीं कहते' प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

न खो पनेतं सुभणं गिरं सच्चुपसंहितं,
सयेथ पोट्ठपादोव मुम्मुरे उपकूसितो ॥

[यह सच्ची बात सुभाषित वाणी नहीं है; जिसके कहने से पोट्ठपाद की तरह गर्म राख में भुने।]

गिरं वचन। वचन को ही जैसे अब 'गिरा' कहते हैं वैसे ही तब 'गिरं' कहते थे। तोता-बच्चा लिङ्ग का ध्यान न कर ऐसा कहता है। लेकिन इसका अर्थ यह है—तात ! पण्डित द्वारा सच्ची, यथार्थ, तथ्य-युक्त स्वाभाविक बात भी अकल्याणकर होने से न सुभणं। अकल्याणकर सच्ची बात कहने से सयेथ पोट्ठपादोव मुम्मुरे उपकूसितो जैसे पोट्ठपाद गरम राख में भुना हुआ सोता है; उस प्रकार सोए। उपकूसितो पाठ का भी यही अर्थ है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ब्राह्मण को धर्मोपदेश दे 'मैं भी यहाँ नही रह सकता' कह जगल को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यो (का प्रकाशन) समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पोट्ठपाद आनन्द था। राध तो मैं ही था।

१९९. गहपति जातक

"उभयम्मे न खमति. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उत्कण्ठित-चित्त के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा कहते हुए शास्ता ने 'स्त्री जाति की हिफाजत नही की जा सक्ती। पाप करके जिस किसी उपाय से स्वामी को ठगती ही हैं' यह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते के समय बोधिसत्त्व ने काशी-राष्ट्र के गृहपति-कुल में जन्म ग्रहण कर बडे होने पर विवाह किया। उसकी भार्य्या दुराचारिणी थी; गाँव के मुखिया के साथ दुराचार करती। बोधिसत्त्व जानकर परीक्षा करते हुए रहने लगे।

उस समय वर्षा काल में बीजों के बह जाने से अकाल हो गया था। खेती

मे दाना पडा। सारे ग्रामवासियों ने मिलकर निश्चय किया कि अब से दो महीने बाद खेत काटकर धान दे देंगे, और गाँव के मुखिया से एक बूढ़ा बैल ले उसका मास खा गए।

एक दिन गाँव का मुखिया मौका देख, जिस समय बोधिसत्त्व बाहर गया था घर में घुसा। उनके सुख से लेटने के समय ही बोधिसत्त्व ग्राम-द्वार से प्रविष्ट हो घर की ओर हो लिया। ग्राम-द्वार की ओर देखते हुए उस स्त्री ने सोचा, 'यह कौन है?' फिर देहली पर खड़े होकर देखने से जब उसे निश्चय हुआ कि यह वही है, तो उसने मुखिया से कहा। गाँव का मुखिया डर के मारे काँपने लगा।

उसने कहा—डर मत। एक उपाय है। हमने तेरा दिया गोमास खाया है। तू मांस का मूल्य उगाहने वाले की तरह हो। मैं कोठे पर चढ़ कोठे के द्वार पर खड़ी हो कहती हूँ कि धान नहीं है। तू घर के बीच में खड़ा होकर बार बार उलाहना दे—'हमारे घर में बच्चे भूखे हैं। मेरे मांस का मूल्य दो।' इतना कह वह कोठे पर चढ कोठे के दरवाजे पर बैठी। मुखिया घर में खड़ा हो कहने लगा—मांस की कीमत दो। वह कोठे के दरवाजे पर बैठ कहती—धान नहीं है। खेत कटने पर देंगे। जा।

बोधिसत्त्व ने घर में प्रवेश कर उनकी करतूत देख समझ लिया कि इस पापिन ने यह ढंग बनाया होगा। उसने गाँव के मुखिया को बुलाकर कहा—"हे ग्राम-भोजक! हमने तेरे बूढ़े बैल का मास खाते समय, 'अब से दो महीने बाद धान देंगे' कहकर मास खाया था। अभी आधा महीना भी नहीं गुजरा। तू अभी से क्यों धान लेना चाहता है? लेकिन तू इस उद्देश्य से नहीं आया, दूसरे ही उद्देश्य से आया होगा? मुझे तेरी करतूत अच्छी नहीं लगती। यह भी दुराचारिणी पापिन जानती है कि कोठे में धान नहीं है। वह अब कोठे पर चढ कहती है—धान नहीं है। तू भी कहता है—दे। मुझे दोनों की बात अच्छी नहीं लगती।"

इस भाव को प्रकट करते हुए बोधिसत्त्व ने यह गाथाएँ कहीं—

उभयम्मे न खमति उभयम्मे न रुच्चति,
या चायं कोट्ठमोतिण्णा न दस्सं इति भासति ॥

तं तं गामपति ब्रूमि कदरे अप्पस्मि जीविते,
द्वे मासे कारं कत्वान मंसं जरग्गवं किसं;
अप्पत्तकाले चोदेसि तम्पि मय्हं न रुच्चति ॥

[दोनों मुझे पसन्द नहीं; दोनों मुझे अच्छे नहीं लगते। यह जो कोठे पर चढ कहती है—(धान) नहीं दिखाई देते। हे ग्रामपति ! मैं यह कहता हूँ कि जीवन इतना कठिन होने पर भी तू बूढे कृष बैल के मास (के मूल्य) का दो महीने का करार करके समय के पूर्व ही उलाहना देता है। यह भी मुझे अच्छा नहीं लगा।]

तं तं गामपति ब्रूमि भो ! ग्राम के मुखिया इस कारण से यह कहता हूँ। कदरे अप्पस्मि जीविते, हमारा जीवन दु खी है, जड है, रूखा है, न्यून है, अल्प है, मन्द है, परिमित है। इस प्रकार के जीवन के होने पर द्वे मासे कारं कत्वान मंसं जरग्गवं किसं हमारे मास लेते समय बूढा, कृप, दुर्बल बैल देते हुए तूने दो महीने की अवधि बाँधी थी कि दो महीने में मूल्य देना। इस प्रकार करार करके, अवधि बाँध कर अप्पत्तकाले चोदेसि, उस समय के आने से पूर्व ही दोष लगाता है। तम्पि मय्हं न रुच्चति यह जो पापिन दुराचारिणी-कोठे में धान नहीं है जानती हुई अनजान की तरह कोट्ठमोतिण्णा कोठे के द्वार पर खडी हो न ददसं इति भासति। यह भी और यह जो तू असमय माँगता है तम्पि यह दोनों न मुझे पसन्द है, न अच्छा लगता है।

इस प्रकार कहते कहते बोधिसत्व ने गाँव के मुखिये को केशो से पकड, खींच कर घर के बीच में गिराया। "'मैं गाँव का मुखिया हूँ' समझ दूसरो की रखी, हिफाजत की हुई चीज के प्रति अपराध करता है?" आदि बातो से अपशब्द कह, पीट कर, दुर्बल कर, गरदन से पकड घर से निकाल दिया। उस दुष्ट स्त्री को भी केशो से पकड कोठे से उतार, पीटते हुए डाँटा—"यदि फिर ऐसा करेगी, तो जानेगी?"

उसके बाद से गाँव का मुखिया उस घर की ओर नजर भी नहीं उठा सका। वह पापिन भी फिर मन से भी दुराचार नहीं कर सकी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो के अन्त में उत्कण्ठित चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय ग्राम के मुखिया को ठीक करने वाला गृहपति मैं ही था।

२००. साधुसील जातक

"सरीरदब्य " यह शास्ता ने जेतवन म विहार करते समय एक ब्राह्मण के बारे में कही।

क वर्तमान कथा

उस ब्राह्मण की चार लडकियाँ थी। व चार प्रकार के आदमियो को चाहती थी। उनमें से एक सुन्दर शरीर वाले को, एक आयु में बड को, एक (ऊँची) जाति वाल को और एक सदाचारी को। ब्राह्मण सोचने लगा! लडकियो को (पराए): घर भेजते हुए, उनका विवाह करते हुए उन्हें किसे देना चहिए? क्या रूपवान् को? क्या आयु म बडे को? क्या जाति में बडे को अथवा सदाचारी को?'

जब सोचन पर भी वह कुछ निश्चय न कर सका तो उसने विचार किया कि इसे बात को सम्यक् सम्बुद्ध जानेंग। उन्हें पूछ कर, इन चारो में जिसे देना उचित होगा उसे दूंगा। वह गन्धमाला आदि लिवा कर विहार गया, शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। उसने आरम्भ से सब बात सुना कर पूछा—"भन्ते! इन चार जनो में से किसे देना उचित है?"

शास्ता ने कहा—"पहले भी पण्डितो ने तेर इस प्रश्न का उत्तर दिया था। लेकिन वह पूर्व-जन्म की बात होने से त उसे नही जान सकता।"

ऐसा कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल मे जन्म ग्रहण कर बड़े हो तक्षशिला गए। वहाँ शिल्प सीख लौट कर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य्य हुए।

एक ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थी। वह इसी प्रकार चार जनो को चाहती थी। ब्राह्मण ने यह न जानते हुए कि किसे दें सोचा कि आचार्य्य को पूछ कर जिसे देना योग्य होगा, उसीको दूँगा। उसने आचार्य्य के पास जा यह प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

सरीरदब्यं वद्धव्यं सोजच्चं साधु सीलियं
ब्राह्मणन्त्वेव पुच्छाम कन्नु तेसं वणिम्हसे ॥ ,

[शरीर के सौदर्य्य वाले को, आयु बड़ी वाले को, जाति बड़ी वाले को वा सदाचारी को ? हे ब्राह्मण ! तुझे पूछते हैं कि उन्हे किसे दें ?]

सरीरद्व्यं आदि से उन चारो में विद्यमान् गुणो का प्रकाशन किया गया है। अभिप्राय यह है—मेरी लड़कियाँ चार प्रकार के आदमियो को चाहती हैं। उनमें से एक के पास सरीरदब्यं है, शरीर सम्पत्ति है, सौन्दर्य्य है। एक के पास वद्धव्यं वृद्धभाव, ज्येष्ठपन है। एक के पास सोजच्चं अच्छी जाति वाला होना, जाति सम्पत्ति है। सुजच्चं भी पाठ है। एक के पास साधुसीलियं सुन्दर चरित्र वाला होना, सदाचार सम्पत्ति है। ब्राह्मणन्त्वेव पुच्छाम; उनमें से यह अमुक को देनी चाहिए, हम इसका निश्चय न कर सकने के कारण आप ब्राह्मण को ही पूछते हैं। कन्नु तेसं वणिम्हसे उन चार जनो में से किसका वरण करें ? किसकी इच्छा करें ? पूछता हूँ कि वे कुमारियाँ किसे दें ?

इसे सुन आचार्य्य ने कहा—"रूप सम्पत्ति आदि विद्यमान रहने,पर भी दु:शील निन्दित है। इसलिए वह ठीक नहीं। हमें शीलवान् ही अच्छा लगता है।"

इस विचार को प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

अत्थो अत्थि सरीरस्मि वद्धव्यस्स नमोकरे,
अत्थो अत्थि सुजातस्मि सीलं अस्माकरुच्चति ॥

[शरीर की भी अपनी विशेषता है, ज्येष्ठ को नमस्कार होता है। सुजात की भी विशेषता है; लेकिन हमें तो शीलवान् अच्छा लगता है।]

अत्थो अत्थि सरीरस्मि, रूपवान् शरीर में भी अर्थ, विशेषता, उन्नति होनी है। नही होती है, नही कहते। वद्धव्यस्स नमो करे, ज्येष्ठ को हम नमस्कार ही करते हैं। ज्येष्ठ की ही वन्दना होती है। अत्थो अत्थि सुजातस्मि, सुजात पुरुष की भी उन्नति होती है। जाति-सम्पत्ति भी इच्छा करने ही की चीज है। सीलं अस्माकरुच्चति, हमें शील ही अच्छा लगता है। शीलवान्, सदाचारी शरीर-सौन्दर्य्य से रहित भी पूज्य प्रशसनीय होता है।

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन सदाचारी को ही लड़कियाँ दीं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त में ब्राह्मण स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ब्राह्मण यही था; प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

६. नतंदल्ह वर्ग

२०१. बन्धनागार जातक

"न तं दळहं बन्धनमाहु धीरा. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बन्धनागार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय बहुत से सेंद लगाने वाले, बटमार तथा मनुष्यघातक चोरो को लाकर राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें बेड़ी से, रस्सी से तथा जजीर से बँधवा दिया।

दिहात के तीस भिक्षु शास्ता का दर्शन करने की इच्छा से आए। दर्शन तथा प्रणाम कर चुकने के अगले दिन भिक्षाटन करते हुए वह बन्धनागार पहुँचे। वहाँ चोरों को देख, भिक्षाटन से लौट सन्ध्या के समय शास्ता के पास जा निवेदन किया—भन्ते ! आज हमने भिक्षाटन करते समय बहुत से चोरो को बेड़ी आदि से बँधे हुए महान् दु ख अनुभव करते देखा। वे उन बन्धनों को काटकर भाग नही सकते। क्या उन बन्धनो से बढकर भी कोई बन्धन है ?

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह क्या बन्धन है ? यह जो धन-धान्य-पुत्र तथा दारा आदि के प्रति तृष्णा रूपी बन्धन है, यह इन बन्धनो से सौ गुणा, हजार गुणा कड़ा बन्धन है। इस प्रकार के अत्यन्त कठिनाई से टूटने वाले महान् बन्धन को भी, पुराने पण्डितो ने तोड कर हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक दरिद्र गृहस्थ के घर में पैदा हुआ। उसके बडे होने पर पिता मर गया वह नौकरी करके माता को पालने लगे।

उसके अनिच्छा प्रकट करने पर भी उसकी माँ ने उसे एक लडकी ला दी और स्वय मर गई। उसकी भार्य्या की कोख में गर्भ रह गया। उसे न मालूम था कि भार्य्या की कोख में गर्भ है। उसने कहा—भद्रे ! तू नौकरी चाकरी करके अपना पालन पोषण कर, मैं प्रव्रजित होऊँगा।

उसने उत्तर दिया—मेरी कोख में गर्भ है। बच्चे को देख कर प्रव्रजित होना।

बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और उसके बच्चे को जन्म देने पर पूछा—भद्रे ! तूने कुशलपूर्वक बच्चे को जन्म दिया। अब मैं प्रव्रजित होऊँ?

उसने कहा कि जब तक बच्चा स्तन का दूध पीता है, तब तक प्रतीक्षा करें। इस बीच में वह फिर गर्भवती हो गई। उसने सोचा इसकी रजामन्दी से जाना न हो सकेगा, इसे बिना कहे ही भाग कर प्रव्रजित होऊँगा। वह बिना कहे ही रात को उठकर भाग गया। उसे नगर रक्षको ने पकडा। बोधिसत्त्व ने कहा—स्वामी ! मैं 'माँ का पोषण करने वाला' हूँ। मुझे छोड दें।

उनसे अपने आपको छुडा एक स्थान पर ठहर, मुख्य द्वार से ही निकल बोधिसत्त्व ने हिमालय में प्रवेश किया। वहाँ ऋषियो के प्रव्रज्या क्रम के अनुसार प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान क्रीडा में रत हो रहने लगा।

वहाँ रहते हुए 'ऐसे दुष्करता से तोडे जा सकने वाले पुत्र-दारा के प्रति आसक्ति के बन्धन को भी तोडते हैं' उल्लास-वाक्य कहते हुए उसने यह गाथा कही—

> न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा,
> यदायस दारुज बब्बजञ्च,
> सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु,
> पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥

एत दळ्ह बन्धनमाहु धीरा,
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं,
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा,
अनपेक्खिनो कामसुख पहाय ॥

[लोहे के, लकड़ी के या बब्बड़ (की रस्सी) के जो बन्धन है, धीर-जन उन्हें (असली) बन्धन नही मानते। यह जो मणि में, कुण्डलो मे आसक्ति है, यह जो पुत्र-दारा की अपेक्षा है, धीर-जन इन्हें दृढ बन्धन मानते हैं। यह नीचे गिराने वाले हैं, शिथिल है और कठिनाई से दूर होते हैं। धीर-जन इन्हें भी छेद कर, काम-भोगो के सुख को छोड, अपेक्षा रहित हो चल देते है।]

धृतिमान् को ही धीर। धिक्कार किया पापो को इसलिए धीर। या धी का मतलब है प्रज्ञा, उस प्रज्ञा से युक्त धीर बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, बुद्ध-श्रावक और बोधिसत्त्व—यह ही धीर हैं। यदायस आदि में य ञ्जीर आदि लोहे से बना हुआ आयस, अन्दुबन्धन। बब्बजञ्च, जो बब्बढ-तृण या अन्य वल्कल आदि की रस्सी से बना हुआ रस्सी-बन्धन। तं धीरा दळ्ह, मजबूत नहीं कहते। सारत्तरत्ता, अधिक अनुरक्त होकर आसक्त, बहुत राग से अनुरक्त मणि-कुण्डलेसु, मणि में और कुण्डलो में अथवा मणियुक्त कुण्डलो में।

एत दळ्ह, जो मणिकुण्डलो में अत्यन्त अनुरक्त है, उन्ही का जो राग है, या उनकी पुत्र-दारा में अपेक्षा है, तृष्णा है, इस बन्धन को ही धीर-जन दृढ बन्धन कहते है। ओहारिनं, निकाल कर चार नरको में गिराते है, उतारते है, नीचे ले जाते हैं, इसलिए ओहारिनं। सिथिलं जहाँ बन्धन पडा होता है उस जगह की चमडी या मास नही छिलता, खून भी नही निकलता, 'बन्धन पडा है' यह भी पता नही लगने देते इसलिए सिथिल। दुप्पमुञ्च, तृष्णा-लोभ रूप से एक बार भी पैदा हुआ बन्धन उसी तरह कठिनाई से पीछा छोडता है जैसे एक बार किसीको पकड लेने पर कछुआ। एतम्पि छेत्वान, ऐसा दृढ बन्धन भी ज्ञानरूपी तलवार से काट कर धीर-जन लोहे की ज़ंजीर तोडने वाले मस्त हाथी की तरह, पिंजरे को तोडने वाले सिंह-बच्चे की तरह, वस्तु-कामना तथा वासना को कूडा फेंकने के स्थान को घृणा करने की तरह अनपेक्खिनो

होकर कामगुर्ण पहाय थजन्ति, घन देते हैं। घन देकर, हिमवन्त में प्रविष्ट हो ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो ध्यान-युग में रत रहते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व यह उल्लास-वाक्य कह ध्यान-युक्त हो ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन किया। सत्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए।

उस समय माता महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराजा। भार्या राहुलमाता। पुत्र राहुल। पुत्र-दारा को छोड़ निकल कर प्रव्रजित होने वाला पुरुष मैं ही था।

२०२. केळिसील जातक

"हंसा कोञ्चा मयूरा च . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय आयुष्मान् लकुण्टक भद्दिय के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मन् बुद्ध-शासन में प्रसिद्ध थे, सर्व-विदित थे, मधुर स्वर वाले थे, मधुर धर्मोपदेशक थे, पटिसम्भिदा-ज्ञान प्राप्त थे, महा क्षीणास्रव थे, लेकिन साथ ही थे अस्सी स्थविरों में कद के ठिगने, श्रामणेर की तरह बौने, खेलने के लिए बनाए खिलौने की तरह छोटे।

एक दिन जब वह तथागत को प्रणाम कर जेतवन के कोठे में गए थे, देहात के तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने की इच्छा से जेतवन आए। उन्होंने विहार के दरवाजे पर स्थविर को देख 'कोई श्रामणेर है' समझ स्थविर को

चीवर के सिरे से पकड, हाथो से पकड, सिर से पकड़, नाक को रगड, कान पकड घसीटते हुए, हाथ से गुदगुदी उठाते हुए पात्रचीवर सौंप शास्ता के पास गए। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने मधुर-वाणी से कुशल क्षेम पूछा। तब वे बोले—भन्ते! लकुण्टक भद्दिय नाम के आपके एक शिष्य स्थविर मधुर भाषी धर्मोपदेशक हैं। वह इस समय कहाँ है?

"भिक्षुओ, क्या उसे देखना चाहते हो?"

"भन्ते! हाँ।"

"भिक्षुओ, जिसे तुम द्वार-कोठे पर देख, चीवर के कोने आदि से पकड हाथ से छेडते हुए आए, वही यह है।"

"भन्ते! इस तरह का प्रार्थी,[1] इस तरह का उच्चाभिलाषी[2] किस कारण से इतने छोटे आकार का पैदा हुआ?"

"अपने पूर्व-कृत पापकर्म के कारण।" उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व देवेन्द्र शक्र हुए। उस समय ब्रह्मदत्त जीर्ण जरा-प्राप्त हाथी, घोडे वा बैल को नही देख सकता था; देखते ही क्रीडा करने की इच्छा से उसका पीछा करता था। पुरानी गाडी देख कर तुडवा देता, वृद्ध स्त्रियो को देख, उन्हें बुलवा, उनके पेट पर प्रहार दिलवा, उन्हें गिरवा, फिर उठवा डरवाता। वृद्ध आदमियो को देख बाजीगर की तरह कलाबाज़ियाँ खिलवाता। न दिखाई देने की अवस्था में यदि यह सुन भी लेता कि अमुक घर में वृद्ध मनुष्य है, तो उसे बुलवा कर खेलता।

मनुष्य लज्जित होकर अपने अपने माता पिता को विदेशो में भेजने लगे। माता की सेवा, पिता की सेवा का कर्तव्य टूटने लगा। राजसेवक भी क्रीडा-

---

[1] जिसने पूर्व-बुद्धों के पास प्रार्थना की।

[2] जिसने पूर्व-जन्म में ऊँची अभिलाषा से सत्कर्म किए।

प्रिय हो गए। मर मरकर चारो नरक भरने लगे। देव परिषद घटने लगी। शक्र ने नए देवपुत्रो को न देख सोचा कि क्या कारण है ? जब उसे पता लगा तो शक्र ने निश्चय किया कि उसका दमन करूँगा। वह बूढे ग्रादमी की शकल बना पुरानी गाडियो पर मट्ठे की दो चाटियाँ रख दो बूढे बैल जोत एक उत्सव के दिन जब ब्रह्मदत्त ग्रलङ्कृत हाथी पर चढ ग्रलङ्कृत नगर में घूम रहा था, स्वय चीथडे पहने हुए उस गाडी को हाँक कर राजा के सामने पहुँचा।

राजा ने पुरानी गाडी को देख कहा—इसे हटाग्रो।

मनुष्यो ने पूछा—देव, गाडी कहाँ है। दिखाई नही देती।

शक्र के प्रताप से गाडी केवल राजा को ही दिखाई देती थी।

शक्र ने राजा के पास बार बार ग्रा उसके ऊपर की ग्रोर रथ हाँकते हुए राजा के सिर पर एक चाटी फोड दी। राजा भीग गया। उसने दूसरी फोड दी। उसके सिर से इधर उधर से मठा चूने लगा। राजा घबराया, हैरान हुग्रा, घृणा करने लगा।

जब शक्र ने देखा कि राजा घबरा रहा है तो अपने रथ को ग्रन्तर्धान कर शक्र का ग्रसली रूप बना वज्र हाथ में ले ग्राकाश में खडे हो कहा—ग्ररे पापी ग्रधार्मिक राजा ! क्या तू बूढा न होगा ? तेरे शरीर पर बुढ़ापा ग्राक्रमण न करेगा ? क्रीडा प्रिय होकर वृद्धो को कष्ट देता है। तेरे एक के कारण यह करतूत करके मरने वाले नरक भर रहे हैं। ग्रादमियो को माता पिता की सेवा करनी नही मिलती। यदि इस कर्म से बाज नही ग्राएगा तो वज्र से तेरा सिर फोड दूँगा। इसके बाद से ऐसा कर्म मत करना।

इस प्रकार डराकर, माता पिता के गुण कह, बडो की सेवा का माहात्म प्रकाशित कर, उपदेश दे शक्र ग्रपने निवास-स्थान को चला गया।

राजा ने उसके बाद वैसा करने का विचार भी नही किया।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह ग्रभिसम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथाएँ कही—

> हसा कोञ्चा मयूरा च हत्थियो पसवा मिगा,
> सब्बे सीहस्स भायन्ति नत्थि कायस्मि तुल्यता ॥
> एवमेवं मनुस्सेसु दहरो चेपि पञ्ञवा,
> सोहि तत्थ महा होति नेव बालो सरीरवा ॥

चीवर के सिरे से पकड, हाथो से पकड, सिर से पकड, नाव को रगड, कान पकड घसीटते हुए, हाथ से गुदगुदी उठाते हुए पात्रचीवर सौंप शास्ता के पास गए। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने मधुर-वाणी से कुशल क्षेम पूछा। तब वे बोले—भन्ते ! लकण्टुक भद्दिय नाम के आपके एक शिष्य स्थविर मधुर भाषी धर्मोपदेशक है। वह इस समय कहाँ है ?

'भिक्षुओ, क्या उसे देखना चाहते हो ?"

"भन्ते ! हाँ।"

'भिक्षुओ, जिसे तुम द्वार-कोठे पर देख, चीवर के कोने आदि से पकड हाथ से छेडते हुए आए, वही यह है।"

"भन्ते ! इस तरह का प्रार्थी,[1] इस तरह का उच्चाभिलाषी[2] किस कारण से इतने छोटे आकार का पैदा हुआ ?"

'अपने पूर्व-कृत पापकर्म के कारण।" उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व देवेन्द्र शक्र हुए। उस समय ब्रह्मदत्त जीर्ण जरा प्राप्त हाथी, घोडे वा बैल को नही देख सकता था, देखते ही क्रीडा करने की इच्छा से उसका पीछा करता था। पुरानी गाडी देख कर तुडवा देता, वृद्ध स्त्रियो को देख, उन्हें बुलवा, उनके पेट पर प्रहार दिलवा, उन्हें गिरवा, फिर उठवा डरवाता। वृद्ध आदमियो को देख बाजीगर की तरह कलाबाजियाँ खिलवाता। न दिखाई देने की अवस्था मे यदि यह सुन भी लेता कि अमुक घर म वृद्ध मनुष्य है, तो उसे बुलवा कर खेलता।

मनुष्य लज्जित होकर अपने अपने माता पिता को विदेशो में भेजने लगे। माता की सेवा, पिता की सेवा का कर्तव्य टूटने लगा। राजसेवक भी क्रीडा-

---

[1] जिसने पूर्व-बुद्धों के पास प्रार्थना की।

[2] जिसने पूर्व-जन्म में ऊँची अभिलाषा से सत्कर्म किए।

प्रिय हो गए। मर मरकर चारो नरक भरने लगे। देव परिषद घटने लगी। शक्र ने नए देवपुत्रो को न देख सोचा कि क्या कारण है? जब उसे पता लगा तो शक्र ने निश्चय किया कि उसका दमन करूँगा। वह बूढे आदमी की शकल बना पुरानी गाडियो पर मट्ठे की दो चाटियाँ रख दो बूढे बैल जोत एक उत्सव के दिन जब ब्रह्मदत्त अलङ्कृत हाथी पर चढ अलङ्कृत नगर में घूम रहा था, स्वय चीथडे पहने हुए उस गाडी को हाँक कर राजा के सामने पहुँचा।

राजा ने पुरानी गाडी को देख कहा—इसे हटाओ।

मनुष्यो ने पूछा—देव, गाडी कहाँ है। दिखाई नहीं देती।

शक्र के प्रताप से गाडी केवल राजा को ही दिखाई देती थी।

शक्र ने राजा के पास बार बार आ उसके ऊपर की ओर रथ हाँकते हुए राजा के सिर पर एक चाटी फोड दी। राजा भीग गया। उसने दूसरी फोड़ दी। उसके सिर से इधर उधर से मठा चूने लगा। राजा घबराया, हैरान हुआ, घृणा करने लगा।

[हस, क्रौञ्च, मोर, हाथी तथा चितकबरा मृग सभी सिंह से डरते हैं। शरीर से बडा-छोटा नही होता। इसी प्रकार मनुष्यो में चाहे श्रायु का छोटा हो लेकिन यदि वह बुद्धिमान् है तो वह ही बडा है। बडे शरीर वाला मूर्ख बडा नहीं होता।]

पसदामिगा, पसद नामक मृग, पसद मृग तथा शेष मृग भी अर्थ है। **पसदमिगा** भी पाठ है। पसद मृग अर्थ है। **नत्थि कायस्मि तुल्यता,** शरीर से बडा छोटा नही है, यदि हो तो बडे शरीर वाले पसद मृग और हाथी सिंह को मार डालें। सिंह हसादि क्षुद्र शरीर वालो को ही मारे। छोटे ही सिंह से डरें, बडे नही, ऐसा नही है। इसलिए सभी सिंह से डरते हैं। **सरीरवा** मूर्ख बडे शरीर वाला होने पर भी बडा नही होता। इसलिए लकुण्टक भद्दिय यद्यपि शरीर से छोटा है, इससे यह न समझो कि वह ज्ञान में भी छोटा है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त में उन भिक्षुओ में से कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हो गए।

उस समय राजा लकुण्टक भद्दिय था। उसके क्रीडा-प्रिय होने से दूसरे क्रीडा-प्रिय हो गए। शक्र मैं ही था।

२०३. खन्धवत्त जातक

"विरूपक्खेहि मे मेत्तं ." इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

जिस समय वह अग्नि-गृह[1] के द्वार पर लकडियाँ चीर रहा था, पुराने वृक्ष में से एक साँप ने निकल कर उसे पाँव की अँगुलियो में डसा। वह वहीं मर गया। उसके मरने की खबर सारे विहार में फैल गई।

धर्मसभा में भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु अग्नि-गृह के दरवाजे पर लकडियाँ फाडता हुआ सर्प से डसा जाकर वहीं मर गया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, यदि वह भिक्षु चारो सर्पराज-कुलो के प्रति मैत्री भावना करता, उसे सर्प न डसता। पुराने तपस्वी भी, जिस समय बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे उस समय चारो सर्पराज-कुलो के प्रति मैत्री भावना कर, उन सर्पराज-कुलो से जो भय था उससे मुक्त हुए।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बडे होने पर गृहस्थी छोड ऋषियो के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में एक जगह जहाँ गङ्गा का मोड था आश्रम बना कर, ध्यान क्रीडा में रत हो ऋषिगणो के साथ रहने लगे।

उस समय नाना प्रकार के सर्प ऋषियो को बाधक होते थे। अधिकाश ऋषि मर जाते। तपस्वियो ने बोधिसत्त्व से यह बात कही। बोधिसत्त्व ने सभी तपस्वियो को इकट्ठा कर कहा—"यदि तुम चारो सर्पराज-कुलो के

---

[1] जन्ताघर, जिसमें आग जलाकर स्वेद-स्नान लेते थे।

प्रति मैत्री भावना करो, तो तुम्हें सर्प नही डसेंगे। अब से चारो सर्पराज-कुलों के बारे में इस प्रकार मैत्री भावना करो।"

इतना कह यह गाथा कही—

विरूपक्खेहि मे मेत्तं मेत्तं एरापथेहि मे,
छब्यापुत्तेहि मे मेत्तं मेत्तं कण्हागोतमकेहि च ॥

[विरूपक्खो के प्रति मै मैत्री-भाव रखता हूँ; एरापथों के प्रति भी मेरी मैत्री है। छब्यापुत्रो के प्रति मेरी मैत्री है और मैत्री है कण्हागोतमो के प्रति]

विरूपक्खेहि मे मेत्तं, विरूपक्ख नागराज-कुल के प्रति मेरा मैत्री-भाव है। एरापथ आदि में भी इसी प्रकार। यह एरापथ नागराज-कुल, छब्यापुत्त नागराजकुल और कण्हागोतम नगराज-कुल भी नागराज-कुल ही हैं।

इस प्रकार चार नागराज-कुल दिखाकर कहा कि यदि तुम इनके प्रति मैत्री-भावना कर सको तो तुम्हें सर्प नही डसेंगे, कष्ट नही देंगे। इतना कह दूसरी गाथा कही—

अपादकेहि मे मेत्तं मेत्तं दिपादकेहि मे,
चतुप्पदेहि मे मेत्तं मेत्तं बहुप्पदेहि मे॥

[जिनके पैर नही हैं उनसे मेरी मैत्री है, जिनके दो पैर है उनसे मेरी मैत्री है, जिनके चार पैर है उनसे मेरी मैत्री है और जिनके अनेक पैर है उनसे मेरी मैत्री है।]

पहले पद से विशेष रूप से सभी पैर-रहित सर्पों तथा मछलियो के प्रति मैत्री-भावना कही गई। दूसरे पद से मनुष्यो तथा पक्षियो के प्रति। तीसरे से हाथी घोड़े आदि सभी चतुष्पदों के प्रति। चौथे पद से विच्छु, गूजर, कीडे मकोड़े, मकडी आदि के प्रति।

इस प्रकार मैत्री-भावना का क्रम बता अब प्रार्थना-क्रम कहते हुए यह गाथा कही—

मा मं अपादको हिंसि मा मं हिंसि दिपादको,
मा मं चतुप्पदो हिंसि मा म हिंसि बहुप्पदो ॥

[जो पैर-रहित हैं वे मेरी हिंसा न करे, जो द्विपद हैं वे मेरी हिंसा न करें, जो चतुष्पद हैं वे मेरी हिंसा न करें और जो अनेक पैर वाले हैं वे भी मेरी हिंसा न करें।]

मा मं इस प्रकार 'उन पैर-रहित आदि में कोई एक भी मेरी हिंसा न करे मुझे कष्ट न दे' प्रार्थना करते हुए मैत्री-भावना करो—यही अर्थ है।

अब सामान्य रूप से भावना-क्रम प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता च केवला,
सब्बे भद्रानि पस्सन्तु मा कञ्चि पापमागमा ॥

[सभी सत्व, सभी प्राणी, सारे के सारे जीव; सभी का कल्याण हो। किसी को दुःख न हो।]

तृष्णा-दृष्टि के कारण ससार में, पाँच स्कन्धो में आसक्त, विशेष आसक्त होने से सत्ता (सक्ता)। स्वास प्रश्वास कहलाने वाले प्राण के कारण प्राणी। भूत (=जीवित) भावित (जीने वाले) का जन्म होने से भूता। इस प्रकार जानना चाहिए कि वचन-मात्र की ही विशेषता है। सामान्य तौर पर इन सभी पदो का अर्थ सभी प्राणी ही है। केवला सकल, यह सर्व शब्द का ही पर्य्याय-वाची है। भद्रानि पस्सन्तु, यह सभी प्राणी कल्याण को ही प्राप्त हो। मा कञ्चि पापमागमा, इनमें से किसी एक भी प्राणी को दुःख न हो। सभी वैर-रहित क्रोध-रहित, सुखी तथा दुःख-रहित हो।

इस प्रकार सामान्य रूप से सभी प्राणियो के प्रति मैत्री-भावना की बात कह तीनो रत्नो के गुणो की याद दिलाने के लिए कहा—

अप्पमाणो बुद्धो अप्पमाणो धम्मो अप्पमाणो सघो।

सीमित (प्रमाण-सहित) विकारो का अभाव होने से और गुण असीम (अप्रमाण) होने से बुद्ध रत्न असीम (अप्रमाण) है, धर्म, नौ प्रकार[1] का लोकोत्तर धर्म; उसकी भी सीमा नही की जा सकती इसलिए असीम (अप्रमाण)। उस असीम (अप्रमाण) धर्म से युक्त होने के कारण सघ भी असीम (अप्रमाण)।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उन तीनो रत्नो के गुणो को स्मरण करने के लिए कह तथा उन तीन रत्नो के गुणो का असीम होना दिखा सीमित प्राणियो के बारे में बोले—

पमाणवन्तानि सिंरिसपानि अहिविच्छिका,
सतपदी उण्णानाभि सरबूमूसिका ।

[रेंगने वाले, सर्प, विच्छु, गूजर, मकडी तथा छिपकली—यह सब सीमा वाले हैं।]

सिंरिसपा, सब दीर्घाकार प्राणियो का यह नाम है। वे सरक कर चलते हैं वा सिर से चलते हैं, इसीलिए सिंरिसपा। अहि आदि उनके स्वरूप का वर्णन किया गया है। तत्थ उण्णानाभि मकडी, उसकी नाभि से ऊन सदृश सूत निकलता है, इसलिए उण्णानाभि कहलाती है। सरबू, छिपकली।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने 'क्योकि इनके अन्दर जो रागादि है वह सीमा वाले धर्म हैं, इसलिए ये सिंरिसप आदि सीमा वाले हैं दिखा तीनो असीम रत्नो के प्रताप से यह सीमा वाले रात दिन रक्षा करें' कह तीनो रत्नो के गुणो का अनुस्मरण करने को कहा। उसके आगे जो कर्तव्य है वह बताने के लिए यह गाथा कही—

---

[1] चार मार्ग, चार फल तथा निर्वाण।

कता मे रक्खा कता मे परित्ता,
पटिक्कमन्तु भूतानि सोहं नमो भगवतो;
नमो सत्तन्न सम्मासम्बुद्धानं ॥

[मैंने अपनी हिफाजत कर ली; मैंने अपना परित्राण कर लिया। (हानिकर) जीव दूर हो। मै भगवान् (बुद्ध) को और सात सम्यक् सम्बुद्धों[1] को प्रणाम करता हूँ।]

---

१ कता मे रक्खा, रत्नत्रय का गुणानुस्मरण कर मैंने अपनी रक्षा, हिफाजत कर ली। **कता मे परित्ता** मैंने अपना परित्राण भी कर लिया। **पटिक्कमन्तु भूतानि**, *मेरा अहित चिन्तन करने वाले प्राणी चले जाएँ, दूर हों।* **सोहं नमो भगवतो**, सो मै इस प्रकार अपनी रक्षा कर पूर्व के परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्ध भगवान् को नमस्कार करता हूँ। **नमो सत्तन्न सम्मासम्बुद्धानं**, विशेष रूप से अतीत के क्रम से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए सात बुद्धो को नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार नमस्कार करते हुए भी सात बुद्धो का अनुस्मरण करो, (करके) *बोधिसत्त्व ने ऋषिगण को यह परित्राण-धर्मदेशना रच कर दी।*

आरम्भ में दो गाथाओ द्वारा चारो सर्पराज कुलो में मैत्री-भावना प्रकट की होने से, विशेष रूप से तथा सामान्य रूप से दोनो मैत्री-भावनाएँ प्रकट की होने से, *यह परित्राण धर्मदेशना यहाँ दी गई है। और कारण खोजना चाहिए।*

उस समय से ऋषियो का समूह बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल मैत्री-भावना करने लगा। बुद्ध के गुणो का स्मरण करने लगा। इस प्रकार उनके बुद्ध-गुणो का स्मरण करते ही पर सब सांप चले गए। बोधिसत्त्व भी ब्रह्म-विहारो की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ऋषि-गण बुद्ध परिषद थी। गण का शास्ता तो मै ही था।

---

[1] देखो महापदान सूत्र (दीर्घनिकाय)।

२०४. वीरक जातक

"अपि वीरक पस्सेसि...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बुद्ध का रग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त की परिषद लेकर स्थविरो के लौट आने पर शास्ता ने पूछा— सारिपुत्तो! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया?

"भन्ते! सुगत का रग-ढग बनाया।"

"सारिपुत्तो! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ। पहले भी प्राप्त हुआ है।"

स्थविरो के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में जल-कौए की योनि में पैदा हो एक तालाब के पास रहते थे। उसका नाम था वीरक।

उस समय काशी देश में अकाल पड़ा। मनुष्य कौओ को भोजन देने या यक्ष-नाग बलिकर्म करने में असमर्थ हो गए। अकाल-पीडित प्रदेश से अधिकाश कौवे जगल चले गए। वाराणसी वासी सविट्ठक नाम का एक कौआ अपनी कौवी को ले वीरक के निवासस्थान पर जा, उस तालाब के पास एक ओर रहने लगा।

एक दिन उसने उस तालाब में शिकार खोजते हुए वीरक को तालाब में

उतर, मछलियाँ खा, बाहर निकल शरीर को सुखाते देख सोचा—इस कौवे के आश्रय से मुझे बहुत मछलियाँ मिल सकती हैं। इसकी सेवा करूँ।

वह कौवे के पास गया। कौवे ने पूछा—

"सौम्य क्यो ?"

"स्वामी ! तुम्हारी सेवा में रहना चाहता हूँ।"

उसके 'अच्छा' कह स्वीकार करने पर उस समय से सेवा करने लगा। तब से वीरक भी अपने गुज़ारे लायक खा मछलियाँ निकाल कर सविट्ठक को देता। वह भी अपने गुज़ारे लायक खा बाकी कौवी को देता।

आगे चलकर उसको अभिमान हो गया। वह सोचने लगा—यह जल-कौआ भी काला है। मै भी काला हूँ। मेरे और इसके आँख, चोच तथा पैरो में भी कोई भेद नही है। अब से इसकी पकडी हुई मछलियो से मुझे सरोकार नही। मै स्वय पकडूँगा। बोला—'सौम्य ! अब से मैं स्वय तालाब में उतर कर मछलियाँ पकडूँगा।' वीरक ने मना किया—तू पानी में उतर मछलियाँ पकडने वाले कुल में पैदा नही हुआ। तू अभिमान करता है। वह वीरक की बात न मान तालाब में उतरा। पानी में प्रवेश कर ऊपर आते समय काई को छेद कर बाहर नही निकल सका। काई में ही फँस गया। केवल चोच का अगला भाग दिखाई दिया। वह साँस घुट कर पानी के अन्दर ही मर गया।

उसकी भार्य्या ने जब उसे आता न देखा तो वह उसका समाचार जानने के लिए वीरक के पास गई। उसने 'स्वामी ! सविट्ठक दिखाई नही देता। इस समय वह कहाँ है ?' पूछते हुए पहली गाथा कही—

> अपि वीरक पस्सेसि सकुण मञ्जुभाणक,
> मयूरगीवसङ्कास पतिं मय्ह सविट्ठकं ॥

[वीरक ! क्या मधुरभाषी, मोर पक्षी की सी गर्दन वाले मेरे पति सविट्ठक को देखते हो ?]

अपि वीरक पस्सेसि स्वामी ! वीरक भी दिखाई देता है ? मञ्जुभाणक, सुन्दर भाषी, वह राग के कारण अपने पति को मधुरभाषी समझती है। इसलिए ऐसा कहा। मयूरगीवसङ्कास, मोर की गर्दन के समान वर्ण वाला।

यह सुन बीरक ने 'हाँ, मै जानता हूँ कि तेरा स्वामी वहाँ गया है' कह दूसरी गाथा कही—

उदकथलचरस्स पक्खिनो निच्चं आमकमच्छभोजिनो,
तस्सानुकरं सविट्ठको सेवाले पळिगुण्ठितो मतो ॥

[सविट्ठक जल और स्थल पर चलने वाले, नित्य कच्ची मछली खाने वाले, पक्षी की नक़ल करने जाकर काई में फँस कर मर गया ।]

उदकथलचरस्स, जो जल और स्थल में चलने में समर्थ है। पक्खिनो, अपने सम्बध में कहता है । तस्सानुकरं उसकी नक़ल करता हुआ। पळिगुण्ठितो मतो, पानी में घुस काई को छेद कर बाहर न निकल सकने के कारण काई में उलझ कर पानी के अन्दर ही मर गया। देख, उसकी चोच दिखाई देती है।

इसे सुन कौवी रो पीट कर वाराणसी ही चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। तब सविट्ठक देवदत्त था। बीरक मैं ही था।

२०५. गङ्गेय्य जातक

"सोभति मच्छो गङ्गेय्यो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो तरुण भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे दो श्रावस्ती वासी कुलपुत्र बुद्ध-शासन मे प्रव्रजित हो अशुभ-भावना में न लग रूप के प्रशंसक हो, रूप को ही प्यार करते हुए घूमते थे। एक दिन उन

दोनों में रूप को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। एक ने कहा—मैं शोभा देता हूँ। दूसरे ने कहा—तू नहीं शोभा देता, मैं शोभा देता हूँ। कुछ ही दूर पर एक वृद्ध स्थविर को बैठे देख उन्होंने सोचा—यह जानेंगे। हम में से कौन शोभनीय है, कौन नहीं ? उन्होंने पास जाकर पूछा—हम में से कौन सुन्दर है ? स्थविर ने उत्तर दिया—तुम दोनों से मैं ही सुन्दर हूँ।

तरुण भिक्षुओं ने कहा, यह बूढ़ा जो हम पूछते हैं वह न बता जो नहीं पूछते हैं वही कहता है। वे उसकी निन्दा कर चले गए।

उनकी वह करतूत भिक्षु-संघ में प्रकट हो गई। एक दिन धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानो, वृद्ध स्थविर ने उन रूप-प्रिय तरुण भिक्षुओं को लज्जित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? "यह बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, यह दो तरुण केवल अभी रूप प्रशंसक नहीं हैं, यह पहले भी रूप को ही प्यार करते हुए विचरते थे" कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गङ्गा के किनारे वृक्ष-देवता थे। उस समय गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर गङ्गेय्य और यामुनेय्य नाम की दो मछलियाँ थीं। वे आपस में विवाद करने लगीं—मैं शोभा देती हूँ, तू नहीं शोभती। इस प्रकार रूप के बारे में विवाद करते हुए उन्होंने थोड़ी दूर पर गङ्गा के किनारे पड़े एक कछुए को देखकर सोचा—यह जानेगा कि हम में कौन सुन्दर है ? कौन असुन्दर ? उसके पास जाकर उन्होंने पूछा—सौम्य ! गङ्गेय्य सुन्दर है ? अथवा यामुनेय्य ?।

कछुए ने कहा—गङ्गेय्य भी सुन्दर है, यामुनेय्य भी सुन्दर है, लेकिन मैं तुम दोनों से अधिक सुदर हूँ।

इस बात को प्रकट करते हुए उसने पहली गाथा कही—

> सोभति मच्छो गङ्गेय्यो अथो सोभति यामुनो,
> चतुप्पदायं पुरिसो निग्रोधपरिमण्डलो;
> ईसकायतगीवो च सब्बेव अतिरोचति ॥

[गङ्गेय्य मछली शोभा देती है, यामुनेय्य भी शोभा देती है; लेकिन यह चार पैरों वाला, बड़-वृक्ष की तरह गोलाकार, गाड़ी की बल्ली की तरह लम्बी गर्दन वाला (पुरुष) सब से अधिक सुन्दर है।]

चतुप्पदायं, यह चतुष्पाद पुरिसो अपने बारे में कहता है। निग्रोध परि-मण्डलो, अच्छी तरह उत्पन्न न्यग्रोध वृक्ष की तरह गोलाकार। ईसकायतगीवो रथ की धुर की तरह लम्बी गर्दन वाला। सब्बेव अतिरोचति इस प्रकार के आकार वाला कछुआ सबसे बढ़कर सुन्दर है, तुम दोनों से बढ़कर शोभा देता है।

मछलियों ने उसकी बात सुन 'अरे पापी कछुए! हमारी पूछी बात का उत्तर न दे, दूसरी ही कहता है' कह दूसरी गाथा कही—

यं पुच्छितो न तं अक्खा अञ्ञं अक्खासि पुच्छितो,
अत्तप्पसंसको पोसो नायं अस्माक रुच्चति ॥

[जो पूछा है वह नहीं कहता; पूछने पर दूसरी बात कहता है। यह अपनी ही प्रशंसा करने वाला पुरुष हमें अच्छा नहीं लगता।]

अत्तप्पसंसको, अपनी प्रशंसा करने वाला, अपनी बड़ाई करने वाला पुरुष। नायं अस्माक रुच्चति, यह पापी कछुआ हमें अच्छा नहीं लगता, रुचिकर नहीं है। वे कछुए के ऊपर पानी फेंक अपने निवासस्थान को गईं।

---

२०६. कुरुङ्गमिग जातक

"इङ्घ वद्धमयं पासं . . ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय यह सुनकर कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है शास्ता ने कहा, 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्नशील है, उसने पहले भी कोशिश की है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कुरुङ्ग मृग की योनि में पैदा हो जंगल में एक तालाब के पास एक झाड़ी में रहता था। उसी तालाब के नजदीक वृक्ष पर एक कठफोड़ा[1] और तालाब में कछुआ रहता था। वे तीनों परस्पर प्रेम से रहते।

एक शिकारी जंगल में घूमते हुए पानी पीने के स्थान पर बोधिसत्व के पैरों का चिन्ह देख लोहे की जंजीर सदृश फंदे का जाल लगा कर गया।

बोधिसत्व पानी पीने आकर (रात्रि के) पहले पहर में ही फँस गए, तब फँसे जाने की आवाज़ की। उसकी आवाज सुन वृक्ष शाखा पर से कठफोड़ा और पानी में से कछुआ आया। उन्होंने सलाह की—क्या किया जाए? कठफोड़े ने कछुवे को सम्बोधन कर कहा—मित्र! तेरे दाँत है। तू जाल को

---

[1] कठफोड़ा=शतपत्र।

[गङ्गेय्य मछली शोभा देती है, यामुनेय्य भी शोभा देती है, लेकिन यह चार पैरो वाला, बड-वृक्ष की तरह गोलाकार, गाडी की बल्ली की तरह लम्बी गर्दन वाला (पुरुष) सब से अधिक सुन्दर है।]

चतुप्पदायं, यह चतुष्पाद पुरिसो अपने बारे में कहता है। निग्रोध परिमण्डलो, अच्छी तरह उत्पन्न न्यग्रोध वृक्ष की तरह गोलाकार। ईसकायतगीवो रथ की छड की तरह लम्बी वल्ली वाला। सब्बेव अतिरोचति इस प्रकार के आकार वाला कछुआ सबसे बढकर सुन्दर है, तुम दोनो से बढकर शोभा देता है।

मछलियो ने उसकी बात सुन 'अरे पापी कछुए ! हमारी पूछी बात का उत्तर न दे, दूसरी ही कहता है' कह दूसरी गाथा कही—

यं पुच्छितो न तं अक्खा अञ्ञं अक्खाति पुच्छितो,
अत्तप्पससको पोसो नायं अस्माक रुच्चति ॥

[जो पूछा है वह नही कहता; पूछने पर दूसरी बात कहता है। यह अपनी ही प्रशसा करने वाला पुरुष हमें अच्छा नही लगता।]

अत्तप्पसंसको, अपनी प्रशसा करने वाला, अपनी बडाई करने वाला पुरुष। नायं अस्माक रुच्चति, यह पापी कछुआ हमें अच्छा नही लगता, रुचिकर नही है। वे कछुए के ऊपर पानी फेंक अपने निवासस्थान को गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दो मछलियाँ तरुण भिक्षु थे। कच्छप बूढा था। इस बात को प्रत्यक्ष करने वाला गङ्गा-तट पर पैदा हुआ वृक्ष-देवता मैं ही था।

२०६. कुरुङ्गमिग जातक

"इङ्घं वद्धमयं पासं ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय यह सुनकर कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है शास्ता ने कहा, 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्नशील है, उसने पहले भी कोशिश की है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कुरुङ्ग मृग की योनि मे पैदा हो जगल में एक तालाब के पास एक भाडी में रहता था। उसी तालाब के नज़दीक वृक्ष पर एक कठफोड़ा[1] और तालाब मे कछुआ रहता था। वे तीनो परस्पर प्रेम से रहते।

एक शिकारी जगल में घूमते हुए पानी पीने के स्थान पर बोधिसत्त्व के पैरो का चिन्ह देख लोहे की जजीर सदृश फदे का जाल लगा कर गया।

बोधिसत्त्व पानी पीने आकर (रात्रि के) पहले पहर में ही फँस गए, तब फँस जाने की आवाज की। उसकी आवाज सुन वृक्ष-शाखा पर से कठफोड़ा और पानी मे से कछुआ आया। उन्होंने सलाह की—क्या किया जाए? कठफोडे ने कछुवे को सम्बोधन कर कहा—मित्र! तेरे दाँत है। तू जाल को

---

[1] कठफोडा=शतपत्र।

काट। मैं जाकर ऐसा करूँगा जिससे वह आने न पाएँ। इस प्रकार हम दोनों के प्रयत्न से हमारे मित्र की जान बचेगी।

इस बात को प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

इङ्घं वद्धमयं पासं छिन्द दन्तेहि कच्छप
अहं तथा करिस्सामि यथा नेहिति लुद्दको ॥

[देख कछुए! तू दाँतों से चमडे के जाल को काट। मैं वैसा करूँगा जिससे शिकारी आने न पावे।]

कछुए ने चमडे की डोरी खानी शुरू की। कठफोडा शिकारी के घर गया। शिकारी प्रात:काल ही शक्ति लेकर निकला। पक्षी ने यह जान कि वह घर से निकल रहा है आवाज कर, परों को फडफडा कर आगे के द्वार से निकलते हुए उसके मुँह पर चोट की। शिकारी ने सोचा—मनहूस पक्षी ने मुझ पर प्रहार किया।

वह रुका, थोडी देर लेट फिर शक्ति लेकर उठा। 'पहले यह आगे के द्वार से निकला, अब पीछे के द्वार से निकलेगा' सोच पक्षी जाकर घर के पीछे की ओर बैठा। शिकारी ने भी यह सोचा—आगे के द्वार से निकलते समय मैंने मनहूस पक्षी देखा अब पिछले द्वार से निकलूँगा। वह पीछे के द्वार से निकला। पक्षी ने फिर जाकर आवाज लगा मुँह पर चोट की। शिकारी ने कहा—फिर मुझ पर मनहूस पक्षी ने चोट की। यह मुझे निकलने नही देता। वह रुका, अरुणोदय तक लेटा रहा; फिर अरुणोदय होने पर शक्ति लेकर निकला।

पक्षी ने जल्दी से जाकर बोधिसत्व को सूचना दी कि शिकारी आ रहा है। उस समय तक कछुए ने एक को छोड शेष सभी डोरियाँ काट डाली थी। उसके दाँत गिरने वाले हो गए थे, मुँह लोहू से लाल हो गया था। बोधिसत्व शिकारी को शक्ति लिए बिजली की तेजी से आता देख बन्धन तोड वन में जा घुसा। पक्षी वृक्ष-शाखा पर जा बैठा। कछुआ दुर्बलता के कारण वहीं पडा रहा। शिकारी ने कछुवे को एक थैली में डाल किसी ठूँठ पर रख दिया।

बोधिसत्व ने पलट कर देखा तो पता लगा कि कछुआ पकडा गया। उसने सोचा—मित्र की जान बचाऊँगा। तब उसने अपने आपको शिकारी को ऐसे

देखाया जैसे बहुत दुर्बल हो गया हो। शिकारी ने सोचा—यह (और) दुर्बल होगा; इसे मारूँगा। उसने शक्ति ले बोधिसत्त्व का पीछा किया। बोधिसत्त्व न बहुत दूर, न बहुत नजदीक चलते हुए उसे ले जगल में गए। जब जाना कि दूर निकल आए तब मुड कर दूसरे रास्ते से हवा की तेजी से जा, सींग से थैली उठा, जमीन पर गिरा, फाड कर कछुए को बाहर निकाला। कठफोडा भी वृक्ष पर से उतरा। बोधिसत्त्व ने दोनो को उपदेश देते हुए कहा—तुम्हारी सहायता से मेरे प्राण बचे। मैंने भी तुम्हारे प्रति मित्र का कर्तव्य पालन किया। अब कही शिकारी आकर तुम्हे पकड न ले, इसलिए मित्र कठफोडे, तू अपने पुत्रो को ले दूसरी जगह चला जा, और मित्र कछुए तू पानी में जा।

उन्होंने वैसा किया। शास्ता ने बुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

कच्छपो पाविसी वारिं कुरुङ्गो पाविसी वनं
सतपत्तो दुमग्गम्हा दूरे पुत्ते अपानयि ॥

[कछुआ पानी में जा घुसा। कुरुङ्ग वन में चला गया। कठफोडा वृक्ष-शाखा पर से अपने पुत्रो को दूर ले गया।]

अपानयि, अपनयि अर्थात् लेकर चला गया।

शिकारी वहाँ आ किसीको न देख फटी थैली ले दुःखी चित्त से अपने घर गया। वे भी तीनो मित्र जीवन भर विश्वास बनाए रखकर यथाकर्म गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। कठफोडा सारिपुत्र। कछुआ मोग्गल्लान। कुरुङ्ग मृग तो मैं ही था।

२०७. अस्सक जातक

"प्रथमस्सकराजेन. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्य्या के प्रलोभन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—*क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?*

"हाँ, सचमुच।"

"किसने उत्कण्ठित किया ?"

"पूर्व-भार्य्या ने।"

शास्ता ने कहा—भिक्षु, उस स्त्री का तेरे प्रति स्नेह नहीं है। पहले भी तू उसके कारण महान् दुःख भोग चुका है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काशी राष्ट्र के पोतली[1] नाम के नगर में अस्सक नामक राजा राज्य करता था। उसकी उब्बरी नाम की पटरानी थी। वह प्रिया थी, *मनोज्ञ थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी और थी मानुषिक और दिव्य-वर्ण के बीच* के वर्ण की। वह मर गई। उसकी मृत्यु से राजा शोकाभिभूत हुआ। उसे दुःख हुआ और वह दौर्मनस्य को प्राप्त हुआ। उसने रानी का शरीर द्रोणी में, तेल की काई में रखवा उसे अपनी चारपाई के नीचे रखवाया। फिर स्वयं बिना कुछ खाए पीए रोता पीटता हुआ चारपाई पर पड़ रहा।

---

[1] 'पोतल' भी पाठ है।

माता-पिता, अन्य नातेदार, मित्र अमात्य तथा ब्राह्मण गृहपति आदि "महाराज ! संस्कार अनित्य हैं . " कहते हुए उसे होश में न ला सके। उसके रोते पीटते ही सात दिन बीत गए।

उस समय पाँच अभिञ्ञा तथा आठ समापत्तियों के लाभी, तपस्वी होकर हिमवन्त प्रदेश में विचरते हुए बोधिसत्त्व ने प्रकाश फैला दिव्य चक्षु से जम्बु द्वीप को देखते हुए उस राजा को उस प्रकार रोते देखा। 'मुझे इसकी सहायता करनी चाहिए' सोच ऋद्धिबल से आकाश में उड राजा के बाग में उतर मङ्गल शिला-पट पर सोने की प्रतिमा की तरह बैठे।

पोतली नगर वासी एक ब्राह्मण-माणवक उद्यान में जा बोधिसत्त्व को देख प्रणाम करके बैठा।

बोधिसत्त्व ने उससे बातचीत कर पूछा—माणवक ! क्या राजा धार्मिक है ?

"भन्ते ! हाँ राजा धार्मिक है। लेकिन उसकी भार्य्या मर गई है। वह उसके शरीर को द्रोणी मे रखवा रोता पीटता लेटा है। आज उसे सातवाँ दिन हो गया। तुम राजा को इस प्रकार के दुःख से क्यो मुक्त नही करते ? क्या यह ठीक है कि तुम्हारे जैसे शीलवान् के रहते राजा इस प्रकार का दुःख अनुभव करे ?"

'माणवक ! मै राजा को नही जानता। लेकिन यदि वह आकर मुझे पूछे तो मै उसे उसकी भार्य्या का जन्म ग्रहण करने का स्थान बताकर, राजा के सामने ही उससे बातचीत करवाऊँ।"

"भन्ते ! तो मै जब तक राजा को लेकर आऊँ तब तक आप यहीं बैठें।"

माणवक ने बोधिसत्त्व से वचन ले राजा के पास जा वह बात सुनाकर कहा—उस दिव्य-चक्षुधारी के पास चलना चाहिए।

राजा यह सोच कि उब्बरी को देख सकूँगा सन्तुष्ट हो रथ पर चढ वहाँ गया। बोधिसत्त्व को प्रणाम कर उसने पूछा—क्या तुम सचमुच देवी के जन्म ग्रहण करने की जगह जानते हो ?

"महाराज ! हाँ।"

"वह कहाँ पैदा हुई है ?"

"महाराज ! उसने रूप मे मत्त होने के कारण, प्रमादवश कोई अच्छा

काम नहीं किया। इसलिए वह इसी उद्यान में गोबर के कीड़े की योनि में पैदा हुई।"

"मैं विश्वास नहीं करता।"

"तो तुझे दिखा कर उससे कहलवाता हूँ।"

"अच्छा, कहलवाएँ।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से ऐसा किया कि दो गोबर-पिण्ड लुढ़कते हुए राजा के सामने आएँ। वे चले आए। बोधिसत्व ने उसे दिखाते हुए कहा—महाराज! यह तेरी उब्बरी देवी तुझे छोड़ गोबर के कीड़े के पीछे पीछे आती है। उसे देखें।

"भन्ते! मैं विश्वास नहीं करता कि उब्बरी गोबर के कीड़े की योनि में जन्म ग्रहण करेगी।"

"महाराज! उससे कहलवाता हूँ।"

"भन्ते! कहलवाएँ।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से उसे बुलवाते हुए पूछा—उब्बरी! उसने मानुषी वाणी में कहा—हाँ भन्ते! क्या?

"पूर्व-जन्म में तेरा क्या नाम था?"

"भन्ते! मैं अस्सक राजा की उब्बरी नाम की पटरानी थी।"

"इस समय तुझे अस्सक राजा प्रिय है वा गोबर का कीड़ा।"

"भन्ते! वह मेरा पूर्व-जन्म था; उस समय मैं उसके साथ इस बाग में रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श का आनन्द लेती हुई विचरती थी। लेकिन अब जब से मेरा नया जन्म हुआ है, वह मेरा क्या लगता है? मैं अब अस्सक राजा को मार कर उसकी गर्दन के खून से अपने स्वामी गोबर के कीड़े के पैरों को धो सकती हूँ।"

यह कह परिषद के बीच में आदमियों की भाषा में उसने यह गाथाएँ कहीं—

> अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया,
> अनुकामयानुकामेन पियेन पतिना सह॥
> नवेन, सुखदुक्खेन, पोराणं, अपिधीयति.,
> तस्मा अस्सकरञ्ञाव कीटो पियतरो ममं॥

[परस्पर एक दूसरे की कामना करते हुए अपने प्रिय पति इस अस्सक राजा के साथ मैंने इस प्रदेश म विचरण किया। नए सुख दुःख से पुराना सुख दुःख ढका जाता है। इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा यह कीड़ा ही मेरा अधिक प्रिय है।]

अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया इस रमणीय उद्यान प्रदेश में पहले मैंने अस्सक राजा के साथ विचरण किया। अनुकामयानुकामेन; अनु निपात मात्र है। मैं उसकी कामना करती, वह मेरी कामना करता। इस प्रकार परस्पर कामना करते हुए के साथ। पियेन उस जन्म में प्रिय।

नवेन सुखदुक्खेन पोराणं अपिधीयति, भन्ते ! नए सुख से पुराना सुख नए दुःख से पुराना दुःख ढक जाता है। यही लोक-स्वभाव है—प्रकट करती है। तस्मा अस्सकरञ्ञाव कीटो पियतरो मम; क्योंकि नवीन से पुराना ढक जाता है इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा कीड़ा मुझे सौ गुणा प्रिय है।

इसे सुन अस्सक राजा को पश्चात्ताप हुआ। उसने वहाँ खड़े ही खड़े लाश निकलवा सिर से स्नान कर बोधिसत्त्व को प्रणाम किया। फिर नगर में प्रवेश कर दूसरी पटरानी बना धर्म से राज्य करने लगा।

बोधिसत्त्व भी राजा को उपदेश दे शोक-रहित कर हिमवन्त चले गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उत्कण्ठित (भिक्षु) स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय उब्बरी पूर्व-भार्य्या थी। अस्सक राजा उत्कण्ठित भिक्षु था। माणवक सारिपुत्र। तपस्वी तो मैं ही था।

२०८. संसुमार जातक

"अलमेतेहि अम्बेहि, . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है, कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध करने का प्रयत्न करता है, उसने पहले भी किया है, लेकिन त्रास मात्र भी पैदा नहीं कर सका।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में वन्दर की योनि में पैदा हुए। वह हाथी सदृश बल वाले, शक्ति-सम्पन्न, महान् शरीर धारी, अति सुन्दर थे। गङ्गा के मोड पर जगल में रहते थे।

उस समय गङ्गा में एक मगरमच्छ रहता था। उसकी भार्य्या ने बोधिसत्त्व को देखा। उसके मन में उसका मास खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने मगरमच्छ से कहा—स्वामी!, इस कपिराज का कलेजा खाना चाहती हूँ।

"भद्रे! हम जल-चर, वह स्थल-चर, क्या हम उसे पकड सकेंगे?"

"जिस किसी भी तरह हो पकड, यदि नहीं मिलेगा, मर जाऊँगी।"

"तो डर मत। एक उपाय है। मैं तुझे उसका कलेजा खिलाऊँगा।"

उसे आश्वासन दे मगरमच्छ, जिस समय बोधिसत्त्व गङ्गा का पानी पी, गङ्गा-तट पर बैठा था, बोधिसत्त्व के पास गया और बोला—वानरराज!

यहाँ इन अस्वादिष्ट फलो को खाते हुए तू अभ्यस्त स्थान में ही चरता है ? गङ्गा-पार आम, कटहल के मधुर फलो की सीमा नहीं। क्या तुम्हें गङ्गा-पार जाकर फल-मूल नही खाने चाहिएँ ?

"मगरराज ! गङ्गा में पानी बहुत है। वह विस्तृत है। मैं उधर कैसे जाऊँ ?"

"यदि चले तो मैं तुझे अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाऊँगा।"

उसने उसका विश्वास कर 'अच्छा' कह स्वीकार किया। 'तो आ मेरी पीठ पर चढ' कहने पर चढ गया। मगरमच्छ थोडी दूर जा उसे डुबाने लगा। बोधिसत्त्व ने पूछा—दोस्त ! यह क्या ? मुझे पानी में डुबा रहा है।?

"मैं तुझे धर्म-भाव से नहीं ले जा रहा हूँ। मेरी भार्य्या के मन में तेरे कलेजे के लिए दोहद उत्पन्न हुआ है। मैं उसे तेरा कलेजा खिलाना चाहता हूँ।"

"दोस्त ! तूने कह दिया सो अच्छा किया। यदि हमारे पेट मे कलेजा हो तो एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमते हुए चूर्ण विचूर्ण हो जाए।"

"तो तुम कहाँ रखते हो ?"

बोधिसत्त्व ने पास ही पके फलो से लदा हुआ एक गूलर का पेड दिखाकर कहा—देख, हमारे कलेजे इस गूलर के पेड पर लटकते हैं।

"यदि मुझे कलेजा दे, तो मैं तुझे नही मारूँगा।"

"तो आ मुझे वहाँ ले चल। मैं तुझे वृक्ष पर लटका हुआ दूँगा।"

वह उसे लेकर वहाँ गया। बोधिसत्त्व ने उसकी पीठ पर से छलाग मार गूलर की शाखा पर बैठ कहा—सौम्य ! मूर्ख मगरमच्छ ! तूने यह मान लिया कि इन प्राणियो का कलेजा वृक्ष की शाखाओ पर होता है। तू मूर्ख है। मैंने तुझे ठगा है। तेरे फल-मूल तेरे ही पास रहें। तेरा शरीर ही बडा है। अक़ल नहीं है।

यह कह, इसी बात को प्रकट करते हुए यह गाथाएँ कही—

> अलमेतेहि अम्बेहि जम्बूहि पनसेहि च,
> यानि पारं समुद्दस्स वरं मय्हं उदुम्बरो ॥
> महती वत ते बोन्दि न च पञ्ञा तदूपिका,
> सुसुमार वञ्चितो मेसि गच्छ दानि यथासुखं ॥

[यह जो तू समुद्र-पार आम, जामुन और बटहल बताता है, मुझे वह नहीं चाहिए। मुझे गूलर ही अच्छा है। तेरा शरीर बड़ा है; लेकिन तेरी प्रज्ञा उसके समान नहीं। मगरमच्छ! तू मेरे द्वारा ठगा गया है। अब तू सुखपूर्वक जा।]

अलमेतेहि, जो तूने द्वीप में देखे, वह मुझे नहीं चाहिएँ। वरं मय्हं उदुम्बरो मुझे यह उदुम्बर वृक्ष ही अच्छा है। बोन्दि शरीर। तदूपिका, तेरी प्रज्ञा तेरे शरीर के अनुकूल नहीं है। गच्छदानि यथासुखं, अब सुखपूर्वक जा, तेरे (लिए) कलेजा नहीं है।

मगरमच्छ (जूए में) हजार हार जाने की तरह दुखी, दौर्मनस्य को प्राप्त हो चिन्ता करता हुआ अपने निवास-स्थान को चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मगरमच्छ देवदत्त था। मगरमच्छी चिञ्चामाणविका। कपिराज तो मैं ही था।

२०९. कक्कर जातक

"दिट्ठा मया वने रुक्खा...."यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर के शिष्य तरुण भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह अपने शरीर की रक्षा करने में होशियार था। शरीर के लिए सुखकर न होगा, इस डर से किसी अति-शीत वा अति-उष्ण चीज का उपयोग न

करता था। सर्दी-गर्मी से शरीर को कष्ट होगा, इस डर से बाहर नहीं निकलता था। बहुत पका या जला भात नहीं खाता था। उसकी वह शरीर-रक्षा की होशियारी सघ में प्रकट हो गई। धर्मसभा में भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक तरुण शरीर-रक्षा के काम में होशियार है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "यह बातचीत" कहने पर 'भिक्षुओ' यह तरुण अपने शरीर-रक्षा के काम में न केवल अभी होशियार है, पहले भी होशियार था।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व जगल में वृक्ष-देवता हुए।

एक चिडीमार पालतू बटेर, बालो का फदा तथा लाठी ले जगल में बटेरो को फँसाता हुआ, भाग कर जगल में चले गए एक बटेर को फाँसने लगा। वह बाल के फदे म होशियार होने के कारण फद में नही आता था। वह उठ उठ कर छिप जाता।

शिकारी अपने आपको शाखा-पत्तो से ढक बार बार लकडी और फदा लगाता। बटेर ने उसे लज्जित करने के लिए मानुषी भाषा बोलते हुए पहली गाथा कही—

> दिट्ठा मया वने रुक्खा अस्सकण्णविभीटका,
> न तानि एव सक्कन्ति यथा त्व रुक्ख सक्कसि ॥

[मैंने इस वन के अनेक अस्सकण्ण (अश्वकर्ण) और विभीटका (विभीतक) वृक्ष देखे, लेकिन तू वृक्ष जिस तरह से इधर उधर चलता है, वह नही चलते।]

मित्र शिकारी मया इस वने पैदा हुए बहुत से अस्सकण्ण तथा विभीटक खे। तानि वृक्ष यथा त्व सक्कसि, तू सक्रमण करता है, इधर उधर विचरता एव न सक्कन्ति, नहीं सक्रमण करते है, नही विचरते है।

ऐसा कह वह तीतर भाग कर दूसरी जगह चला गया। उसके भाग जाने के समय चिड़ीमार ने दूसरी गाथा कही—

पुराणचक्करो चायं भेत्वा पञ्जरमागतो,
कुसलो वाळपासानं अपक्कमति भासति ॥

[यह पुराना बटेर पिंजरा तोड़ कर चला आया। जाल के फंदे में होशियार परिहास करके चल देता है।]

कुसलो वाळपासानं, जाल के फंदे में होशियार प्राणी को न बांधने देकर अपक्कमति और भासति, बोलकर भाग जाता है। ऐसा कह चिड़ीमार जंगल में घूम जो मिला लेकर घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी देवदत्त था। बटेर अपनी शरीर-रक्षा करने में होशियार तरुण भिक्षु। उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

२१०. कन्दगलक जातक

अम्भो कोनामयं रुक्खो, यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय सुगत का रंग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

तब शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त ने सुगत का रंग-ढंग बनाया कहा—भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ, पहले भी प्राप्त हुआ है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व हिमवन्त प्रदेश में कठफोरनी पक्षी होकर उत्पन्न हो खदिरवन में ही रहने लगे। उसका नाम खदिरवनी ही हो गया। उसका एक कन्दगळक नाम का मित्र था। वह पाळिभद्दक वन में रहता था। एक दिन वह खदिरवनी के पास गया। खदिरवनी ने 'मेरा मित्र आया है' सोच कन्दगळक को ले खदिरवन में प्रवेश कर खदिर के तने को चोंच से ठोंग मार कीड़े निकाल कर दिए। कन्दगळक जो जो खाता मीठे पूए की तरह तोड़ तोड़ कर खाता। उसे खाते समय ही अभिमान हो गया। यह भी कठफोरनी योनि में पैदा हुआ है, मैं भी। मुझे इसके दिए शिकार से क्या प्रयोजन ? मैं स्वयं ही शिकार करूँगा। उसने खदिरवनी से कहा—"मित्र ! तू कष्ट मत उठा। मैं ही खदिरवन में शिकार करूँगा।"

उसने उसे कहा—मित्र ! तू सेमर पाळिभद्दक आदि वन में निस्सार लकड़ी में शिकार करने वाले कुल में पैदा हुआ है। खदिर की लकड़ी सारवान् होती है, कठोर होती है। तू यह इच्छा मत कर।

कन्दगळक बोला—क्या मैं कठफोरनी की योनि में पैदा नहीं हुआ ? उसने उसका कहना न मान जल्दी से जा खदिर वृक्ष पर चोंच से ठोंग मारी। उसी समय उसकी चोंच टूट गई। आँखें बाहर निकली सी हो गई। सीस फट गया। वह तने पर खड़ा न रह सकने के कारण जमीन पर गिरा और पहली गाथा कही—

> अम्भो को नामय रुक्खो सीनपत्तो सकण्टको,
> यत्थ एकप्पहारेन उत्तमङ्गं विसादितं ॥

[भो ! इस पतले पत्तों वाले काँटेदार वृक्ष का क्या नाम है, जिस पर एक ही चोट करने से मेरा सिर फट गया।]

अम्भो को नामय रुक्खो, भो खदिरवनी ! इस वृक्ष का क्या नाम है ? को नाम सो यह भी पाठ है। सीनपत्तो सूक्ष्म पत्तों वाला। यत्थ एकप्पहारेन, जिस वृक्ष पर एक ही चोट लगाने से उत्तमङ्गं विसादितं, सिर फूट गया, न

केवल सिर ही फूटा चोच भी टूट गई। वह वेदना से पीडित हो खदिर-वृक्ष को न जान सका कि यह खदिर-वृक्ष है, और इस गाथा से विलाप किया—

इसे सुन खदिरवनी ने दूसरी गाथा कही—

अचारुताय[1] वितुद वनानि कट्ठङ्गरुक्खेसु असारकेसु,
अथासदा खदिर जातसार यत्थब्भिदा गरुळो उत्तमङ्गं ॥

[अभी तक सार-रहित काठ के वृक्षो वाले वनो को ठोग मारी। अब यह सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ, जहाँ पक्षी ने सिर तुड़वाया।]

अचारुताय, उसने आचरण किया। **वितुद वनानि** सार रहित सेमर पालिभद्दक के बन आदि को ठोग मारते हुए बीधते हुए। **कट्ठङ्गरुक्खेसु असारकेसु**, वन की सामान्य लकडी सार रहित पालिभद्दक सेमर आदि में। **अथासदा खदिर जातसार**, छोटपन से सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ। **यत्थब्भिदा**, जिस खदिर-वृक्ष से लगकर तोड लिया फाड लिया **गरुळो** पक्षी। सभी पक्षियो के लिए आदर का शब्द है।

खदिरवनी ने उसे यह सुना कर कहा—कन्दगळक ! जहाँ तूने सिर तुडाया यह खदिर नाम का सारवान् वृक्ष है। वह वही मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का मेल बैठाया।

उस समय कन्दगळक देवदत्त था। खदिरवनी तो मैं ही था।

---

[1] अचारिताय भी पाठ है।

दूसरा परिच्छेद

७. वीरणत्थम्भक वर्ग

२११. सोमदत्त जातक

"अकासि योग्गं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लालुदायी स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

दो तीन जनो के बीच में वह एक शब्द भी न बोल सकता। अधिक लज्जाशील होने के कारण कुछ कहने जाकर कुछ दूसरा ही कह देता। धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु उसके बारे में चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" "भिक्षुओ, लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नही है, पहले भी लज्जाशील ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशीदेश में एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला में विद्या सीख घर लौटे। यह देख कि माता-पिता बहुत दरिद्र हैं, उसने सोचा कि दुर्गति को प्राप्त माता-पिता की अवस्था सुधारूँगा। माता-पिता की आज्ञा ले वह वाराणसी जा राजा की सेवा में रहने लगा। वह राजा को प्रिय हुआ, उसके मन को अच्छा लगने वाला हुआ।

उसका बाप दो बैलो से खेती कर पेट पालता था। एक बैल मर गया। उसने बोधिसत्त्व से कहा—तात ! एक बैल मर गया। खेती नही होती।

राजा से एक बैल माँग। "तात! राजा की सेवा में रहते थोड़े ही दिन हुए हैं। अभी बैल माँगना ठीक नहीं। आप ही माँगें।"

"तात! तू मेरे अधिक लज्जाशील होने को नहीं जानता? मैं दो तीन जनों के सामने बोल नहीं सकता। यदि मैं राजा के पास बैल माँगने जाऊँगा; तो यह भी देकर आऊँगा।"

"तात! जो होना है सो हो। मैं राजा से नहीं माँग सकता। लेकिन मैं तुम्हें बोलने का अभ्यास करा दूँगा।"

"तो अच्छा, मुझे अभ्यास करा।"

बोधिसत्व उसे ऐसे श्मशान में ले गए, जहाँ बीरण-घास के झुंड थे। वहाँ घास के पूले बाँधकर 'यह राजा है', 'यह उपराजा है', 'यह सेनापति है' नाम रख, क्रम से पिता को दिखा कर कहा—"तात! तू राजा के पास जा 'महाराज की जय हो' कह, इस तरह यह गाथा कह बैल माँगना। गाथा सिखाई—

> द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे,
> तेसु एको मतो देव दुतियं देहि खत्तिय॥

[महाराज! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव! उनमें से एक मर गया। राजन! दूसरा दें।]

ब्राह्मण ने एक वर्ष में गाथा का अभ्यास कर बोधिसत्व को कहा— "तात! सोमदत्त! मुझे गाथा (कहने) का अभ्यास हो गया। अब मैं इसे जिस किसी के सामने कह सकता हूँ। मुझे राजा के पास ले चल।

उसने कहा 'तात अच्छा' और योग्य भेंट लिवा पिता को राजा के पास ले गया। ब्राह्मण ने 'महाराज की जय हो' कह भेंट दी। राजा ने पूछा—

'सोमदत्त! यह ब्राह्मण तेरा क्या लगता है?'

"महाराज! मेरा पिता है।"

"किस मतलब से आया है?"

उस समय ब्राह्मण ने बैल माँगने के लिए गाथा कहते हुए कहा—

> द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे,
> तेसु एको मतो देव दुतियं गण्ह खत्तिय॥

[महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव ! उनमें से एक मर गया। राजन् ! दूसरा लें।]

राजा ब्राह्मण से विमुख हो गया। उसके कहने का भाव जान मुस्कराया और बोला—सोमदत्त ! तुम्हारे घर मे मालूम होता है बहुत बैल है।

"महाराज ! आप देंगे तो हो जाएँगे।"

राजा ने बोधिसत्व पर प्रसन्न हो ब्राह्मण को सोलह अलङ्कृत बैल और उसका रहने का गाँव ब्रह्मदान दे, बहुत से धन के साथ विदा किया।

ब्राह्मण सर्व श्वेत सैन्धव घोडे जुते रथ पर चढ बहुत से अनुयायियो के साथ गाँव आया। बोधिसत्व ने रथ में बैठ, पिता के साथ आते हुए कहा—तात ! मैंने सारा साल तुम्हें अभ्यास कराया; लेकिन अन्त में तुमने अपना बैल राजा को दिया।

इतना कह यह गाथा कही—

> अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो
> संवच्छर बीरणत्थम्भकस्मि,
> व्याकासि सञ्ञं परिसं विगय्ह
> न निय्यमो तायति अप्पपञ्ञं ॥

[आलस्य रहित हो नित्य साल भर तक वीरण-घास के झुडो वाले श्मशान में अभ्यास किया, लेकिन परिषद में जाकर भूल गया। अल्प-प्रज्ञ आदमी का अभ्यास भी त्राण नही करता।]

अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो संवच्छरं बीरणत्थम्भकस्मि, तू नित्य प्रमादरहित हो बीरण के झुड वाले श्मशान में वर्ष भर अभ्यास करता रहा। **व्याकासि सञ्ञं परिसं विगय्ह,** परिषद में आकर उस सञ्ञा को विकृत कर दिया; मतलब बदल दिया। **न निय्यमो तायति अप्पपञ्ञं,** अल्प प्रज्ञा वाले आदमी का नियम, अभ्यास त्राण नही करता; रक्षा नही करता।

उसकी बात सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही—

इम याचनको तात सोमदत्त निगच्छति
अलाभ धनलाभञ्च एवधम्मा हि याचना ॥

[तात सोमदत्त ! माँगने वाले की दो ही हालते होती है—धन मिलता है या नही मिलता। माँगने का यह स्वभाव ही है।]

एवधम्मा हि याचना; माँगने का यही स्वभाव है।

शास्ता ने "भिक्षुश्रो-लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नही है, पहले भी अधिक लज्जाशील ही था" कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय सोमदत्त का पिता लालुदायी था। सोमदत्त मैं ही था।

२१२. उच्छिट्ठभत्त जातक

"अञ्ञो उपरिमो वण्णो " यह शास्ता ने जतवन म विहार करते समय पूर्व भार्य्या की आसक्ति के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"सचमुच।"

"तुझे किसने आकर्षित किया?"

"पूर्व भार्य्या ने।"

"भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अपकार करने वाली है। पहले भी इसने तुझे अपने जार का जूठा खिलाया है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने एक ऐसे दरिद्र नट के कुल मे जन्म ग्रहण किया जो भीख माँगकर जीविका चलाता था। बड़े होने पर वह दरिद्र अवस्था को प्राप्त हो भीख माँग कर जीविका चलाने लगे।

उस समय काशी देश के एक गाँव में एक ब्राह्मण की ब्राह्मणी दुश्शीला थी, पापिन थी, व्यभिचार करती थी। एक दिन किसी काम से जब ब्राह्मण बाहर गया तो उसका जार मौका देख घर में घुस आया। उसने उसके साथ अनाचार कर चुकने पर कहा—"कुछ अच्छा खा कर ही जाओगे?" उसने भात तैयार कर दाल (=सूप) व्यञ्जन से युक्त भात परोस कर दिया कि तू खा। स्वय ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई द्वार पर खडी हुई।

उस समय बोधिसत्व ब्राह्मणी के जार के खाने की जगह पर भीख की प्रतीक्षा में खड़े थे। तभी ब्राह्मण घर की तरफ आया। ब्राह्मणी ने उसे आते देख जल्दी से घर मे जाकर जार को कहा—'उठ, ब्राह्मण आ रहा है' और उसे कोठे में उतार दिया। ब्राह्मण के घर में दाखिल हो बैठने के समय पीढा तथा हाथ धोने को पानी दे जार के जूटे छोडे ठडे भात के ऊपर गरम भात परोस दिया। उसने जब भात में हाथ डाला तो ऊपर का भात गरम और नीचे का ठडा पाया। वह सोचने लगा कि यह दूसरे का खाकर बचा हुआ जूठा भात होगा। उसने ब्राह्मणी से पूछते हुए पहली गाथा कही—

> अञ्ञो उपरिमो वण्णो अञ्ञो वण्णोव हेट्ठिमो,
> ब्राह्मणि त्वेव पुच्छामि किं हेट्ठा किं च उप्परि॥

[ऊपर (के भात) का रग ढग दूसरा है, नीचे (के भात) का दूसरा। ब्राह्मणी! तुझे ही पूछता हूँ कि यह क्या ऊपर है और क्या नीचे?]

वण्णो आकार। यह ऊपर वाले के गरम होने की और नीचे वाले के ठडे होने की बात पूछते हुए कहा। **किं हेट्ठा किञ्च उप्परि** परोसा हुआ भात

ऊपर ठंडा और नीचे गरम होना चाहिए। यह वैसा नहीं है। इसलिए तुझे पूछता हूँ। किस कारण से ऊपर का भात गरम और नीचे का ठंडा है?

ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट हो जाने के भय से ब्राह्मण के बार बार कहने पर भी चुप ही रही। उस समय बोधिसत्व को यह सूझा कि कोठे में बिठाया हुआ आदमी जार होगा और यह घर का स्वामी। ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट होने के भय से कुछ नहीं बोलती। हन्त! मैं इसकी करतूत प्रकट कर जार के कोठे में बिठाए होने की बात कह दूँ।

उसने ब्राह्मण के घर से निकलने से जार के घर में प्रवेश करने, अनाचार करने, श्रेष्ठ भात खाने, ब्राह्मणी का दरवाजे पर खड़े हो रास्ता देखने और जार को कोठे में उतारने तक का सब हाल कह दूसरी गाथा कही—

अहं नटोस्मि भद्दन्ते भिक्खकोस्मि इधागतो,
अयं हि कोट्ठमोतिण्णो अयं सो यं गवेससि ॥

[स्वामी! मै नट हूँ। भीख मांगने के लिए यहाँ आया हूँ। यह है कोठे में उतरा हुआ और यह ही है जिसे तू खोजता है।]

अहं नटोस्मि भद्दन्ते, स्वामी! मै नट जाति का हूँ। **भिक्खकोस्मि इधागतो** मैं भिखमंगा यहाँ भीख मांगता हुआ आया हूँ। **अयं हि कोट्ठमोतिण्णो** यह इसका जार इस भात को खाता हुआ तेरे भय से कोठे में उतरा है। **अयं सो यं गवेससि,** जिसे तू खोज रहा है कि यह किसका जूठा भात होगा, वह यही है। 'इसे बालो से पकड़, कोठे से निकाल ऐसा कर जिसमें इसे होश रहे और फिर यह ऐसा पाप-कर्म न करे' कह चला गया।

ब्राह्मण उन दोनो को डरा, पीट कर ऐसी शिक्षा दे जिसमें वे फिर ऐसा पाप-कर्म न करें, कर्मानुसार गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ब्राह्मणी पूर्व-भार्य्या थी। ब्राह्मण उत्कण्ठित। नट-पुत्र मैं ही था।

२१३. भरु जातक

"इसीनमन्तर कत्वा. " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कौशल राजाओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् के भिक्षुसंघ का लाभ तथा सत्कार बहुत था। जैसे कहा है—"उस समय भगवान् का सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उन्हें चीवर, पिण्डपात (=भिक्षा), शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें मिलती थी, भिक्षुसंघ का भी सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें मिलती थी। लेकिन दूसरे तैर्थिक परिव्राजकों का न सत्कार होता था, न गौरव होता था, न मान होता था, न पूजा होती थी, न आदर होता था और न उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें ही मिलती थी।" इस प्रकार जब उनका लाभ सत्कार जाता रहा तो वे दिन रात छिपकर इकट्ठे हो विचार करते कि जब से श्रमण गौतम पैदा हो गया है तभी से हमारा लाभ सत्कार जाता रहा, श्रमण गौतम को ही श्रेष्ठ लाभ तथा यश मिलता है। क्या कारण है कि इसे यह सब मिलता है?

कुछ ने कहा—श्रमण गौतम सकल जम्बूद्वीप में उत्तम स्थान श्रेष्ठ-भूमि पर रहता है। इसीसे उसे लाभ सत्कार की प्राप्ति होती है। बाकी बोले—यही कारण है। हम भी जेतवन में तैर्थिक आश्रम बनवाएँ। इससे हमको भी लाभ होगा।

उन सब ने 'यह ठीक है' निश्चय कर सोचा—यदि हम राजा को बिना सूचित किए आश्रम बनवाएँगे तो भिक्षु रोक देंगे। कुछ पाकर पक्षपात न

करने वाला कोई नहीं है। इसलिए राजा को रिश्वत दे आश्रम के लिए जगह लेंगे।

यह सलाह कर उपस्थापकों से माग राजा को लाख दे कहा—महाराज ! हम जेतवन में तैर्थिक-आश्रम बनाएँगे। यदि भिक्षु तुम्हें कहें कि हम बनाने नहीं देंगे तो उनकी बात स्वीकार न करना।

राजा ने रिश्वत के लोभ से 'अच्छा' कह स्वीकार किया। तैर्थिकों ने राजा को मिला बढ़इयों को बुलवा काम शुरू किया। बड़ा शोर हुआ। शास्ता ने पूछा—आनन्द ! यह हल्ला करने वाले, शोर मचाने वाले कौन हैं ?

"भन्ते ! अन्य तैर्थिक जेतवन में तैर्थिक-आश्रम बनवा रहे हैं। वही यह शोर हो रहा है।"

"आनन्द ! यह स्थान तैर्थिकों के योग्य नहीं है। तैर्थिक शोर-प्रिय होते हैं। उनके साथ रहना नहीं हो सकता।"

शास्ता ने भिक्षु-संघ को एकत्र कर कहा—भिक्षुओ, जाओ राजा को कह कर *तैर्थिक-आश्रम का बनवाना रुकवाओ।*

भिक्षु जाकर राजा के प्रवेशद्वार पर खड़े हुए। राजा ने यह सुना कि भिक्षु आए हैं तो यह समझ कर कि तैर्थिकों के आश्रम के ही बारे में आए होंगे रिश्वत लिए रहने के कारण कहलवा दिया कि राजा घर में नहीं है। भिक्षुओं ने जाकर शास्ता से कहा। शास्ता ने 'रिश्वत के कारण ऐसा करता है' सोच दोनों प्रधान शिष्यों को भेजा। राजा ने उनका भी आना सुन वैसे ही कहलवा दिया। उन्होंने भी आकर शास्ता से कहा।

'सारिपुत्र ! अब राजा को घर में बैठना न मिलेगा, बाहर निकलना ही होगा' कह *शास्ता अगले दिन पूर्वाह्ण समय पहन कर, पात्र चीवर ले पाँच सौ* भिक्षुओं के साथ राजा के प्रवेशद्वार पर पहुँचे। राजा ने सुना तो वह महल से उतर पात्र ले शास्ता को (अन्दर) लिवा भिक्षुसंघ को, जिसमें मुख्य बुद्ध थे यवागु-खाद्य दे शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने राजा को एक तरह का धर्मोपदेश करते हुए कहा—महाराज ! पुराने राजाओं ने रिश्वत ले शीलवानों में परस्पर झगड़ा कराया। वे अपने देश के स्वामी नहीं रहे और महान् विनाश को प्राप्त हुए।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में भरु राष्ट्र में भरु राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्ति प्राप्त थे। वे गण-शास्ता तपस्वी हो, हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रह नमक खटाई खाने के लिए पाँच सौ तपस्वियो को साथ ले हिमवन्त से उतरे। क्रमश भरु नगर पहुँच, वहाँ भिक्षा माँग, नगर से निकल उत्तर-द्वार पर टहनी-टहनी वाले वट वृक्ष के नीचे बैठ भोजन कर वही रहने लगे। इस प्रकार जब उस ऋषि-समूह को वहाँ रहते आधा महीना हुआ, एक दूसरा गण-शास्ता पाँच सौ तपस्वियो सहित आ, नगर में भिक्षा माँग, नगर से निकल दक्षिण-द्वार पर उसी वट वृक्ष के नीचे बैठ, भोजन कर वही रहने लगा। वे दोनो ऋषि-समूह वहाँ यथारुचि रह कर हिमालय चले गए। उनके चले जाने पर दक्षिण-द्वार का वट वृक्ष सूख गया। अगली बार आने पर दक्षिण-द्वार के वट-वृक्ष के नीचे रहने वालो ने पहले पहुँच जब यह देखा कि उनका वट-वृक्ष सूख गया है, तो वे भिक्षा माँग, नगर से निकल, उत्तर-द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे जा, भोजन कर वही रहने लगे। दूसरे ऋषि पीछे आकर, नगर में भिक्षा माँग, अपने वृक्ष के नीचे पहुँच भोजन कर वहाँ रहने लग।

उन दोनो मे 'यह तुम्हारा वृक्ष है' 'यह हमारा वृक्ष है' करके झगडा हो गया। झगडा बढ गया। एक पक्ष ने कहा कि हम यहाँ रहते थे, इसलिए इस स्थान पर तुम्हारा अधिकार नही। दूसरे ने कहा कि इस बार हम यहाँ पहले आए, इसलिए तुम्हारा अधिकार नही। इस प्रकार वे दोनो 'हम स्वामी' 'हम स्वामी' करके वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगडा करते हुए राज-कुल गए। राजा ने पहले रहे ऋषि-समूह को ही स्वामी बनाया। दूसरो ने कहा अब हम यह नही कहलाएँगे कि इनसे हार गए। उन्होने दिव्य-चक्षु से चक्रवर्ती राजा के योग्य एक रथ का चौखटा देख, ला, राजा को रिश्वत दे कहा— महाराज ! हमें भी (उस स्थान का) स्वामी बनाएँ।

राजा ने रिश्वत ले दोनो समूह रहें (कह) दोनो को स्वामी बनाया। दूसरे ऋषियो ने उस रथ के चौखटे के रत्नो के पहिए लाकर रिशवत दे कहा— महाराज ! हमें ही स्वामी करें।

राजा ने वैसा ही किया।

ऋषियो ने सोचा कि हम काम-भोगो को छोड प्रव्रजित हुए। फिर वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगडते हुए रिश्वत देने लगे। हमने यह अनुचित किया। इस प्रकार पश्चात्ताप करके जल्दी से भाग कर हिमालय ही चले गए।

सकल भरु राष्ट्रवासी देवताओ ने एकत्र हो कर कहा—राजा ने शील-वानो में झगडा पैदा करके अच्छा नही किया। उन्होने क्रोधित हो तीन सौ योजन के भरु राष्ट्र को समुद्र मे तूफान लाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार एक भरु राजाओ के कारण सारा राष्ट्र विनाश को प्राप्त हुआ (यह) शास्ता ने यह पूर्वजन्म की कथा ला अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कही—

इसीनमन्तर कत्वा भरुराजाति मे सुत,
उच्छिन्नो सहरट्ठेन स राजा विभव गतो॥
तस्मा हि छन्दागमन नप्पससन्ति पण्डिता,
अदुट्ठचित्तो भासेय्य गिर सच्चूपसहित॥

[ऐसा मैंने सुना कि ऋषियों में भेद करके भरु राजा अपने राष्ट्र सहित विनाश को प्राप्त हुआ। इसलिए पण्डित लोग पक्षपात की प्रशसा नही करते। द्वेषरहित चित्त से सच्ची बात कह देनी चाहिए।]

अन्तर कत्वा, पक्षपात के कारण भेद करके। भरु राजा भरु राष्ट्र का राजा। इति मे सुत ऐसा मैंने पहले सुना। तस्मा हि छन्दागमन, क्योकि पक्षपात करके भरु राजा राष्ट्र सहित नष्ट हुआ इसलिए पण्डित पक्षपात की प्रशसा नही करते। अदुट्ठचित्तो, विकारो से मलिन चित्त न हो। भासेय्य गिरं सच्चूपसहित यथार्थ, अर्थयुक्त, सकारण वाणी ही बोले।

जिन्होने भरु राजा के रिश्वत लेते समय 'यह उचित नही है' कह निन्दा करते हुए सच्ची बात कही, वे जहाँ खडे थे वहाँ नारियल के द्वीप में आज भी हज़ारो दीपक (जलते) दिखाई देते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'महाराज, पक्षपात नहीं करना चाहिए, प्रव्रजितो में झगडा नही कराना चाहिए' कह जातक का मेल बैठाया।

मै उस समय में ज्येष्ठ ऋषि था।

राजा ने तथागत के भोजन करके चले जाने पर आदमियों को भेज कर तैंथिको का आश्रम विध्वस करा दिया। तैंथिक अप्रतिष्ठित हो गए।

२१४. पुण्णनदी जातक

"पुर्ण नदिं...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा में भिक्षुओ ने तथागत की प्रज्ञा के बारे में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! सम्यक् सम्बुद्ध महाप्रज्ञा हैं, विस्तृतप्रज्ञा हैं, प्रसन्न-प्रज्ञा है, क्षिप्र-प्रज्ञा हैं, तीक्ष्ण प्रज्ञा हैं, उनकी प्रज्ञा बीधने वाली हैं, वे उपाय-कुशल हैं। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, तथागत केवल अभी प्रज्ञावान् तथा उपायकुशल नही है, पहले भी थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पुरोहित-कुल में पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जा सब शिल्प सीख पिता के मरने पर पुरोहित का पद पा राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए।

आगे चलकर राजा ने चुगली करने वालो की बात का विश्वास कर क्रोधित हो बोधिसत्त्व को 'मेरे पास मत रह' कह निकाल दिया। बोधिसत्त्व स्त्री-बच्चो को ले काशी के एक गामडे में रहने लगे। फिर राजा को बोधि-

सत्य के गुणो की याद आई। उसने सोचा कि किसीको भेजकर मेरे लिए आचार्य्य को बुलाना ठीक नही। एक गाथा रच, पत्र लिख, कौवे का मास पकवा, सफेद वस्त्र से लपेट, राजकीय मोहर लगाकर भेजूंगा। यदि पण्डित होगा, पत्र पढ कर कौवे के मास का भाव समझ कर चला आएगा। नहीं, तो नहीं आएगा। उसने यह गाथा पत्र में लिखी—

पुण्णं नदिं येन च पेय्यमाहु,
जातं यवं येन च गुय्हमाहु ॥
दूरं गतं येन च अव्हयन्ति,
सो त्यागतो हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण ॥

[जिसके पीने योग्य होने से नदी पूर्ण समझी जाती है, जिसको छिपा सकने योग्य होने से जौ उत्पन्न हुए समझे जाते है; जिसके बोलने से दूर गए आने वाले समझे जाते हैं; वह तेरे लिए आया है। ब्राह्मण ! इसे खा।]

पुण्ण नदिं येन च पेय्यामाहु, 'काकपेय्य नदी' कहते हुए पूर्ण नदी को ही पेय्य कहते हैं। अपूर्ण नदी काकपेय्य नदी नहीं कहलाती; जब नदी किनारे खडे हो गरदन पसार कर कौआ पी सकता है, तभी उसे काकपेय्य कहते हैं। **जातं यवं येन च गुय्हमाहु**, जौ शीर्षक मात्र है। यहाँ सभी पैदा हुई, उत्पन्न हुई, तरुण खेती से मतलब है। वह जब अन्दर दाखिल हुए कौवे को छिपा सकती है तभी गोपन करने वाली होने से गुय्ह कहलाती है। किसे छिपाती है ? कौवे को। इस प्रकार कौवे को छिपाने से काक-गुय्ह। काक-गुय्ह कहने वाले (लोग) गुह्य-वचन का कारण कौवा होता है इसलिए काक-गुय्ह कहते हैं। इसीलिए कहा है—**येन च गुह्यमाहु** । **दूरं गतं येन च अव्ह्यन्ति** दूर गया हुआ प्रवासी प्रिय जन होने पर; जिसके आकर बैठने पर (लोग) कहते है कि यदि अमुक नाम का व्यक्ति आने वाला है तो कौवे बोल अथवा जिसके बोलने पर लोग समझते हैं क्योंकि कौवा बोलता है, इसलिए अमुक नाम का व्यक्ति आएगा; इस तरह कहने वाले जिसके कारण कहते हैं, विचार करते हैं, व्यक्त करते है। **सो त्यागतो** वह तेरे लिए लाया गया है। **हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण**, ब्राह्मण ग्रहण कर, खा। मतलब इस कौवे के मास को खा।

इस प्रकार राजा ने इसे पत्र में लिख बोधिसत्त्व के पास भेजा। उसने पत्र बाँच 'राजा मुझे देखना चाहता है' यह दूसरी गाथा लिखी—

यतो मं सरती राजा वायसम्पि पहेतवे,
हंसा कोञ्चा मयूरा च असतियेव पापिया ॥

[जब राजा कौवे का मांस खाकर भी मुझे भेजना याद रखता है, तो हंस, क्रौञ्च और मयूर की तो बात ही क्या ? याद न आना ही बुरा है।]

यतो मं सरति राजा वायसम्पि पहेतवे जब राजा कौवे का मांस खाकर भी मुझे उसे भेजना याद रखता है। हंसा कोञ्चामयूरा च, जब इसके लिए हंस आदि लाए जाएँगे, यह हंसमांस आदि खाएगा, तब मुझे क्यों न याद करेगा? अट्ठकथा में हंसकोञ्चमयूरानं पाठ है। वह सुन्दरतर है। अर्थ यही है कि इन हंस आदि का मांस खाकर मुझे क्यों न याद करेगा? असतियेव पापिया यह या वह मिलने पर याद आना ही अच्छा है। दुनिया में याद न आना ही बुरा है, याद न करना ही हीन है, खराब है। वह हमारे राजा में नहीं है। राजा मुझे याद करता है। मेरे आने की प्रतीक्षा करता है। इसलिए जाऊँगा।

गाडी जुडवा, जाकर राजा को देखा। राजा ने सन्तुष्ट हो पुरोहित का ही पद दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पुरोहित मैं ही था।

२१५. कच्छप जातक

"अवधी वत अत्तानं.. "यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोकालिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा महातक्कारि[1] जातक में आएगी। उस समय शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, कोकालिक केवल अभी अपनी वाणी से नहीं मारा गया, पहले भी मारा गया। यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अमात्य-कुल में पैदा हो, बडे होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए। वह राजा बहुत बोलने वाला था। वह बोलता तो दूसरो को बोलने का मौका न मिलता। बोधिसत्व उसकी वाचालता हटाने का कोई उपाय सोचते हुए घूमते थे।

उस समय हिमालय-प्रदेश के किसी तालाब में एक कछुआ रहता था। दो हस-बच्चो ने शिकार के लिए घूमते हुए उससे दोस्ती कर ली। उसके प्रति दृढ-विश्वासी हो एक दिन हस-बच्चो ने कछुवे से कहा—दोस्त कछुवे! हमारे हिमवन्त में चित्रकूट पर्वत के नीचे कञ्चन गुफा में रहने का रमणीक स्थान है। हमारे साथ चलेगा?

"मै कैसे चलूंगा?"

"हम तुझे लेकर चलेंगे, यदि तू अपने मुंह पर काबू रख सकेगा, किसी को कुछ न कहेगा।"

"स्वामी! काबू रखूंगा। मुझे लेकर चलें।'

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। एक लकडी को कछुवे के मुंह म दे, उसके दोनो सिरो को अपने मुंह में ले वे आकाश में उडे। उसे इस प्रकार हसो द्वारा लिए जाते देख गाँव के लडको ने कहा—दो हस कछुवे को डडे पर लिए जाते हैं।

हसो की गति तेज होने के कारण वे बाराणसी नगर के राजमहल के ऊपर आ पहुँचे थे। कछुवे ने "दुष्ट चेटको! यदि मेरे मित्र मुझे ले जाते हैं

---

[1] महातक्कारि जातक (४८१)

तो इसमें तुम्हारा क्या ?" कहने की इच्छा से उस लकड़ी को जहाँ से पकड़ा था छोड़ दिया। वह खुले आँगन में गिर दो टुकड़े हो गया। एक शोर हुआ—कछुवा खुले आँगन में गिर दो टुकड़े हो गया।

अमात्यों से घिरे हुए राजा ने बोधिसत्व को साथ ले उस जगह पहुँच, कछुवे को देख पूछा—पण्डित ! यह कैसे गिरा ?

बोधिसत्व ने सोचा—मैं बड़ी देर से राजा को उपदेश देने की इच्छा से किसी उपाय की खोज में घूमता हूँ। इस कछुवे की हंसों के साथ दोस्ती हुई होगी। वे 'इसे हिमवन्त ले चलेंगे' सोच लकड़ी मुँह में दे आकाश में उड़े होंगे। इसने किसी की बात सुन जबान पर काबू न होने से कुछ कहने की इच्छा से डण्डा छोड़ दिया होगा। इस प्रकार आकाश से गिर कर मरा होगा। वह बोला—"हाँ ! महाराज ! जो वाचाल होते हैं, जिनके वचन की सीमा नहीं होती वे इस प्रकार दुःख को प्राप्त होते हैं।" इतना कह यह गाथाएँ कहीं—

अवधी वत अत्तान कच्छपो व्याहरं गिरं,
सुग्गहीतस्मि कट्ठस्मि वाचाय सकिया वधि ॥
एतम्पि दिस्वा नरविरिय सेट्ठ !
वाच पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं;
पस्ससि बहुभाणेन कच्छप व्यसनं गतं ॥

[कछुवे ने वाणी का प्रयोग करके अपने को मार डाला। अच्छी तरह लकड़ी को पकड़े हुए अपनी वाणी के कारण (उसे छोड़ कर) अपने को मारा। नरवीर्य्य श्रेष्ठ ! इसे भी देख कर (आदमी को) कुशल वाणी ही बोलनी चाहिए और वह भी समय (की सीमा) लाँघ कर नहीं। देखते ही हो, अधिक बोलने से कछुआ मर गया।]

अवधी वत घात किया। **व्याहर** व्यवहार करते हुए। **सुग्गहीतस्मि कट्ठस्मि** मुख से अच्छी तरह लकड़ी को पकड़े हुए। **वाचाय सकिया वधि** वाचाल होने से अनुचित समय पर बोल कर पकड़ी हुई जगह को छोड़ अपनी उस वाणी के कारण अपने को मार डाला। इस प्रकार यह मरा। किसी दूसरे कारण से नहीं।

एतम्पि दिस्वा यह बात भी देखकर नरविरिय सेट्ठ नरों में श्रेष्ठ-वीर्य्यं ! उत्तमवीर्य्य राजवर ! वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं सत्यादि से युक्त कुशल वाणी ही पण्डित आदमी बोले; वह भी हितकर समयानुकूल। समय (की सीमा) लाँघ कर असीम वाणी न बोले। पस्सति प्रत्यक्ष देखना है बहुभाणेन अधिक बोलने से कच्छपं व्यसनं गतं, यह कछुआ मर गया।

राजा ने 'मेरे लिए यह कहा है' सोच पूछा—पण्डित ! मेरे बारे में कह रहा है ?

बोधिसत्व—महाराज ! चाहे आप हो, चाहे कोई और हो, जो कोई सीमा लाँघ कर बोलता है वह इसी प्रकार दु ख भोगता है। यह स्पष्ट करके कहा।

उस समय से राजा संयम कर मितभाषी हो गया। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय कछुआ कोकालिक था। दो हंस-बच्चे दो महास्थविर। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मैं ही था।

२१६. मच्छ जातक[1]

"न मायमग्गि तपति " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्य्या के आकर्षण के बारे में कही।

---

[1] देखो मच्छ जातक (१. ४. ३४)

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ? "भन्ते, सचमुच" कहने पर शास्ता ने पूछा—"किसने उत्कण्ठित किया ?" जवाब दिया—पूर्व-भार्य्या ने। शास्ता ने "भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी तू इसके कारण काँटे से बींधा जाकर, अङ्गारों पर पकाया जाकर खाया जाने वाला था। पण्डित की सहायता से जान बची" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके पुरोहित हुए। एक दिन मछुए जाल में फँसे मच्छ को निकाल कर, गर्म-बालू पर डाल, 'उसे अङ्गारों में पकाकर खाएँगे' सोच शूल तराशने लगे। मच्छ ने मछली के बारे में रोते हुए यह गाथा कही—

न मायमग्गि तपति न सूलो साधु तच्छितो,
यञ्च म मञ्ञति मच्छी अञ्ञ सो रतिया गतो ॥
सो म दहति रागग्गि चित्त चूपतपेति म,
जालिनो मुञ्चथयिरा म न कामे हञ्ञते क्वचि ॥

[न मुझे, अग्नि तपाती है, न अच्छी तरह से छीला हुआ शूल ही। यह जो मुझे मछली समझेगी कि रति के कारण वह दूसरी मछली के पास चला गया—इसीका मुझे शोक है। मुझे वह रागाग्नि जला रही है। मेरे चित्त को तपाती है। हे मछुओ, मुझे छोड दो। कामी कही नही मारा जाता।]

न मायमग्गि तपति, न मझे यह आग जलाती है, न तपाती है, अर्थ है शोक नही है। **न सूलो** यह शूल भी **साधुतच्छितो** न मुझे ताप देता है, न शोक उत्पन्न करता है। **यञ्च म मञ्ञति**, जो मुझे मछली ऐसा कहेगी कि वह पच कामगुणो से प्रेरित हो दूसरी मछली के पास चला गया, यही मुझे तपाता है, यही शोक उत्पन्न करता है।

सो मं दहति, जो यह रागाग्नि है यह मुझे जलाती है। चित्तं मुपतपेति मं, रागयुक्त मेरा चित्त ही मुझे तपाता है, कष्ट देता है, पीड़ा देता है। जालिनो कैवर्त्तों (मछुओं) को सम्बोधन करता है। यह जाल के मर्थी होने से जालिनो कहलाते हैं। मुञ्चयथिरा मं, स्वामी मुझे छोड़ दें, यही याचना करता हूँ न कामे हञ्ञते क्वचि, काम मे प्रतिष्ठित, काम में बहता हुआ प्राणी कहीं नहीं मारा जाता; तुम्हारे जैसों को उसे मारना योग्य नहीं। अथवा कामे हेतु के अर्थ में सप्तमी का प्रयोग है। काम-हेतु से मछली के पीछे पीछे चलने वाला कहीं भी तुम्हारे जैसों से नहीं मारा जाता।

उसी समय बोधिसत्त्व ने नदी किनारे जा उस मच्छ का रोना सुन, मछुओं के पास पहुँच उस मच्छ को छुड़ाया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय मछली पूर्व-भार्य्या थी। उत्कण्ठित भिक्षु मच्छ था। पुरोहित मैं ही था।

२१७. सेग्गु जातक

"सब्बो लोको. . . ." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक तरकारी बेचने वाले उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा पहले परिच्छेद में आ ही चुकी है।[1] इस कथा में शास्ता ने पूछा—उपासक ! क्यो देर करके आया है ?

"भन्ते ! मेरी लडकी सदैव हँसमुख रहती थी। मैने उसकी परीक्षा कर उसे एक तरुण को दिया।" सो यह करने से आपके दर्शन के लिए आने का समय नही मिला।"

"उपासक ! वह अब ही सदाचारिणी नही है। पहले भी सदाचारिणी थी। तूने न केवल अभी उसकी परीक्षा की है, पहले भी की ही थी।"

इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वृक्ष-देवता हुए। उस समय उसी तरकारी बेचने वाले उपासक ने लडकी की 'परीक्षा करने के लिए' उसे जगल में ले जा काम-भोग चाहने वाले की तरह उसे हाथ से पकडा। वह रोने लगी। उस यह पहली गाथा कही—

सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि,
अकोविदा गामधम्मस्स सेग्गु॥
कोमारि कोनाम तवज्ज धम्मो,
य त्व गहिता पवने परोदसि॥

[सारा लोक (इससे) आनन्दित (होता) है। सेग्गु तू इस ग्राम्य-धर्म से अपरिचित है। कुमारी ! यह तेरा क्या धर्म है कि तू बन मे पकडने पर रोती है।]

सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि, अम्म ! सारे प्राणी इस कामभोग के

---

[1] पण्णिक जातक (१०२)

सेवन से सन्तुष्ट (होते) हैं। अकोविदो गामधम्मस्स सेग्गु, सेग्गु, उसका नाम है। सो अम्म सेग्गु ! तू इस ग्राम्य धर्म में, इस चाण्डाल-कर्म में दक्ष नहीं है। कोमारि को नाम तवज्ज धम्मो, अम्म कुमारी ! यह आज तेरा क्या स्वभाव है ? य त्वं गहिता पवने परोदसि, जो तू मेरे द्वारा इस वन में कामभोग के लिए पकडी जाने पर रोती है। स्वीकार नही करती। यह तेरा क्या स्वभाव है ? क्या तू कुमारी ही है ?—पूछता है।

इसे सुन कुमारी ने कहा—हाँ तात ! मैं कुमारी ही हूँ। मैं मैथुन धर्म को नहीं जानती हूँ। ऐसा कह, रोती हुई दूसरी गाथा बोली—

> यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं,
> सो मे पिता दूभि वने करोति ॥
> *सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्झे,*
> यो तायिता सो सहसा करोति ॥

अर्थ उपरोक्त प्रकार[1] से ही है।

तब वह तरकारी बचने वाला उस लडकी की परीक्षा कर, घर ले जा, तरुण को दे यथा-कर्म सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर तरकारी बचने वाला स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय लडकी (अब की) लडकी ही थी। पिता पिता ही हुआ। उस बात को प्रत्यक्ष करने वाला वृक्ष देवता मैं ही था।

---

[1] पण्णिक जातक (१०२)

२१८. कूटवाणिज जातक

"सठस्स साठेय्यमिद . . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कूट व्यापारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कूट व्यापारी और पण्डित व्यापारी दो श्रावस्तीनिवासी व्यापारियों ने साझा व्यापार करना आरम्भ करके, सामान की पाँच सौ गाड़ियाँ भरीं। वे पूर्व से पश्चिम घूमते हुए व्यापार कर बहुत मुनाफा कमा श्रावस्ती लौटे। पण्डित व्यापारी ने कूट व्यापारी को कहा—दोस्त ! सामान बाँट लें।

कूट व्यापारी ने सोचा—यह बहुत दिनों तक आराम से सोना तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण थका हुआ अपने घर जाकर नाना प्रकार के अच्छे अच्छे भोजन खाएगा, बदहज़मी से मरेगा। तब यह सारा सामान मेरा ही हो जाएगा। इस लिए यह 'आज नक्षत्र अच्छा नहीं, कल देखेंगे', 'आज दिन अच्छा नहीं, कल देखेंगे' करता हुआ समय बिताने लगा।

पण्डित व्यापारी ने उसे मजबूर कर सामान बँटवाया। फिर गन्धमाला ले शास्ता के पास जा, पूजा-वन्दना कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—कब आया ?

"भन्ते ! मुझे आए आधा महीना हुआ।"

"तो इस प्रकार देर करके क्यों बुद्ध की सेवा में आया है ?"

उसने यह हाल कहा। शास्ता ने 'उपासक ! यह केवल अभी ठग व्यापारी नहीं है, पहले भी ठग व्यापारी ही था' कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

बोधिसत्त्व ने दूसरे से पूछा—

"क्या यह सच है?"

"स्वामी! मैं उसे लेकर गया। चिड़िया के उसे ले जाने की बात सच ही है।"

"क्या इस दुनिया में चिड़ियाँ बच्चों को ले जाती हैं?"

"स्वामी! मैं भी आपसे पूछना चाहता हूँ कि चिड़ियाँ तो बच्चों को लेकर आकाश में नहीं उड़ सकतीं, तो क्या चूहे लोहे के फाल खा सकते हैं?"

"इसका क्या मतलब है?"

"स्वामी! मैंने इसके घर में पाँच सौ फाल रक्खे। यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गए और 'यह तेरे फालों को खाने वाले चूहों की मेंगनी है' वह मेंगनी दिखाता है। स्वामी! यदि चूहे फालें खाते हैं, तो चिड़ियाँ भी बच्चे ले जाती हैं। यदि नहीं खाते हैं, तो बाज तब भी नहीं ले जा सकते हैं। यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गए। उन्होंने खाए, वा नहीं खाए— इसकी परीक्षा करें। मेरे मुकद्दमे का फैसला करें।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—इसने शठ के प्रति शठता का व्यवहार करके जीतने की बात सोची होगी। उसने कहा—तूने ठीक सोचा है। और यह गाथा कही—

सठस्स साठेय्यमिद सुचिन्तितं,
पच्चोड्डितं पतिकूटस्स कूट।
फालञ्चे अदेय्यु मूसिका,
कस्मा कुमार कुळला नो हरेय्यु॥
कूटस्स हि सन्ति कूटकूटा,
भवति चापि निकतिनो निकत्या।
देहि पुत्तनट्ठ फालनट्ठस्स फालं,
मा ते पुत्तमहासि फालनट्ठो॥

[शठ के प्रति शठता, यह अच्छा सोचा है। कुटिल के प्रति कुटिलता का जाल फैलाया है। यदि चूहे फाल खा जाएँगे, तो चिड़ियाँ बच्चे को क्यों नहीं ले जाएँगी।

कुटिल के प्रति कुटिलता का व्यवहार करने वाले हैं। ठग को भी ठगने वाले होते हैं। हे पुत्र-नष्ट ! जिसकी फाल खोई गई है उसकी फाल दे। तेरे पुत्र को जिसकी फाल नष्ट हुई है, वह न ले जाए।]

सठस्स, शठता से, धोखे से कोई ढग निकाल कर दूसरे का माल खाना चाहिए, ऐसा समझने वाले शठ के प्रति। **साठेयमिदं सुचिन्तितं,** जो यह शठता का व्यवहार सोचा है, सो तूने ठीक सोचा है। **पच्चोड्डितं पतिकूटस्स कूट,** कुटिल आदमी के प्रति तूने कुटिलता का जाल ठीक फैलाया, उसकी चाल का जवाब दे जाल फैलाने सा ही किया—यही अर्थ है। **फालञ्चे अदेय्युं मूसिका,** यदि चूहे फाल खाएँ। **कस्मा कुमारं कुळला नो हरेय्युं,** जब चूहे फाल खा जाते है तो चिडियाँ क्यो बच्चो को नही ले जाएँगी ?

कूटस्स हि सन्ति कूटकूटा, तू समझता है कि मैं ही चूहो को फाल खिला देने वाला कुटिल पुरुष हूँ; तेरे जैसे कुटिल पुरुष के साथ कुटिलता करने वाले इस लोक में बहुत कुटिल है। कुटिल के (भी) कुटिल यह कुटिल के प्रति कुटिलता करने वालो का नाम है। यही कहा गया है कि कुटिल के प्रति कुटिलता करने वाले है। **भवति चापि निकतिनो निकत्या,** ठगने वाले को ठगने वाला भी दूसरा आदमी होता है। **देहि पुत्तनट्ठ फालनट्ठस्स फालं,** भो पुत्र नष्ट-पुरुष ! जिसकी फाल नष्ट हुई है उसकी फाल दे। **मा ते पुत्तमहासि फालनट्ठो,** यदि इसकी फाल नही देगा, तो यह तेरे पुत्र को ले जाएगा। जिससे यह न ले जाए, इसलिए इसकी फाल दे।

"स्वामी ! मैं इसकी फाल देता हूँ। यदि यह मेरा पुत्र दे।"

"स्वामी ! मै देता हूँ यदि यह मेरे फाल दे।"

इस प्रकार जिसका पुत्र खोया गया था उसने पुत्र पाया। जिसकी फाल खोई गई थी उसने फाल पाई। दोनो कर्मानुसार गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुटिल व्यापारी ही कुटिल व्यापारी था। पण्डित व्यापारी ही पण्डित व्यापारी था।

मुकद्दमा फैसला करने वाला अमात्य मैं ही था।

२१६. गरहित जातक

"हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही, जिसका मन बुद्ध-शासन में नही था, जो उत्कण्ठित था।

क. वर्तमान कथा

इस (भिक्षु) का ध्यान किसी भी बात मे एकाग्र नही होता था। इस अन्यमनस्क हो जीवन बिताते हुए वो शास्ता के पास लाए। शास्ता ने पूछा—क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"हाँ, सचमुच।"

"किस कारण से।"

"कामासक्ति के कारण।"

"भिक्षु, कामासक्ति की पूर्व समय में पशुओं ने भी निन्दा की है। तू इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित हो, जिन कामभोगों की पशुओं तक ने निन्दा की है, उनके कारण क्यो उत्कण्ठित हुआ है?"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय में वानर की योनि में पैदा हुए।

एक वनचर ने उसे पकड लाकर राजा को दिया। वह चिरकाल तक राजभवन में रहने के कारण सभ्यता सीख गया। राजा ने उसके सभ्य-व्यवहार से प्रसन्न हो वनचर को बुलाकर आज्ञा दी—इस बानर को जहाँ से पकडा है, वही छोड आओ। उसने वैसा ही किया।

बानरो ने जब सुना कि बोधिसत्त्व आया है, तो उसे देखने के लिए महान् शिला-तल पर इकट्ठे हुए। उन्होने बोधिसत्त्व से कुशल-समाचार की बात कर पूछा—"मित्र, इतने दिन तक कहाँ रहे ?"

"बाराणसी मे, राजभवन में।"

"कैसे छूटे ?"

"राजा ने मुझे खेल करने वाला बन्दर बना, मेरे करतबो से प्रसन्न हो मुझे छोड दिया।"

"आप मनुष्य लोको का बरताव जानते हैं। हमें भी कहें। हम सुनना चाहते हैं।"

"मनुष्यो की करनी मुझसे मत पूछो।"

"कहें। हम सुनना चाहते हैं।"

बोधिसत्त्व ने, "मनुष्य चाहे क्षत्रिय हो, चाहे ब्राह्मण हो, सभी मेरा मेरा करते हैं। वस्तुएँ अस्तित्व में आकर विनष्ट हो जाती हैं, इस अनित्यता को वे नही जानते। अब उन अन्धे मूर्खों की बात सुनो" कह यह गाथाएँ कही—

> हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे ऐसा रत्तिन्दिवा कथा,
> दुम्मेधानं मनुस्सानं अरियधम्मं अपस्सतं ॥
> द्वे द्वे गहपतयो गेहे एको तत्थ अमस्सुको,
> लम्बत्थनो वेणिकतो अथो अकितकण्णको;
> कीतो धनेन बहुना सो तं वितुदते जनं ॥

[आर्यधर्म को न जानने वाले मूर्ख मनुष्य दिन रात यही बातचीत करते रहे हैं—मेरा हिरण्य, मेरा सोना।

घर में दो दो जने रहते हैं। एक को मूछ नहीं होती। उसके लम्बे स्तन होते हैं, वेणि होती है और कानों में छेद होते हैं। उसे बहुत धन से खरीदा होता है। वह सब जनो को कष्ट देता है।]

हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे, यह शीर्षकमात्र है। इन दो पदो से दसो तरह के रत्न, धगर्ली-पिद्दनी कमल, सब द्विपद तथा चतुष्पदो का ग्रहण कर 'यह मेरा यह मेरा' कहा गया है। एसा रत्तिन्दिवा कथा, मनुष्य-लोग रात दिन यही

बातचीत करते रहते हैं। ये पाञ्च स्कन्ध अनित्य है, उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं आदि नहीं जानते हैं। इस प्रकार रहते हुए भटकते हैं। कुम्मेधाने अज्ञानियो की अरियधम्म अपस्सतं, बुद्धादि आर्यों के धर्म को न देखते हुए लोगो की अथवा नौ प्रकार के निर्दोष लोकोत्तर आर्य धर्म[1] को न देखते हुए लोगो की यही बातचीत होती है, अन्य अनित्यता वा दुःख की बातचीत उनकी नहीं होती।

गहपतयो घर के मालिक। एको सत्य उन दो घर के मालिकों में से एक अर्थात् स्त्री। वेणिकतो कृतवेणि, नाना प्रकार से जिसने अपने बालों को क्रम से गठिया रक्खा है। अयो अङ्कितकण्णको, वह ही बिंधे हुए कानो वाला, या छिदे हुए कानो वाला। लम्बे कानो के बारे में कहा। कीतो धनेन बहुना, यह मूढ़ विरहित, लम्बे स्तन वाला, वेणिधारी, छिदे कान वाला माता पिता को बहुत धन देकर खरीदा गया, सजा कर, गहने पहना कर, गाडी में बिठा बडी शान-शौकत से घर में लाया गया। सो तं वितुदते जनं, यह गृहस्वामी (स्वामिनी) जिस समय से आता है उस समय से दासो, मजदूरो आदि को 'अरे दुष्ट दास यह नहीं करता है, अरी दुष्ट दासी यह नहीं करती है' आदि वचन-रूपी मुखशक्ति से बींधता है। स्वामी की तरह से व्यवहार करता है। इस प्रकार मनुष्यलोक में बहुत अनुचित है—मनुष्यलोक की निन्दा की।

यह सुन सभी बन्दरो ने दोनो हाथों से अपने कान जोर से बन्द कर लिए—मत कहें। मत कहे। न सुनने योग्य बात हमने सुनी। इस स्थान पर हमने अनुचित बात सुनी। इसलिए उस स्थान की भी निन्दा कर अन्यत्र चले गए। उस पाषाण-शिला का नाम निन्दित-पाषाण शिला हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय के वानर-गण बुद्ध परिषद थी। वानरेन्द्र तो मैं ही था।

---

[1] चार लोकोत्तर मार्ग + चार लोकोत्तर फल + निर्वाण।

१२०. धम्मद्ध जातक

"सुख जीवितरूपोसि,....." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय बध का प्रयत्न करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने मेरे बध के लिए प्रयत्न किया है, पहले भी किया है, लेकिन त्रासमात्र भी पैदा नहीं कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में पायासपाणी नामका राजा राज्य करता था। काळक नाम का उसका सेनापति था। उस समय बोधिसत्त्व उसीके पुरोहित थे। नाम था धम्मध्वज। राजा के सिर को अलङ्कृत करने वाले नाई का नाम था छत्तपाणी।

राजा धर्म-पूर्वक राज्य करता था, लेकिन उसका सेनापति मुकद्दमा का फैसला करता हुआ रिशवत खाता था। चुगल-खोर रिशवत लेकर स्वामी को अस्वामी कर देता था।

एक दिन मुकद्दमे में हारे हुए आदमी ने बाहें पकड कर रोते हुए, अदालत से निकल राज-सेवा मे जाते हुए बोधिसत्त्व को देखा। उसने उसके पाँव में गिरकर कहा—स्वामी ! तुम्हारे सदृश राजा के अर्थधर्मानुशासक के होते हुए काळक सेनापति रिशवत लेकर अस्वामी को स्वामी बना देता है, और अपने मुकद्दमे हारने की बात कही।

बोधिसत्त्व ने मन में करुणा का भाव ला कर कहा—अरे, आ तेरे मुकद्दमे का फैसला करूँगा। वह उसे लेकर मुकद्दमे की जगह गए। जन-समूह इकट्ठा हो गया। बोधिसत्व ने उस मुकद्दमे के फैसले को उलटते हुए फिर स्वामी को ही स्वामी बना दिया। जन-समूह ने 'वाह वाह' की। बडा शोर हुआ। राजा ने सुनकर पूछा—यह क्या आवाज है ?

"देव ! धर्मध्वज पण्डित ने एक ऐसे मुकद्दमे का जिसका ठीक फैसला नही हुआ था, ठीक फैसला किया है। उसीमें यह 'वाह वाह' हो रही है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—आचार्य ! तुमने मुकद्दमे का फैसला किया ?

'हाँ महाराज ! काळक ने जिस मुकद्दमे का ठीक फैसला नही किया, उसका फैसला किया।"

"अब से तुम ही मुकद्दमे का फैसला किया करो। मेरे कानो को सुख मिलेगा। जनता की उन्नति होगी।"

उसके इच्छा न करने पर भी राजा ने 'प्राणियो पर दया करने के लिए न्याय की गद्दी पर बैठें' प्रार्थना कर राजी किया। तब से बोधिसत्त्व न्याय की गद्दी पर बैठने लगे। स्वामी को ही स्वामी बनाते।

उसके बाद से जब काळक को रिशवत न मिलने के कारण लाभ की हानि हुई तो उसने "महाराज ! धर्मध्वज पण्डित आपका राज्य चाहता है" कह राजा और बोधिसत्त्व में भेद पैदा करने की कोशिश की।

राजा ने अविश्वास करते हुए मना किया—ऐसा मत कहो। वह बोला—यदि मेरा विश्वास नही करते तो उसके आने के समय झरोखे से देखें। तब देखेंगे कि इसने सारे नगर को अपने हाथ में कर लिया है। राजा ने उसके पास मुकद्दमे के लिए आए लोगो को उसीके आदमी समझ विश्वास कर पूछा—सेनापति ! क्या करें।

"देव ! इसे मार डालना चाहिए।"

"कोई बडा दोष दिखाई न देने पर कैसे मारें ?"

"एक उपाय है।"

"कौन सा उपाय ?"

"इसे कोई असम्भव कार्य करने के लिए कह कर उसके न कर सकने पर, उस दोष का दोषी बना मारेंगे।"

"कौन सा असम्भव कार्य।"

"महाराज, उत्कृष्ट भूमि में लगाने पर, देख भाल करने पर उद्यान दो चार साल में फल देता है। आप इसे बुलाकर कहें कि कल हम उद्यान में खेलेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाओ। यह न बना सकेगा। तब इसे इस अपराध के कारण मार देंगे।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—पण्डित! पुराने उद्यान में हम बहुत खेले। अब नए उद्यान में क्रीड़ा करने की इच्छा है। कल क्रीड़ा करेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाएँ। यदि न बना सकोगे, तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी।"

बोधिसत्त्व समझ गए कि काळक को रिश्वत न मिलने से उसने राजा को फोड़ लिया होगा। वह "महाराज! कर सका तो देखूँगा" कह कर जा प्रणीताहार ग्रहण कर चारपाई पर लेट सोचने लगे। शक्रभवन गर्म हो गया। शक्र ने ध्यान लगाकर देखा। बोधिसत्त्व की पीड़ा को जान उसने जल्दी से आ, सोने के कमरे में प्रवेश कर आकाश में खड़े हो पूछा—पण्डित क्या चिन्ता कर रहे हो?

"तू कौन है?"

"मैं शक्र हूँ।"

"राजा ने मुझे उद्यान बनाने को कहा है। उसकी चिन्ता कर रहा हूँ।"

"पण्डित, चिन्ता न कर। मैं तेरे लिए नन्दनवन चित्रलतावन सदृश उद्यान बना दूँगा। किस जगह पर बनाऊँ?"

"अमुक स्थान पर बना।"

शक्र बनाकर देवपुर चला गया। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उद्यान को प्रत्यक्ष देख जाकर राजा को कहा—

महाराज, मैंने उद्यान समाप्त कर दिया है। खेलें।

राजा ने जाकर देखा अठारह हाथ की, मनोशिलावर्ण की दीवार से घिरा, द्वार-अट्टालिका सहित, फूल फल के भार से लदा हुआ, नाना प्रकार के वृक्षों से सजा हुआ उद्यान है। उसने काळक से पूछा—पण्डित ने हमारा कहना किया। अब क्या करें?

"महाराज, जो एक रात में उद्यान बना सकता है। वह राज्य ले सकता है वा नहीं?"

"अब क्या करें?"

"उससे दूसरा असम्भव कार्य्य कराएँ।"

"कौनसा काम?"

"सात रत्नो वाली पुष्करिणी बनवाएँ।"

राजा ने 'अच्छा' कह बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—

"आचार्य्य ! तुमने उद्यान तो बना दिया। अब इसके योग्य सात रत्नो वाली पुष्करिणी बनाएँ। यदि नही बना सकोगे तो तुम्हारी जान जाएगी।"

बोधिसत्त्व ने कहा—महाराज, अच्छा। बना सकेंगे तो बनाएँगे।

शक्र ने सुन्दर, सौ तीर्थों वाली, हज़ार जगह से मुड़ी, पाँच प्रकार के कमलो से ढकी नन्दन पुष्करिणी[1] सदृश पुष्करिणी बना दी। बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा से जाकर कहा—देव, पुष्करिणी बना दी।

राजा ने उसे देख काळक से पूछा—अब क्या करें? 'देव, उद्यान के योग्य घर बनाने को कहें।' राजा ने बोधिसत्त्व को बुलवाकर कहा—आचार्य्य, इस उद्यान और पुष्करिणी के अनुकूल एक ऐसा घर बनाएँ जो सारा का सारा हाथी दाँत का हो। यदि नहीं बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।

शक्र ने उसका घर भी बना दिया। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने उसे भी देख काळक से पूछा—अब क्या करें? 'महाराज, घर के योग्य मणि बनाने को कहें।' राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—पण्डित, इस हाथीदाँत के घर के अनुकूल मणि बनाओ। मणि के प्रकाश में घूमेंगे। यदि नहीं बना सकोगे, तो तुम्हारी जान जाएगी।

शक्र ने उसकी मणि भी बना दी। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने देखकर पूछा—अब क्या करें? "महाराज! मालूम होता है कि ऐसा देवता है जो धम्मध्वज ब्राह्मण को जो जो वह चाहता है, देता है। अब जिसे देवता भी न बना सके, ऐसी आज्ञा दें। चारों अङ्गों[2]

---

[1] सिंहल में 'नन्दा पोकखरणि' पाठ है। [2] चार गुणों।

"इसे कोई असम्भव कार्य्य करने के लिए कह कर उसके न कर सकने पर, उस दोष का दोषी बना मारेंगे।"

"कौन सा असम्भव कार्य्य।"

"महाराज, उरखेज भूमि में लगाने पर, देख भाल करने पर उद्यान दो चार साल में फल देता है। आप उसे बुलाकर कहें कि कल हम उद्यान में खेलेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाओ। वह न बना सकेगा। तब उसे इस अपराध के कारण मार देंगे।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—पण्डित ! पुराने उद्यान में हम बहुत खेले। अब नए उद्यान में क्रीडा करने की इच्छा है। कल क्रीडा करेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाएँ। यदि न बना सकोगे, तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी।"

बोधिसत्त्व समझ गए कि काळक को रिशवत न मिलने से उसने राजा को फोड लिया होगा। वह "महाराज ! कर सका तो देखूँगा" वह घर जा प्रणीताहार ग्रहण कर चारपाई पर लेट सोचने लगे। शक्रभवन गर्म हो गया। शक्र ने ध्यान लगाकर देखा। बोधिसत्त्व की पीडा को जान उसने जल्दी से आ, सोने के कमरे में प्रवेश कर आकाश मे खडे हो पूछा—पण्डित क्या चिन्ता कर रहे हो ?

"तू कौन है ?"

"मैं शक्र हूँ।"

"राजा ने मुझे उद्यान बनाने को कहा है। उसकी चिन्ता कर रहा हूँ।"

"पण्डित, चिन्ता न कर। मै तेरे लिए नन्दनवन चित्रलतावन सदृश उद्यान बना दूँगा। किस जगह पर बनाऊँ ?"

"अमुक स्थान पर बना।"

शक्र बनाकर देवपुर चला गया। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उद्यान को प्रत्यक्ष देख जाकर राजा को कहा—

महाराज, मैंने उद्यान समाप्त कर दिया है। खेलें।

राजा ने जाकर देखा अठारह हाथ की, मनोशिलावर्ण की दीवार से घिरा, द्वार-अट्टालिका सहित, फूल फल के भार से लदा हुआ, नाना प्रकार के वृक्षों से सजा हुआ उद्यान है। उसने काळक से पूछा—पण्डित ने हमारा कहना किया। अब क्या करें ?

"महाराज, जो एक रात में उद्यान बना सकता है। वह राज्य ले सकता है या नहीं?"

"अब क्या करें?"

"उससे दूसरा असम्भव कार्य्य कराएँ।"

"कौनसा काम?"

"सात रत्नों वाली पुष्करिणी बनवाएँ।"

राजा ने 'अच्छा' कह बोधिसत्व को बुलाकर कहा—

"आचार्य्य! तुमने उद्यान तो बना दिया। अब इसके योग्य सात रत्नों वाली पुष्करिणी बनाएँ। यदि नहीं बना सकोगे तो तुम्हारी जान जाएगी।"

बोधिसत्व ने कहा—महाराज, अच्छा। बना सके तो बनाएँगे।

शक्र ने सुन्दर, सौ तीर्थों वाली, हजार जगह से मुड़ी, पाँच प्रकार के कमलों से ढकी नन्दन पुष्करिणी[1] सदृश पुष्करिणी बना दी। बोधिसत्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा से जाकर कहा—देव, पुष्करिणी बना दी।

राजा ने उसे देख काळक से पूछा—अब क्या करें? 'देव, उद्यान के योग्य घर बनाने को कहें।' राजा ने बोधिसत्व को बुलवाकर कहा—आचार्य्य, इस उद्यान और पुष्करिणी के अनुकूल एक ऐसा घर बनाएँ जो सारा का सारा हाथी दाँत का हो। यदि नहीं बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।

शक्र ने उसका घर भी बना दिया। अगले दिन बोधिसत्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने उसे भी देख काळक से पूछा—अब क्या करें? 'महाराज, घर के योग्य मणि बनाने को कहें।' राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—पण्डित, इस हाथीदाँत के घर के अनुकूल मणि बनाओ। मणि के प्रकाश में घूमेंगे। यदि नहीं बना सकोगे, तो तुम्हारी जान जाएगी।

शक्र ने उसकी मणि भी बना दी। अगले दिन बोधिसत्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने देखकर पूछा—अब क्या करें? "महाराज! मालूम होता है कि ऐसा देवता है जो धम्मध्वज ब्राह्मण को जो जो वह चाहता है, देता है। अब जिसे देवता भी न बना सके, ऐसी आज्ञा दें। चारों अङ्गों[2]

---

[1] सिंहल में 'नन्दा पोकखरणि' पाठ है।

[2] चार गुणों।

से युक्त मनुष्य को देवता भी नही बना सकता। इसलिए उसे कहें कि मुझे चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल बनाकर दे।

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—आचार्य्य, तूने हमारे लिए उद्यान, पुष्करिणी, हाथी-दाँत का प्रासाद, उसमें प्रकाश करने के लिए मणि-रत्न बनाया। अब मेरे उद्यान की रक्षा करने वाला चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल बनाएँ। यदि नही बनाएँगे, तो तुम्हारी जान न रहेगी।

बोधिसत्त्व 'होवे, मिलने पर देखूँगा' कह, घर जा प्रणीत भोजन खा, सोकर जब प्रातःकाल उठा तो शय्या पर बैठ कर सोचने लगा—देवराज शक्र ने जो स्वय बना सकता था, बनाया। वह चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल नही बना सकता। ऐसा होने पर दूसरो के हाथ से मरने की अपेक्षा जगल में अनाथ की तरह मरना ही अच्छा है।

वह बिना किसीसे कहे, प्रासाद से उतर, मुख्यद्वार से ही नगर से निकल, जगल मे प्रवेश कर एक वृक्ष के नीचे बैठ सत्पुरुषो के धर्म का ध्यान करने लगा। शक्र को जब यह पता लगा तो उसने एक बनचर की शकल बना बोधिसत्त्व के पास जा पूछा—'ब्राह्मण! तू सुकुमार है। तूने पहले दुःख नही देखा सा है। तू इस अरण्य में दाखिल हो बैठा क्या कर रहा है?" यह पूछते हुए पहली गाथा कही—

सुख जीवितरूपोसि रट्ठा विवनमागतो,
सो एकको अरञ्ञस्मि रुक्खमूले कपणो विय झायसि ॥

[तू सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले सा है। जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया है। त जगल में वृक्ष के नीचे अकेला बैठ कृपण की तरह (क्या) सोचता है?]

सुखं जीवितरूपोसि, तू सुख से जीने वाले, सुख से रहने वाले, सुख से पालन हुए की तरह है। रट्ठा जनाकीर्ण स्थान से। विवनमागतो जलरहित स्थान जगल में दाखिल हुआ। रुक्खमूले, वृक्ष के पास। कपणो विय झायसि, कृपण की तरह अकेला बैठा हुआ ध्यान करता है, विशेष ध्यान करता है। तू यह क्या सोच रहा है?—यही पूछा।

इसे सुन बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

सुखं जीवितरूपोस्मि रट्ठा विवनमागतो,
सो एकको अरञ्ञस्मि रुक्खमूले;
कपणो विय झायामि सतं धम्मं अनुस्सरं ॥

[सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला हूँ। जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान मे आया हूँ। अरण्य मे, वृक्ष के नीचे अकेला ही कृपण की तरह श्रेष्ठ पुरुषो के धर्म को स्मरण करता हुआ ध्यान लगा रहा हूँ।]

सतं धम्म अनुस्सरं, मित्र, यह सत्य ही है कि मै सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान मे आया हूँ। मै इस जगल मे वृक्ष के नीचे अकेला ही बैठकर कृपण की तरह ध्यान करता हूँ। जो तू पूछता है कि क्या सोच रहा हूँ, वह कहता हूँ। मै श्रेष्ठ (पुरुषो के) धर्म को स्मरण करता हुआ यहाँ बैठा हूँ। सतं धम्मं बुद्ध, पच्चेक बुद्ध, श्रावको का, श्रेष्ठ सत्पुरुषो का, पण्डितो का धर्म—लाभ, हानि, अपकीर्ति, कीर्ति, निन्दा, प्रशसा, सुख, दुख, यह आठ प्रकार का लोक-धर्म है। इनसे आघात पाने पर सत्पुरुष काँपते नही है, चचल नही होते है। यह न काँपना सत्पुरुषो का धर्म है। इस सत्पुरुषो के धर्म को स्मरण करता हुआ बैठा हूँ—यही प्रकट करता है।

शक्र ने पूछा—ब्राह्मण ! ऐसा है तो इस जगह क्यो बैठा है ?

"राजा चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल मँगवाता है। वैसा नही मिल सकता है। सो मै यह सोचकर कि किसीके हाथ से मरने से क्या लाभ, जगल मे प्रविष्ट हो अनाथ की तरह मरूँगा, (इसलिए) यहाँ आकर बैठा हूँ।"

"ब्राह्मण ! मै देवराज शक्र हूँ। मैने तेरे लिए उद्यान आदि बनाए। चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल नही बना सकता। तुम्हारे राजा के बालो को सजानेवाला छत्तपाणी नाम का नाई है। चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर, उसे उद्यानपाल बनाने के लिए कहना।"

शक्र बोधिसत्त्व को यह उपदेश दे, 'डर मत' कह आश्वासन दे, अपने देवनगर को गया।

बोधिसत्त्व प्रात काल का भोजन कर राजद्वार गया। वहीं छत्तपाणी को देख हाथ से पकड पूछा—भिन्न, क्या तू चारो अङ्गो से युक्त है ?

"तुझे किसने कहा है कि मैं चारो अङ्गो से युक्त हूँ ?"

"देवराज शक्र ने।"

"किस कारण से कहा।"

"इस कारण से ' कह सब कहा। वह बोला—हाँ, मैं चारो अङ्गो से युक्त हूँ।

बोधिसत्व उसे हाथ से पकडे ही पकडे राजा के पास ले जाकर बोला—महाराज, यह छत्तपाणी चारो अङ्गो से युक्त है। उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर इसे उद्यानपाल बनावें।

राजा ने उसे पूछा—क्या तू चारो अङ्गो से युक्त है ? हाँ महाराज। 'किन चारो अङ्गो से ?" उत्तर दिया—

"अनुसुय्यको अह देव अमज्जपायको अहं,
निस्नेहको अह देव अक्कोधन अधिट्ठितो ॥

महाराज ! मुझ म ईर्ष्या नही है। मैंने कभी शराब नही पी है। देव ! मुझ में दूसरो के प्रति न स्नेह है, न क्रोध है। मैं इन चारो अङ्गो से युक्त हूँ।

राजा ने पूछा—छत्तपाणी ! तू अपने आपको ईर्ष्या रहित कहता है ?

—हाँ देव ! मै ईर्ष्या रहित हूँ।

'किस बात को देखकर ईर्ष्या रहित हुआ ?'

'देव ! सुने' कह अपने ईर्ष्या रहित होने का कारण बताते हुए यह गाथा कही—

इत्थिया कारणा राज बन्धापेसि पुरोहित,
सो म अत्थे निवेसेसि तस्माह अनुसुय्यको ॥

[राजन ! स्त्री के कारण मैंने पुरोहित को बँधवाया। उसने मुझे सदर्थ में लगाया। इसलिए मै ईर्ष्या रहित हूँ।]

इसका अर्थ है कि देव ! मै पहले इसी वाराणसी नगर में तुम्हारे जैसा ही राजा था। मैंने स्त्री के लिए पुरोहित को बँधवाया।

"अन्द्धा तत्थ वज्झन्ति यत्थ वाला पभासरे,
बद्धापि तत्थ मुच्चन्ति यत्थ धीरा पभासरे ॥"

इस जातक[1] मे आए अनुसार ही एक समय इसे जब यह छत्तपाणी राजा था, चौसठ नौकरों के साथ अनाचार कर बोधिसत्त्व के द्वारा अपनी इच्छा-पूर्ति न होने के कारण बोधिसत्त्व को नष्ट करने की इच्छा से देवी ने इसे फोड़ा। इसने बोधिसत्त्व को बँधवा दिया। तब बाँधकर लाए गए बोधिसत्त्व ने देवी का यथार्थ दोष कह स्वय मुक्त हो, राजा के बँधवाए हुए सभी नौकरो को मुक्त करवा राजा को उपदेश दिया कि इनका और देवी का अपराध क्षमा करे। सब पूर्वोक्त प्रकार से विस्तार से कहनी चाहिए। इसीके बारे मे कहा है—

इत्थिया कारणा राज बन्धापेसि पुरोहितं,
सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माहं अनुसुय्यको ॥

तब मै सोचने लगा—मै सोलह हजार स्त्रियाँ छोड इस अकेली से कामासक्त हो, इसे भी सन्तुष्ट न कर सका। इस प्रकार बडी कठिनाई से सन्तुष्ट की जा सकने वाली स्त्रियों का क्रोध करना वैसा ही होता है जैसे कोई कपडो के पहनने पर उनके मैले होने से क्रोध करे कि यह मैले क्यो होते है, अथवा जैसे कोई खाए भोजन के गूह बनने पर क्रोध करे कि यह ऐसा क्यो होता है? तब मैंने दृढ सकल्प किया कि अब से जब तक अर्हत्व प्राप्त न हो जाए तब तक कामभोग के प्रति मेरी ईर्ष्या न हो। उस समय से मै ईर्ष्या-रहित हो गया। इस सम्बध से ही तस्माहं अनुसुय्यको कहा।

तब राजा ने पूछा—मित्र छत्तपाणि! किस बात को देखकर तू अमद्यप हो गया? उसने वह बात कहते हुए यह गाथा कही—

मत्तो अहं महाराज पुत्तमंसानि खादयिं,
तस्स सोकेनहं फुट्ठो मज्जपानं विवज्जयिं ॥

[महाराज! मैंने मद्य पी बेहोश हो अपने पुत्र के मास को खाया। उस शोक से शोकाभिभूत हो मैंने मद्यपान छोड दिया।]

---

[1] बन्धनमोक्ख जातक (१२०)

महाराज ! पूर्वकाल में मैं तुम्हारी ही तरह वाराणसी का राजा था। शराब के बिना न रह सकता था। बिना मांस का भोजन न खा सकता था। नगर में उपोसथ के दिनों में पशु-हत्या बन्द रहती। रसोइये ने पक्ष की प्रयो-दशी को ही मांस लेकर रख दिया। सँभाल कर रखा न होने से उसे कुत्ते खा गए। रसोइये ने उपोसथ के दिन मांस न पा, राजा के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना प्रासाद पर चढ़ राजा के पास भोजन न ले जा सकने के कारण देवी के पास जाकर पूछा—देवी ! आज मुझे मांस नहीं मिला। बिना मांस का भोजन राजा के पास नहीं ले जा सकता। क्या करूँ ?

"तात ! मेरा पुत्र राजा को अत्यन्त प्रिय है। पुत्र को देख कर राजा उसे चूमता हुआ, लाड-प्यार करता हुआ अपना अस्तित्व भी भूल जाता है। मैं पुत्र को सजाकर राजा की गोदी में बिठा दूँगी। उसके पुत्र के साथ खेलते समय तू भोजन लाना।"

ऐसा कह उसने अपने पुत्र सुन्दर बालक को सजाकर राजा की गोद में बैठाया। राजा के पुत्र के साथ खेलते समय रसोइया भोजन लाया। शराब के नशे में बेहोश राजा ने पका हुआ मांस न पा पूछा—मांस कहाँ है ? 'देव ! आज दिन पशु-हत्या बन्द रहने से मांस नहीं मिला।' राजा ने 'मुझे मांस नहीं मिलेगा' कह गोद में बैठे प्रिय पुत्र की गर्दन मरोड, जान से मार रसोइये के सामने फेंका और आज्ञा दी—जल्दी से पका कर ला। रसोइये ने वैसा किया। राजा ने पुत्र-मांस के साथ भोजन किया। राजा के भय से न कोई रो पीट सका न कुछ कह ही सका।

राजा ने भोजन खा, शय्या पर सो, प्रातःकाल उठ नशे के उतरने पर कहा—मेरे पुत्र को लाओ। उस समय देवी रोती हुई चरणों पर गिर पडी। राजा ने पूछा—'भद्रे ! क्या हुआ ?' बोली—'देव ! कल आपने पुत्र को मारकर पुत्र-मांस के साथ भोजन खाया।' राजा ने पुत्रशोक से अभिभूत हो रो पीट कर 'मुझे यह दु:ख सुरापान के कारण हुआ' समझ सुरापान में दोष देख बालू से मुँह पोछते हुए प्रतिज्ञा की—"अब से मैं अर्हत्व प्राप्त होने तक ऐसी विनाशकारिणी सुरा को कभी नहीं पीऊँगा।" तब से 'मद्य नहीं पी' इसीलिए मत्तो अहं महाराज, यह गाथा कही।

तब राजा ने पूछा—मित्र ! क्या देखकर तू स्नेह-हीन हो गया ? उस

बात को कहते हुए यह गाथा कही—

कितवासो नामह राजा पुत्तो पच्चेकबोधिमे,
पत्तं भिन्दित्वा चवितो निस्नेहो तस्स कारणा ॥

[मै कितवास नाम का राजा था। मेरा पुत्र पच्चेकबुद्ध के पात्र को फोड कर मर गया। उस कारण से मै स्नेह रहित हो गया।]

महाराज ! पहले मैं वाराणसी में कितवास नाम का राजा था। मुझे पुत्र हुआ। लक्षण जानने वालो ने उसे देखकर कहा कि इसकी मृत्यु पानी न मिलने से होगी। उसका नाम दुष्टकुमार रखा गया। बालिग होने पर वह उपराजा बना।

राजा दुष्टकुमार को सदैव अपने आगे पीछे रखता। पानी न पाकर मरने के भय से, उसके लिए चारो दरवाजो पर और नगर के भीतर जहाँ तहाँ पुष्करिणियाँ बनवा दी। चौरस्तो आदि पर मण्डप बनवा पानी की चाटियाँ रखवाईं।

उसने एक दिन सजधज कर अकेले ही उद्यान जाते हुए रास्ते में प्रत्येकबुद्ध को देखा। जनता भी प्रत्येकबुद्ध को देखकर उन्ही को प्रणाम करती, प्रशसा करती। उन्ही को हाथ जोडती। राजकुमार सोचने लगा—मेरे जैसे के साथ चलते हुए लोग इस सिर-मुण्डे को प्रणाम करते है, प्रशसा करते है, हाथ जोडते है। उसने क्रोधित हो, हाथी से उतर प्रत्येकबुद्ध के पास जाकर पूछा—

"श्रमण ! तुझे भोजन मिला ?"

"राजकुमार ! हाँ मिला।"

उसने प्रत्येकबुद्ध के हाथ से पात्र ले, उसे जमीन पर पटक, भोजन सहित पाँव से मर्दन कर, पाँव की ठोकर से चूर चूर कर दिया। प्रत्यकबुद्ध उसके मुँह की ओर देखने लगे—अब यह प्राणी नष्ट हुआ। कुमार बोला—श्रमण ! मै कितवास राजा का पुत्र हूँ। मेरा नाम है दुष्टकुमार। तू मुझ पर क्रोधित हो आँखें फाड फाड कर देखने से मेरा क्या करेगा ? प्रत्येक-बुद्ध का भोजन नष्ट हो गया। वे आकाश में उडकर उत्तर हिमालय मे नन्दमूल पब्भार पर ही चले गए। राजकुमार के पापकर्म ने भी उसी क्षण फल दिया। उसके शरीर में दाह पैदा हुआ। वह जल रहा हूँ कहता हुआ वही गिर पडा।

उतना पानी भी सब समाप्त हो गया। सारी घाटियाँ सूख गईं। वहीं उसका प्राणान्त होकर वह अवीची नरक में पैदा हुआ।

राजा ने वह समाचार सुन पुत्रशोक से अभिभूत हो सोचा—मेरा यह शोक प्रिय वस्तु से उत्पन्न हुआ। यदि मैं स्नेह न करता, तो शोक न होता। उसने निश्चय किया कि अब से किसी भी चीज में—चाहे वह जानदार हो चाहे बेजान हो—स्नेह पैदा न हो। उस समय से लेकर उसे स्नेह नहीं है। उसी सम्बन्ध से कितवासो नामह गाथा कही।

पुत्तो पच्चेकिबोधिमे पत्त भिन्दित्वा चवितो का अर्थ है कि मेरा पुत्र पच्चेकबुद्ध का पात्र तोड़कर मर गया। **निस्नेहो तस्स कारणा,** उस समय उत्पन्न स्नेह के कारण स्नेह-रहित हो गया।

तब राजा ने उसे पूछा—मित्र ! किस बात को देखकर तू क्रोध-रहित हो गया ? उसने वह बात बताते हुए यह गाथा कही—

> **अरको हुत्वा मेत्तचित्त सत्त वस्सानि भावयिं,**
> **सत्त कप्पे ब्रह्मलोके तस्मा अक्कोधनो अहं ॥**

महाराज ! मैंने अरक नामक तपस्वी हो, सात वर्ष तक मैत्री चित्त की भावना कर सात सवर्त विवर्त कल्पों तक ब्रह्मलोक में रहा। इसलिए मैं दीर्घ काल तक मैत्रीभावना का अभ्यास करने से क्रोध-रहित हो गया।

इस प्रकार छत्तपाणि के अपने चारों अङ्ग कहने पर राजा ने परिषद को इशारा किया। उसी क्षण अमात्यों तथा ब्राह्मण गृहपति आदि ने उठकर 'अरे ! रिश्वतखोर ! दुष्ट चोर ! तू रिश्वत न पाकर पण्डित की निन्दा कर उसे मारना चाहता था' कह कालक के हाथ पाँव पकड़, राजमहल से उतार जो जो हाथ में आया पत्थर, मुद्गर आदि से सिर फोड मार डाला। फिर पाँव से घसीट कर कूड़े की जगह पर फेंक दिया।

उसके बाद से राजा धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ कर्मानुसार (परलोक) गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कालक सेनापति देवदत्त था। छत्तपाणि नाई सारिपुत्र। धर्मध्वज तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

८. कासाव वर्ग

२२१. कासाव जातक

"अनिक्कसावो कासावं. . ." यह धर्मदेशना शास्ता ने जेतवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही। घटना राजगृह में घटी।

क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वेळुवन में रहते थे। देवदत्त भी अपने जैसी दुराचारी परिषद से घिरा हुआ गयाशीर्ष पर रहता था।

उस समय राजगृह निवासी चन्दा इकट्ठा करके दान की तैयारी करते थे। व्यापार के लिए आए एक बनिए ने एक मूल्यवान् सुगन्धित काषाय वस्त्र दे कर कहा कि इस वस्त्र का दान कर मुझे भी (दान में) हिस्सेदार बनावें। नागरिकों ने महादान दिया। सब चन्दा करके इकट्ठे किए गए कार्षापणों से ही पूरा हो गया। वह वस्त्र बच गया। लोग इकट्ठे होकर सोचने लगे कि यह वस्त्र किसे दें? क्या सारिपुत्र स्थविर को? अथवा देवदत्त को? कुछ ने कहा सारिपुत्र स्थविर को। दूसरों ने कहा—सारिपुत्र स्थविर कुछ दिन रह कर यथारुचि चल देगा। देवदत्त स्थविर सदैव हमारे नगर ही के पास रहता है। मङ्गल-अमङ्गल में यही हमारा सहायक होता है। देवदत्त को दें। राय लेने पर 'देवदत्त को दें' कहने वालों की संख्या अधिक निकली। उन्होंने देवदत्त को दे दिया। देवदत्त ने उसकी दसें कटवा, ओवट्टक वस्त्र सिलवा, रँगवा कर सुनहरी रेशम सदृश बना पहना।

उस समय तीस भिक्षुओं ने राजगृह से श्रावस्ती पहुँच, शास्ता को प्रणाम

कर कुशल समाचार पूछे जाने पर, यह समाचार वह निवेदन किया कि भन्ते ! इस प्रकार देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर (=अर्हत-ध्वजा) को धारण किया। शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर को धारण किया, पहले भी धारण किया है' यह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में हाथी के कुल में पैदा हुए। बडे होने पर वह अस्सी हजार मस्त हाथियो के नायक बन जगल मे रहने लगे।

एक गरीब आदमी ने वाराणसी मे दन्तकार गली में हाथी-दाँत का काम करने वालो को चूडी आदि बनाते देख कर पूछा—हाथी-दाँत मिलें तो लोगे ? उन्होने कहा—लेगे। वह शस्त्र ले, काषाय वस्त्र पहन, प्रत्येक-सम्बुद्ध का वेष बना, टोपा पहन, हाथियो की गली में जा, आयुध से हाथियो को मार, दाँत ला, वाराणसी में बेच, जीविका चलाता था। आगे चलकर उसने बोधिसत्व के दल के सबसे अन्तिम हाथी को मारना आरम्भ किया। रोज रोज हाथियो को कम होते देख हाथियो ने बोधिसत्व से कहा—किस कारण से हाथी कम हो रहे है ?

बोधिसत्व ने देखभाल करते हुए सोचा—एक आदमी प्रत्येक-युद्ध का वेष पहनकर हाथियो की कतार के सिरे पर रहता है। कही वही तो नही मारता है ? उसका पता लगाऊँगा। एक दिन हाथियों को आगेकर स्वय पीछे पीछे चला। वह आदमी बोधिसत्त्व को देखते ही शस्त्र लेकर कूदा। बोधिसत्व ने रुक कर खडे हो, उसे जमीन पर गिरा कुचल कर मार डालने के लिए सूण्ड उठाई। (लेकिन) उसके पहने काषाय वस्त्रो को देख सोचा—इस अर्हतध्वजा का मुझे आदर करना चाहिए। उसने सूण्ड लपेट कर 'भो पुरुष ! यह अर्हत ध्वजा तेरे योग्य नही है। तू इसे क्यो धारण करता है ?' कहते हुए यह गाथाएँ कहीं—

अनिक्कसावो कासाव यो वत्थ परिदहेस्सति,
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति ॥

यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो,
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति[1] ॥

[जो अपने मन को स्वच्छ किए बिना काषाय-वस्त्र को धारण करता है, सत्य और सयम से रहित वह व्यक्ति काषाय-वस्त्र का अधिकारी नही।

जिसने अपने मन के मैल को दूर कर दिया है, जो सदाचारी है, सत्य और सयम से युक्त वह व्यक्ति ही काषाय-वस्त्र का अधिकारी है।]

अनिक्कसावो, कसाव (=मैल) कहते हैं राग को, द्वेष को, मूढता को, म्रक्ष (=दूसरे के गुणो को मारना) को, प्लास (=अपनी दूसरे गुणी के साथ तुलना करना) को, ईर्षा को, मात्सर्य्य को, माया को, शठता को, अकड को, *स्पर्धा को, मान को, अतिमान को, मद को, प्रमाद को*—सभी अकुशल धर्मों को, सभी दुश्चरित्रो को, ससार के सभी डेढ हजार बन्धन क्लेशो को। वे जिस आदमी के प्रहीण नही हुए, जिसके (चित्त-)सतान से नही निकले, नही उखडे, वह आदमी **अनिक्कसावो।** कासाव, काषाय रस (रग) पी हुई अर्हत्-ध्वजा। **यो वत्थ परिदहेस्सति,** जो ऐसा होकर इस प्रकार का वस्त्र धारण करेगा, पहनेगा। **अपेतो दमसच्चेन,** *इन्द्रिय दमन नामक सयम से तथा निर्वाण* नामक परमार्थ-सत्य से दूर। अथवा **अपादान** (-विभक्ति) के **अर्थ मे कर्ण;** मतलब हुआ इस सयम-सत्य से दूर। सत्य का मतलब यहाँ वाणी का सत्य और चार (आर्य-) सत्य भी है। **न सो कासावमरहति,** वह आदमी कासाव-रहित न होने से काषाय रग की अर्हत ध्वजा का अधिकारी नहीं। वह इसके *योग्य नही।* **यो च वन्तकसावस्स,** *जो आदमी उक्त प्रकार के कासाव से* मुक्त होने के कारण कासाव-रहित है। **सीलेसु सुसमाहितो,** मार्ग-शील तथा फल शील मे सम्यक् स्थित, लाकर स्थापित कर दिए की तरह उनमें प्रतिष्ठित, उन शीलो से युक्त के लिए यह प्रयोग है। **उपेतो,** सम्पन्न, युक्त। **दमसच्चेन,** उक्त प्रकार के दमन से तथा सत्य से। **स वे कासावमरहति,** वह इस *प्रकार का आदमी ही इस काषायवर्ण की अर्हत्ध्वजा का अधिकारी है।*

---

[1] धम्म पद (१/६,१०)

इस प्रकार बोधिसत्व ने उस आदमी को यह बात कह, 'इसके बाद इधर न आना, यदि आया तो तेरी जान नहीं बचेगी' डराकर भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय हाथी मारने वाला आदमी देवदत्त था। दलपति मैं ही था।

२२२. चुल्लनन्दिय जातक

"इद तदाचरियवचो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

एक दिन धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त कठोर है, परुष है, दुस्साहसी है, सम्यक्-सम्बुद्ध को मारने वाले नियुक्त किए, उन पर दुश्शीलता का आरोप लगाया, नालागिरि (हाथी) का प्रयोग किया, तथागत के प्रति उसकी शान्ति, मैत्री, दया कुछ भी नहीं।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? अमुक बातचीत। 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में नन्दिय नामक बानर हुए। उनके छोटे भाई का नाम था चुल्लनन्दिय। वे दोनों अस्सी हजार वानरों के नेता हो हिमालय प्रदेश में अन्धी माता की सेवा करते हुए रहते थे। वे माता को भाड़ी में सुला स्वयं जंगल में जा वहाँ से मीठे मीठे फल ले माता के पास भेजते। लाने वाले उसे न देते। वह भूख से पीड़ित हो हड्डी-चर्म मात्र रह गई।

बोधिसत्त्व ने कहा—मा, हम तुम्हे मधुर फल भेजते हैं। तुम किसलिए कुम्हला रही हो?

"तात! मुझे नही मिलते।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—यदि मै दल की नेतागिरी करता रहा तो माता मर जाएगी। मै दल को छोड माता की ही सेवा करूँगा।

उसने चुल्लनन्दिय को बुलाकर कहा—तात! तू दल की नेतागिरी कर। मैं माता की सेवा करूँगा। उसने भी अपने भाई से कहा—मुझे दल की नेतागिरी से काम नही। मै भी माता की ही सेवा करूँगा। वे दोनो एकमत हो दल को त्याग, माता को ले हिमवन्त को छोड सीमान्त में न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे रहते हुए माता की सेवा करने लगे।

एक वाराणसी-वासी ब्राह्मण-विद्यार्थी ने तक्षशिला में सर्वप्रसिद्ध आचार्य्य के पास सब विद्यायें ग्रहण कर पूछा—अब मै जाऊँ? आचार्य्य ने विद्या के प्रताप से उसका कठोर, परुष तथा दुस्साहसी स्वभाव जान 'तात! तू कठोर, परुष तथा दुस्साहसी है। ऐसे लोगो को सब समय एक सा ही नही होता। महा-विनाश, महा-दुख को प्राप्त होते हैं। तू कठोर मत हो। ऐसा काम मत कर जिससे पीछे पछताना पडे' उपदेश दे विदा किया।

उसने आचार्य्य को प्रणाम कर, वाराणसी पहुँच, घर बसा सोचा कि मैं किसी दूसरे शिल्प से जीविका न चला सकूँगा। इसलिए मैं धनुप के सिरे से जीवित रहूँगा। मै शिकारी का काम कर जीविका चलाऊँगा। वह वाराणसी से निकल सीमान्त के गाँव मे रहते हुए धनुप-तरकस बाँध, जगल में जा नाना प्रकार के पशुओ को मार मास बेचकर जीविका चलाने लगा।

एक दिन उसे जगल में कुछ नही मिला। घर लौटते हुए उसने खुले मैदान के एक सिरे पर एक वट-वृक्ष देखा। शायद यहाँ कुछ मिले सोच वह वट-वृक्ष की ओर गया।

उसी समय दोनो भाई माँ को फल खिला उसे आगे करके वृक्ष के नीचे बैठे थे। जब उन्होने उस शिकारी को आते देखा, तो सोचा कि हमारी मा को देखकर भी क्या करेगा? वे स्वय शाखाओ के बीच मे छिप गए। उस निर्दयी आदमी ने भी वृक्ष के नीचे पहुँच, उनकी उस बुढापे से दुर्बल अन्धी माँ को देख

कर सोचा—खाली हाथ जाने से मुझे क्या लाभ ? इस बन्दरी को मार कर जाऊँगा।

उसने उसे मारने के लिए धनुष हाथ में लिया। बोधिसत्व ने यह देख चुल्लनन्दिय को कहा—तात ! यह आदमी मेरी माँ को बींधना चाहता है। मैं इसे अपना जीवन दान दूँगा। तू मेरे मरने पर माता की सेवा करना। फिर शाखाओं की ओट से निकल 'हे पुरुष ! मेरी माँ को मत मार। यह अन्धी है। बुढ़ापे से दुर्बल है। मैं इसे जीवनदान देता हूँ। तू इसे न मार कर मुझे मार' कह उससे प्रतिज्ञा करा जाकर तीर के पास बैठा।

उस निर्दयी ने बोधिसत्व को बींध, गिराकर फिर उसकी माँ को भी मारने को धनुष उठाया। इसे देख चुल्लनन्दिय ने सोचा—यह मेरी माँ को मारना चाहता है। एक दिन भी यदि मेरी माँ जी सके, तो 'प्राण बचे' ही कहा जाएगा। मैं इसे अपना जीवनदान दूँगा। उसने शाखाओं की ओट से निकल कर कहा—"भो पुरुष ! मेरी माँ को मत मार। मैं इसे जीवन-दान देता हूँ। तू मुझे मार। हम दोनो भाइयो को ले जाकर हमारी माँ को जीवन-दान दे।" उससे प्रतिज्ञा ले, वह तीर के पास जा बैठा। शिकारी उसे मार 'यह घर पर बच्चो के लिए होगी' सोच, उनकी माता को भी मार, तीनो जनो को लेकर घर की ओर गया।

इस पापी के घर पर बिजली गिर पड़ी। उसकी भार्य्या और दो लड़के घर के साथ ही जल गए। पृष्ठ-वंश और खम्बा मात्र बचे।

गाँव के दरवाज़े पर ही एक आदमी ने उसे देख यह समाचार कहा। वह स्त्री-बच्चो के शोक से इतना अभिभूत हुआ कि उसी जगह पर मास की बहँगी और धनुष छोड़, वस्त्र उतार, नगा हो बाँहे पकड़ रोता हुआ घर गया। वह खम्भा टूट कर सिर पर गिर पड़ा। सिर फट गया। पृथ्वी ने विवर दे दिया। अवीचि नरक से अग्नि-ज्वाला निकली। जब वह पृथ्वी से निगला जा रहा था, उसने आचार्य्य के उपदेश को याद कर 'इसी बात को देख पाराशर्य ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया था' रोते हुए इन दो गाथाओ को कहा—

> इद तदाचरियवचो पारासरियो यदब्रवी,
> मासु त्व अकरा पाप य त्वं पच्छा कत तपे ॥

यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति
कल्याणकारी कल्याणं पापकारी च पापकं,
यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फलं॥

इसका अर्थ—जो पारासरिय (पाराशर्य) ब्राह्मण ने कहा कि तू पापकर्म मत कर, पीछे तुझे ही कष्ट देगा—यह उस आचार्य्य का वचन है। आदमी शरीर, वाणी अथवा मन से जो भी कर्म करता है उनका फल पाता हुआ उन्हीं कर्मों को अपने में देखता है। शुभकर्म करने वाला शुभफल पाता है, पापकर्म करने वाला बुरा अनिष्टकर फल पाता है। दुनिया में भी जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है। बीज के अनुसार बीज के अनुकूल ही फल ले जाता है, ग्रहण करता है, भोगता है।

इस प्रकार रोता हुआ वह पृथ्वी में दाखिल हो अवीची महानरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है' कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य सारिपुत्र। चुल्लनन्दिय आनन्द। माता महाप्रजापति गौतमी। महानन्दिय तो मैं ही था।

२२३. पुटभत्त जातक

"नमे नमन्तस्स..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुटुम्बी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती नगर निवासी एक गृहस्थ जनपदनिवासी एक गृहस्थ के साथ लेन-देन करता था। वह अपनी भार्य्या को लेकर अपने करजदार के पास गया। उसने 'दे नहीं सकता हूँ' कह, कुछ न दिया। वह क्रुद्ध हो बिना कुछ खाए ही चल दिया।

रास्ते में उसे भूख से पीड़ित देख, रास्ता चलने वाले आदमियों ने भात की पोटली दी—भार्य्या को भी देकर खाओ। उसने वह ले उसे न देने की इच्छा से कहा—भद्रे, यह चोरों के ठहरने का स्थान है। तू आगे आगे जा। फिर सब भात खा चुकने पर उसे खाली पोटली दिखा कहा—भद्रे, उन्होंने भात-रहित खाली पोटली ही दी। यह जान कि वह अकेला ही खा गया, उसे दुःख हुआ।

वे दोनों जेतवन विहार की पिछली तरफ से जाते हुए पानी पीने के लिए जेतवन में प्रविष्ट हुए। शास्ता भी उनके आने की प्रतीक्षा करते हुए गन्धकुटी की छाया में वैसे ही बैठे जैसे रास्ता घेर कर कोई शिकारी बैठा हो। वे दोनों शास्ता को देख, पास जा, प्रणाम कर बैठे।

शास्ता ने उनका कुशल समाचार पूछ स्त्री से प्रश्न किया—भद्रे! क्या यह तेरा स्वामी तेरा हितैषी है, क्या तेरे प्रति स्नेह रखता है?

"भन्ते, मेरा तो इसके प्रति स्नेह है, किन्तु यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है। और दिनों की बात रहने दें आज ही इसे रास्ते में भात की पोटली मिली। यह बिना मुझे दिए ही स्वयं खा गया।"

"उपासिका, तू नित्य इसकी हितैषिणी तथा इसके प्रति स्नेह रखनी रही है। यह स्नेह रहित ही रहा है। लेकिन जब इसे पण्डितों की जबानी तेरे गुण मालूम होते हैं, तो यह तुझे सारा ऐश्वर्य दे देता है।"

उसके प्रार्थना करने पर (भगवान् ने) पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व आमात्य कुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए।

राजा ने अपने पुत्र पर षड्यन्त्र का सन्देह कर उसे निकाल दिया। वह अपनी भार्य्या सहित नगर से निकल काशी के एक गामड़े में रहने लगा।

आगे चलकर जब उसने पिता के मरने का समाचार सुना तो कुलागत राज्य को लेने के लिए वापिस बनारस आया। रास्ते में उसे भार्य्या को भी देकर खाने के लिए भात की पोटली मिली। उसने भार्य्या को न दे अकेले ही खाया। भार्य्या कठोर-हृदय जान बड़ी दुखी हुई।

वह वाराणसी का राजा हो उसे पटरानी बना 'इतना ही इसके लिए पर्य्याप्त है' समझ उसका और कोई सत्कार सम्मान न करता। कैसे दिन कटते हैं? तक न पूछता। बोधिसत्त्व ने सोचा—यह देवी राजा का बहुत उपकार करने वाली है, उसके प्रति स्नेह रखती है, लेकिन राजा इसे कुछ नहीं मानता। इसका सत्कार-सम्मान करवाऊँगा।

बोधिसत्त्व ने पास जा आदर पूर्वक एक ओर खड़े हो 'तात क्या है?' पूछने पर बातचीत चलाने के लिए कहा—देवी! हम तुम्हारी सेवा करते हैं। क्या बड़े बढ़ों को वस्त्र-खण्ड या भात नहीं देना चाहिए?

"तात, मैं स्वयं कुछ नहीं पाती। तुम्हें क्या दूँगी। जब मिलता था दिया। अब राजा मुझे कुछ नहीं देता। दूसरी किसी चीज की बात जाने दे। राज्य ग्रहण करने के लिए आने के समय रास्ते में भात की पोटली पा मुझे भात तक न दे अपने ही खाया।"

'अम्म! क्या राजा के सामने ऐसा कह सकेगी?"

"तात! कह सकूँगी।"

"तो आज ही जब मैं राजा के सामने खड़ा होकर पूछूँ तो ऐसा कहना। मैं आज ही तेरे गुण प्रकट करूँगा।"

ऐसा कह बोधिसत्त्व पहले से जाकर राजा के सामने खड़ा हुआ। वह भी जाकर राजा के सामने खड़ी हुई।

बोधिसत्त्व ने उसे कहा—अम्म! तुम अति कठोर-हृदया हो। क्या बड़े बूढ़ों को वस्त्र या भात नहीं देना चाहिए?

"तात! मुझे ही राजा से कुछ नहीं मिलता। तुम्हें क्या दूँगी।"

"क्या पटरानी नहीं हो?"

'तात! कुछ सम्मान न मिलने पर पटरानी होने से क्या होगा? अब

मुझे तुम्हारा राजा क्या देगा। उसने रास्ते में भात की पोटली पा, उसमें से कुछ भी न दे स्वयं खाया।"

बोधिसत्त्व ने पूछा—

"महाराज, क्या ऐसी बात है?"

राजा ने स्वीकार किया। बोधिसत्त्व ने राजा 'स्वीकार करता है' जान देवी को कहा—

"देवी! राजा को अप्रिय होने पर तुम्हें यहाँ रहने से क्या लाभ? संसार में अप्रिय का साथ दुखदायी होता है। तुम्हारे यहाँ रहने से राजा को अप्रिय के साथ रहने का दुख होगा। 'प्राणी मिलने वाले के साथ मिलते हैं, न मिलने वाले के साथ नहीं मिलते' जान दूसरी जगह चला जाना चाहिए। दुनिया बहुत बडी है।"

इतना कह यह गाथाएँ कहीं—

नमे नमन्तस्स भजे भजन्त
किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्च,
नानत्थकामस्स करेय्य अत्थ
असम्भजन्तम्पि न सम्भजेय्य ॥१॥
चजे चजन्त वनथ न कयिरा
अपेतचित्तेन न सम्भजेय्य,
द्विजो दुम खीणफल ति ञत्वा
अञ्ञ समेक्खेय्य महा हि लोको ॥२॥

[झुकने वाले के सामने झुके। संगति करना चाहने वाले के साथ संगति करे। जो अपने काम आता हो उसका काम करे। अनर्थ चाहने वाले का अर्थ न करे। जो संगति करना न चाहता हो, उससे संगति न करे ॥१॥

छोडने वाले को छोड दे। एसे से स्नेह न करे। जिसका दिल विमुख हो गया हो, उससे संगति न करे। जिस तरह पक्षी वृक्ष को फलरहित जानकर दूसरे (वृक्ष) को ढूँढते हैं, उसी तरह दूसरे को ढूँढ। संसार बडा है ॥२॥]

नमे नमन्तस्स भजे भजन्त जो अपने सामने झुके उसी के सामने झुके। जो संगति करता है उसी से संगति करे। किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्च, काम पडने पर जो अपने काम आवे, काम पडने पर उसका भी काम करे।

चजे चजन्त वणयं न कयिरा अपने को छोडने वाले को छोड ही दे। उससे तृष्णा नामक स्नेह न करे। अपेतचित्तेन विगत चित्त से वा बदले हुए चित्त (वाले) के साथ। न सम्भजेय्य वैसे के साथ न मिले जुले। द्विजो दुमं जैसे पक्षी पहले फले होने पर भी जब वृक्ष के फल नहीं रहते तो क्षीणफल हुआ जान उसे छोड दूसरे को देखता है, खोजता है उसी तरह अञ्ञं समेक्खेय्य महा हि यह लोको। तुम्हें स्नेह करने वाला एक न एक आदमी मिल जायगा।

यह सुन वाराणसी राजा ने देवी को सब ऐश्वर्य दिये। तब से लगाकर मिल जुलकर प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनों पति पत्नी स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुए।

उस समय पति पत्नी यह दोनों पति पत्नी थे। पण्डित आमात्य तो मैं ही था।

२२४. कुम्भील जातक[1]

"यस्सेते चतुरो धम्मा..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

---

[1] देखें वानरिंद जातक (५७)। कथा समान है। केवल एक गाथा अधिक है।

ग्रामात्य समझ गया कि राजा ने उसीके बारे में कहा है। उसके बाद से उसने रणवास को दूषित करने का साहस नहीं किया। उसके सेवक ने भी यह जानकर कि ग्रामात्य को पता लग गया है उसके बाद से वह कर्म करने का साहस नहीं किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मैं ही बाराणसी-राजा था। वह ग्रामात्य भी राजा ने शास्ता को कह दिया जान तब से वह कर्म नहीं कर सका।

२२६. कोसिय जातक

"काले निक्खमणा साधु. " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल नरेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा प्रत्यन्त देश को शान्त करने के लिए गैर मुनासिब समय पर निकल पडा। कथा उपरोक्त कथा[1] के सदृश ही है।

ख. अतीत कथा

शास्ता ने पूर्व (-जन्म) की कथा लाकर कहा—महाराज ! पूर्वकाल मे बाराणसी नरेश ने नामुनासिब समय निकल उद्यान में पडाव डलवाया। उसी समय एक उल्लू बाँसो के झुण्डो मे घुस कर छिप रहा। कौग्रो की सेना ने ग्राकर उसे घेर लिया कि निकलते ही पकडेगे। उसने सूर्य्यास्त तक

---

[1] देखें कळाय मुट्ठि जातक (१७६)

गिरा को समय रहते ही निकलकर भागना आरम्भ किया। कौश्रा ने उसे घेर चारों से ठोंगे मार मार कर गिरा दिया। राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—तात ! यह कौवे उल्लू को क्यों मार गिरा रहे हैं? बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महाराज ! अपने निवासस्थान से असमय बाहर निकलने वाले इस प्रकार का दुःख अनुभव करते ही हैं। इसलिए नामुनासिब समय पर अपने स्थान से नहीं निकलना चाहिए। यह बात कहते हुए ये दो गाथाऐं कहीं—

> काले निक्खमणा साधु नाकाले साधु निक्खमो,
> अकालेनहि निक्खम्म एककम्पि बहूजनो;
> न किञ्चि अत्थं जोतेति धङ्कसेनाव कोसिय ॥
> धीरो च विधिविधानञ्ञू परेस विवरन्तगू,
> सब्बामित्ते वसीकत्वा कोसियोव सुखी सिया ॥[1]

[समय पर (घर से बाहर) निकलना अच्छा है। असमय निकलना अच्छा नहीं। असमय पर निकलने से किसी लाभ को प्राप्त नहीं करता। अकेले को भी बहुत जन (मार देते हैं) जैसे कौश्रा की सेना न उल्लू को।
धीर, विधि-विधान को जानने वाला, तथा दूसरा के मार्ग पर चलने वाला सभी शत्रुओं को वशीभूत कर (पण्डित) उल्लू की तरह सुखी होवे]

काले निक्खमणा साधु महाराज निक्खमण का मतलब है निकलना का पराक्रम करना, यह उचित समय पर ही अच्छा होता है। नाकाले साधु निक्खमो असमय अपने निवासस्थान से दूसरे स्थान पर जाना—निकलना या पराक्रम करना—ठीक नहीं। अकालेनहि इत्यादि चारों पदों में पहले से तीसरे और दूसरे से चौथे का सम्बन्ध जोड़कर इस प्रकार अर्थ जानना चाहिए। अपने निवासस्थान से असमय निकलकर आदमी न किञ्चि अत्थं जोतेति अपनी कुछ भी उन्नति नहीं कर सकता। सो एककम्पि बहूजनो बहुत से भी

---

[1]गाथाओं का टीकाकार ने जो अर्थ किया है यह ठीक नहीं है। प्रतीत होता है कि कथा अन्यथा हो गई है।

वे शत्रु इसे अकेला निकला या जाता देख मारकर महाविनाश को पहुँचा देंगे। यह उपमा है—यङ्कसेनाव कोसियं जिस प्रकार यह कौओं की सेना इस असमय पर निकले, जाने उल्लू को चोंच से ठोंगे मारती हैं, महाविनाश को प्राप्त करती है वैसे ही। इसलिए पशु-पक्षियों तक को भी—किसीको भी असमय पर अपने निवासस्थान से नहीं निकलना चाहिए, नहीं चल पड़ना चाहिए।

दूसरी गाथा मे धीर का मतलब है पण्डित। विधि पुराने बुद्धिमान लोगो द्वारा स्थापित परम्परा। विधानं हिस्सा या क्रम। विवरन्तगू भेद को जानते हुए। सब्बामित्ते सभी शत्रु। वसी कत्वा अपने वश में करके। कोसियोव इस मूर्ख उल्लू से भिन्न किसी दूसरे बुद्धिमान उल्लू की तरह।

मतलब यह है कि जो बुद्धिमान 'इस समय निकलना चाहिए, पराक्रम करना चाहिए; इस समय नहीं निकलना चाहिए, नहीं पराक्रम करना चाहिए' यह पुराने पण्डितों द्वारा स्थापित परम्परा नामक जो विधि है उसके विभाग नामक विधान को, अथवा विधि के विधान, क्रम वा अनुष्ठान को जानता है; वह विधिविधान को जानने वाला पराए और अपने भेद को जानकर जैसे बुद्धिमान उल्लू रात्रि को अपने समय पर निकल पराक्रम कर जहाँ तहाँ सोए हुए कौओ के सिरो को छेदता हुआ उन सभी शत्रुओं को वश में कर सुखी होता है, इस प्रकार बुद्धिमान आदमी समय पर निकल पराक्रम कर अपने शत्रुओ को वश में कर सुखी होवे, दुःखरहित होवे।

राजा बोधिसत्त्व का कहना सुन रुका।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित आमात्य तो मैं ही था।

२२७. गूथपाणक जातक

"सूरो सूरेन सङ्गम्म. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन से गव्यूति[1], आधे योजन की दूरी पर एक निगम-ग्राम था। वहाँ से बहुत शलाका-भोजन[2] मिलता था। वहाँ एक प्रश्न पूछने वाला ठिगना व्यक्ति रहता था। वह शलाका-भोजन तथा पाक्षिकभोजन लेने के लिए गए तरुण भिक्षु तथा सामणेरो से 'कौन खाते हैं? कौन पीते हैं? कौन भोजन करते हैं?' आदि प्रश्न पूछता। उत्तर न दे सकने पर उन्हें लज्जित करता। वे उसके भय से शलाका भोजन तथा पाक्षिक-भोजन लेने उस गाँव न जाते।

एक दिन एक भिक्षु शलाका बाँटने के स्थान पर जाकर बोला—भन्ते! क्या अमुक गाँव में शलाका-भोजन या पाक्षिक-भोजन है?

"आयुष्मान! है, किन्तु वहाँ एक ठिगना व्यक्ति है जो प्रश्न पूछता है। उत्तर न दे सकने पर गाली देता है, अपशब्द कहता है। उसके भय से कोई नहीं जा सकते हैं।"

"भन्ते! वहाँ के भोजन मेरे जिम्मे कर। मैं उस का दमन कर, उसे निर्विष करके ऐसा बना दूँगा कि आगे से तुम्हें देख कर भागे।"

भिक्षुओं ने 'अच्छा' कह वहाँ का भोजन उसके जिम्मे कर दिया।

---

[1] गव्यूति=१/४ योजन।

[2] शलाक भत्त—गृहस्थों के घर से शलाका से प्राप्त होने वाला भोजन।

ने उसे देख सोचा—यह मेरे भय से ही भागा जा रहा है। मेरा इसका युद्ध होना चाहिए। उसने उसे ललकारते हुए पहली गाथा कही—

सरो सूरेन सङ्गम्म विक्कन्तेन पहारिना,
एहि नाग निवत्तस्सु किन्नु भीतो पलायसि;
पस्सन्तु अङ्गमगधा मम तुम्हञ्च विक्कमं ॥

[तू शूर है। लड़ने में, प्रहार करने में समर्थ शूर के सम्मुख होने पर हे नाग ! रुक, डर कर भाग क्यों रहा है। जरा अङ्गमगध के लोग मेरा और तेरा पराक्रम देखें।]

तू **सूरो** मुझ **सूरेन** साथ आकर वीर्य्य-विक्रम से **विक्कन्तेन** प्रहार करने की सामर्थ्य होने से **पहारिना** किस कारण से बिना लड़े ही जाता है। एक प्रहार तो देने दे। इसलिए **एहि नाग निवत्तस्सु** इतने से ही मरने से भयभीत हो **किन्नु भीतो पलायसि**। यह इस सीमा में रहने वाले **पस्सन्तु अङ्गमगधा मम तुम्हञ्च विक्कम** हम दोनों का पराक्रम देखें।

उस हाथी ने ध्यान देकर उसकी बात सुन, रुक कर उसके पास जा उसे अप्रसन्न करते हुए दूसरी गाथा कही—

न त पादा वधिस्सामि न दन्तेहि न सोण्डिया,
मिळ्हेन त वधिस्सामि पूति हञ्ञतु पूतिना ॥

[न तुझे पाँव से मारूँगा, न दाँतों से, न सूण्ड से। तुझे गूह से मारूँगा। गन्दगी गन्दगी से ही मरे।]

तुझे पाँव आदि से नहीं मारूँगा। तेरे योग्य गूह से ही तुझे मारूँगा।

ऐसा कह 'गन्दगी में रहने वाला कीड़ा गन्दगी से ही मरे' (करके) उसके सिर पर बड़ा से लेण्डा गिरा कर जल छोड़ उसे वहीं मार क्रौञ्चनाद करता हुआ अरण्य में गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गूह का कीड़ा ठिंगना था। हाथी वह भिक्षु था। उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला, उस वन-खण्ड मे रहने वाला देवता मैं ही था।

२२८. कामनीत जातक

"तयो गिरि, "यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामनीत ब्राह्मण के बारे मे कही। वर्तमान कथा तथा अतीत-कथा बारहवें परिच्छेद की कामजातक[1] में आएगी।

उन दोना राजपुत्रो में ज्येष्ठ भाई वाराणसी का राजा हुआ। छोटा भाई उपराजा। राजा की कामभोगो से तृप्ति न होती थी। वह धन का लालची था।

तब बोधिसत्त्व शक्र देवेन्द्र राजा था। उसने जम्बूद्वीप पर नजर डालते हुए उस राजा को दोनो प्रकार के भोगा मे अतृप्त जान उसका निग्रह कर उसे लज्जित करने के उद्देश्य से ब्राह्मण-ब्रह्मचारी का रूप बना आकर राजा को देखा। राजा ने पूछा—

"ब्रह्मचारी ! किस मतलब से आया ?"

"महाराज ! मुझे तीन नगर ऐसे दिखाई देते है जो शान्त है, धनधान्य से पूर्ण है, जहाँ हाथी, घोडे, रथ और पैदल बहुत है, तथा जो हिरण्य, स्वर्ण के अलङ्कारो से भरे है। उन नगरा को थोडी ही सेना से जीता जा सकता है। मैं तुम्हें वे नगर जीत कर देने के लिए आया हूँ।"

"ब्रह्मचारी ! कब चलेगे।"

---

[1] कामजातक (४६७)

"महाराज ! कल।"

"तो जा, प्रात काल ही आना।"

"अच्छा महाराज ! जल्दी से सेना तैयार कराएँ" वह शक्र अपने स्थान को चला गया।

अगले दिन राजा ने मुनादी करवा सेना तैयार करवाई और आमात्यो को बुलाकर कहा—"कल एक ब्राह्मण-तरुण ने उत्तर-पाञ्चाल, इन्द्रप्रस्थ तथा केकय इन तीन नगरो के राज्य को जीत कर देने के लिए कहा है। उस तरुण को लेकर तीनो नगरो का राज्य जीतेंगे। उसे जल्दी से बुलाओ।"

"देव ! उसे निवासस्थान कहाँ दिलवाया है ?"

"मैंने उसे निवास-गृह नही दिलवाया।"

"उसे भोजन-खर्च दिया ?"

"वह भी नही दिया।"

"उसे कहाँ ढूँढ ?"

"नगर की गलियों में ढूँढो।"

उन्होने ढूँढा। न मिलने पर कहा—

"महाराज ! दिखाई नही देता।"

माणवक को न देखने से राजा को महान शोक हुआ—अरे ! इतना बडा ऐश्वर्य जाता रहा। हृदय गर्म हो गया। रक्त प्रकुप्त हो गया। रक्तातिसार हो गया। वैद्य चिकित्सा न कर सके। तब तीन चार दिन गुजरने पर शक्र ने ध्यान देकर उसके रोग को जान उसकी चिकित्सा करूँगा सोच ब्राह्मण रूप धारण कर दरवाजे पर खडे हो कहलाया—वैद्य-ब्राह्मण तुम्हारी चिकित्सा के लिए आया है।

राजा ने उसे सुन कहा—बडे बडे वैद्य भी मेरा इलाज नही कर सके। इसे खर्चा देकर विदा करो। शक्र बोला—मुझे न भोजन की आवश्यकता है, न खर्चे की। वैद्य की फीस भी नही लूँगा। उसकी चिकित्सा करूँगा। राजा मुझे मिले। राजा ने यह सुनकर कहा—तो आ जाए।

शक्र प्रविष्ट हो जय बुलाकर एक ओर खडा हुआ। राजा ने पूछा—"तू मेरी चिकित्सा करेगा ?"

"देव, हाँ।"

"तो चिकित्सा कर।"

"अच्छा महाराज ! मुझे रोग का लक्षण बताएँ। किस कारण से रोग पैदा हुआ ? कुछ खाने पीने के कारण हुआ वा कुछ देखने सुनने के ?"

"तात ! मेरा रोग सुनने से पैदा हुआ।"

"तूने क्या सुना ?"

"तात ! एक तरुण ने आकर कहा कि मैं तीन नगरो का राज्य जीत कर दूँगा। मैंने उसे निवासस्थान वा भोजन-खर्च नही दिलवाया। वह मुझसे क्रुद्ध होकर दूसरे राजा के पास चला गया होगा। इस प्रकार 'मेरा इतना बडा ऐश्वर्य्य जाता रहा' सोचते रहने के कारण यह रोग पैदा हो गया है। यदि कर सकते हो तो कामना से उत्पन्न रोग की चिकित्सा करो।" इस अर्थ को प्रकट करते हुए पहली गाथा कही—

तयो गिरिं अन्तर कामयामि
पञ्चाला कुरयो केकये च;
ततुत्तरिं ब्राह्मण कामयामि
तिकिच्छ म ब्राह्मण कामनीत ॥

[तीनो नगर और वे जिनकी राजधानी है उन पाञ्चाल, कुरु तथा केकय देश की इच्छा करता हूँ। उससे अधिक भी इच्छा करता हूँ। हे ब्राह्मण ! मुझ कामना-ग्रस्त की चिकित्सा कर।]

तयोगिरिं का मतलब है तीन गिरि। अथवा तयोगिरी को ही पाठ समझें। जैसे 'यह सुदर्शनगिरि के द्वार को प्रकाशित करता है'[1] यहाँ सुदर्शन देवनगर को युद्ध करके ग्रहण करना कठिन होने से, अस्थिर करना कठिन होने से सुदर्शन-गिरि कहा गया। इसी प्रकार यहाँ भी तीनो नगरा से मतलब है तीनों गिरि। इसीलिए यही अर्थ है कि तीनो नगर और उनके अन्दर तीनो प्रकार के राष्ट्र की इच्छा करता हूँ। पञ्चाला, कुरयो केकये च यह उन राष्ट्रो के नाम हैं। उनमे पञ्चाला से मतलब है उत्तर पञ्चाल, जहाँ कम्पिल्ल नगर है।

[1] निमि जातक (५४१); गाथा १५१

कुरयो का मतलब है कुरु राष्ट्र, उसम इन्दपत्त नाम का नगर है। केकये प्रथमा विभक्ति के अर्थ मे द्वितीया है। इससे केकय राष्ट्र का मतलब है। यहाँ केक्य राजधानी ही नगर है। ततुत्तरिं मैने यहाँ वाराणसी राज्य तो प्राप्त किया है और तीन राज्य कामयामि। तिकिच्छ मं ब्राह्मण काम-नीत, *इन वस्तु-कामनाग्रा तथा भोग-कामनग्रा से ले जाए गए, मारे गए* मुझको, हे ब्राह्मण ! यदि सामर्थ्य है तो अच्छा कर।

शक्र ने 'महाराज ! जडफूल की ओषधियो से तेरी चिकित्सा नही हो सकती, ज्ञानौषध से ही तेरी चिकित्सा हो सकती है' कह दूसरी गाथा कही—

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हेके
अमनुस्सवद्धस्स[1] करोन्ति पण्डिता;
न कामनीतस्स करोति कोचि
ओक्कन्तसुक्कस्स ही का तिकिच्छा ॥

[कोई कोई काले साँप से डसे की चिकित्सा करते है, कोई कोई पण्डित भूत प्रेतादि अमनुष्यों से अभिभूतो की चिकित्सा करते है, लेकिन कामनाग्रो के जो वशीभूत हुग्रा है उसकी कोई चिकित्सा नही करता। जो कुशलधर्म की मर्य्यादा को लाँघ गया, उसकी क्या चिकित्सा ?]

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हेके कुछ चिकित्सक घोर विषैले सर्प, काले सर्प से डसे हुए की मन्त्रो से तथा औषधिया से चिकित्सा करते है। **अमनुस्सवद्धस्स करोन्ति पण्डिता,** दूसरे पण्डित भूतवैद्य, भूतयक्षादि अमनुष्यो द्वारा मारे गए, अभिभूत, ग्रहण किए गए, लोगो की वलिकर्म, परित्तकर्म, औषध तथा भावना आदि से चिकित्सा करते है। **न कामनीतस्स करोति कोचि** कामनाग्रो के वशीभूत आदमी की पण्डितो को छोड दूसरा कोई चिकित्सा नही करता। यदि करे भी, तो कर नही सकता। किस कारण से ? **ओक्कन्तसुक्कस्स ही का तिकिच्छा,** जिन्होन कुशल धर्म को पार कर लिया, जिन्हाने कुशलधर्म की

---

[1] 'अमनुस्सविद्धस्स' पाठ अच्छा है।

मर्य्यादा लाँघ दी, जो अकुशल धर्म में प्रतिष्ठित हो गए, ऐसे आदमियो कं मन्त्र वा औषध से क्या चिकित्सा होगी ? ऐसे मूर्ख को दवाइयो से अच्छ नही किया जा सकता।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने राजा को यह बात समझाते हुए आगे यूँ कहा— "महाराज ! यदि तू इन तीनो राज्यो को प्राप्त करेगा, तो इन चारो नगर पर राज्य करता हुआ क्या तू एक ही साथ चार चार वस्त्र पहनेगा ? अथव चार चार सोने की थालियो में भोजन करेगा ? अथवा चार चार पलँगो प सोएगा ? महाराज ! तृष्णा के वशीभूत न होना चाहिए। यह विपत्ति क मूल है। यह बढने पर अपने को बढाने वाले आदमी को आठ महा निरय में, सोलह उस्सद निरयो मे तथा शेष नाना प्रकार के अपायो मे जा गिराती है।'

इस प्रकार राजा को निरय आदि के भय से धमका कर बोधिसत्त्व न धर्मोपदेश दिया। राजा भी धर्म सुनकर शोकरहित हुआ। उसी समय उसक रोग जाता रहा। शक्र भी इसे उपदेश दे, शीलो मे प्रतिष्ठित कर देवलोक क ही चला गया।

वह भी उस समय से लेकर दानादि पुण्यकर्म करके यथाकर्म (परलोक) गया

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राज कामनीत ब्राह्मण था। शक्र तो मै ही था।

२२९. पलासी जातक[1]

"गजग्गमेघेहि " यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय पलासी परि-ब्राजक के बारे में कही—

---

[1] पलासि जातक

क. वर्तमान कथा

वह शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से सारे जम्बूद्वीप मे घूमा। कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। घूमता घूमता वह श्रावस्ती पहुँचा। वहाँ जाकर लोगो से पूछा कि मेरे साथ कोई शास्त्रार्थ कर सकता है ? मनुष्यो ने इस प्रकार बुद्ध गुणो की प्रशसा की—तेरे जैसे हजार हो तो उनके साथ भी शास्त्रार्थ कर सकने वाले, सर्वज्ञ, मनुष्यो म श्रेष्ठ, धर्मेश्वर, दूसरे वादो को जीतने वाले महान् गौतम हैं। सारे जम्बूद्वीप मे भी उत्पन्न हुआ विरोधी मत उन भगवान् को नही हरा सकता। सभी मत उनके चरणो मे आने पर इस प्रकार चूर्ण विचूर्ण हो जाते है जैसे लहरे किनारे पर पहुँच कर।"

परिव्राजक ने पूछा—इस समय वह कहाँ है ? उत्तर मिला—जेतवन म। उसने सोचा—अब उसके साथ शास्त्रार्थ करूँगा। वहुत से आदमियो के साथ उसने जेतवन जाते समय, नौ करोड खर्च से जेत राजकुमार द्वारा वनाया हुआ जेतवन-द्वार देखा। उसने पूछा—यही श्रमण गौतम के रहने के प्रासाद हैं ?

"यह तो ड्योढी है।"

"यदि ड्योढी ऐसी है तो निवासस्थान कैसा होगा ?"

"गन्धकुटी तो असीम है।"

उसने सोचा ऐसे श्रमण से कौन शास्त्रार्थ करेगा ! वह वही से भाग गया। शोर मचाते हुए कुछ मनुष्यो ने जेतवन मे प्रवेश किया। शास्ता ने पूछा—क्यो असमय आए ? उन्होने वह समाचार कहा। शास्ता ने कहा—उपासको ! केवल अभी नही, यह पहले भी मेरे निवासस्थान की ड्योढी को ही देख कर भाग गया था। उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल म गन्धार राष्ट्र म तक्षशिला मे बोधिसत्व राज्य करते थे। वाराणसी म था ब्रह्मदत्त। उसने तक्षशिला पर अधिकार करने की इच्छा से वडी सेना के साथ जाकर, नगर के समीप पहुँच, सेना को यह आज्ञा देते हुए

कि 'इस तरह से हाथियों को भेजो, इस तरह से घोड़े, इस तरह से रथ, इस तरह से पैदल, इस तरह दौड कर शस्त्रो से प्रहार करो तथा इस प्रकार बादलो की घनी वर्षा की तरह बाणो की वर्षा बरसाओ' ये दो गाथाएँ कहीं—

गजग्गमेघेहि हयग्गमालिहि
रथूमिजातेहि सराभिवस्सहि;
थरुग्गहावट्टदळ्हप्पहारिहि
परिवारिता तक्कसिला समन्ततो ॥
अभिधावथा च पतथा च
विविधविनदिता च दन्तिहि;
वत्ततज्ज तुमुलो घोसो
यथा विज्जुता जलधरस्स गज्जतो ॥

[श्रेष्ठ हाथियो रूप बादलो से, उत्तम घोडो की पंक्तियो से, रथो की लहरो से, शरो की वर्षा से, तलवार धारी चारो ओर प्रहार करने वालो से तक्षशिला को चारो ओर से घेर लो।

दौडो, उछलो तथा नाना प्रकार के नाद करने वाले हाथियो द्वारा आज तुमुल घोष करो, जैसे बिजली गर्जना करने वाले मेघो के साथ उछलती कूदती है।]

गजग्गमेघेहि श्रेष्ठ हाथियो रूप मेघो के द्वारा। क्रौञ्चनाद गर्जना करने वाले, मस्त हाथियो रूप बादलो द्वारा, यही अर्थ है। हयग्गमालिहि श्रेष्ठ घोडो की पंक्ति द्वारा। श्रेष्ठ घोडो की पंक्ति के समूह के द्वारा, अश्वो की सेना के द्वारा, यही अर्थ है। रथूमिजातेहि लहरो के वेग वाले, सागर के जल की तरह रथो की लहरो वाले—रथसेना यही मतलब है। सराभिवस्सहि उन रथ-सेनाओ से मूसलधार बरसने वाले मेघ की तरह तीरो की वर्षा बरसाते हुए। थरुग्गहावट्टदळ्हप्पहारिहि इधर उधर से घूम कर दृढ प्रहार करने वालो से, तलवार के दस्ते पकडे हुए, पैदल योद्धाओ से। परिवारिता तक्कसिला समन्ततो, जिस प्रकार यह तक्षशिला चारों ओर से घिर जाए, वैसा करो।

अभिधावथा च पतथा च जल्दी से दौडो तथा कूदो। विविध विनदिता च दन्तिहि श्रेष्ठ हाथियो के साथ नाना प्रकार से शोर मचाने वाले होश्रो। सीटी बजाने, गरजने, बाजे बजाने आदि के नाना प्रकार के शब्द करो। वत्ततज्ज तुमुलो घोसो श्राज़ बिजली के सदृश महान घोष हो। यथा विज्जुता जलधरस्स गज्जतो जैसे गरजते हुए बादल के मुंह से निकली हुई बिजलियाँ विचरण करती हैं, उसी प्रकार विचरते हुए, नगर को चारो श्रोर से घेर कर, राज्य छीन लो, यही श्रभिप्राय है।

वह राजा गरज कर सेना को श्राज्ञा दे नगर-द्वार के समीप गया। वहाँ ड्योढी को देख कर उसने पूछा कि क्या यह राजा के रहने का स्थान है? यह 'ड्योढी है' सुन उसने सोचा—जब ड्योढी ऐसी है तो राजा का निवास-स्थान कैसा होगा ? उत्तर मिला—वैजयन्त-प्रासाद जैसा। इस प्रकार के ऐश्वर्यशाली राजा के साथ युद्ध न कर सकूँगा, सोच ड्योढ़ी देख कर ही रुक, भाग कर बाराणसी चला श्राया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बाराणसी राजा पलासी परिव्राजक था। तक्षशिला-राजा तो मैं ही था।

२३०. दुतियपलासी जातक

"धजमपरिमितं...." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक पलासी परिव्राजक के ही बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

इस कथा में वह परिव्राजक जेतवन मे दाखिल हुश्रा। उस समय जन-समूह से घिरे हुए, अलङ्कृत धर्मासन पर बैठे हुए, शास्ता मनोशिलातल पर

सिंहनाद करते हुए, सिंह-बच्चे के समान धर्म-देशना कर रहे थे। परिव्राजक दसबलधारी के ब्रह्म-शरीर जैसे रूप, पूर्ण चन्द्र जैसी शोभा वाले मुँह तथा स्वर्णपट जैसे ललाट को देख कर, 'इस प्रकार के उत्तम पुरुष को कौन जीत सकेगा ?' सोच रुका और दूसरी मण्डली में घुसकर भाग गया। जनता ने उसका पीछा कर, रुक, शास्ता से वह वृत्तान्त कहा। शास्ता बोले—न केवल अभी यह परिव्राजक मेरे स्वर्ण-वर्ण मुख को देख कर भाग गया है, वह पहले भी भागा है। इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही— ,

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्त्व वाराणसी में राज्य करते थे। तक्षशिला में एक गन्धार राजा था। उसने वाराणसी जीतने की इच्छा से चतुरङ्गिनी सेना के साथ आकर, नगर घेर लिया। फिर नगर-द्वार पर खड़े हो अपनी सेना को देखते हुए, 'इतनी सेना को कौन जीत सकेगा' सोच अपनी सेना की प्रशंसा करते हुए पहली गाथा कही—

धजमपरिमित अनन्तपारं
दुप्पसह धङ्केहि सागरमिव;
गिरिमिव अनिलेन दुप्पसहो
दुप्पसहो अहमज्ज तादिसेन ॥

[मेरी असीम ध्वजाएँ हैं, अनन्त सेना है। जिस प्रकार कौवों के द्वारा सागर दुर्लंघ्य होता है (अथवा) हवा के द्वारा पर्वत दुर्जेय होता है, उसी प्रकार मैं आज वैसे शत्रु द्वारा दुर्जेय हूँ।]

धजमपरिमित यह मेरे रथा में मोरपङ्खा में लगाकर ऊँची की हुई ध्वजाएँ अपरिमित हैं, बहुत हैं, सैंकड़ो हैं। अनन्तपारं मेरी सेना भी, इतने हाथी हैं तथा इतने घोड़े हैं इस प्रकार गिनी नहीं जा सकती।

दुप्पसह शत्रुओ द्वारा जीती नहीं जा सकती। जैसे क्या ? धङ्केहि सागरमिव जैसे सागर बहुत कौवा द्वारा भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दुरधर्ष। गिरिमिव अनिलेन दुप्पसहो यह मेरी सेना, दूसरी सेना

के सामने उसी तरह स्थिर रहती है जैसे हवा के सामने पर्वत। वुप्पसहो अहमज्ज तादिसेन इस सेना के साथ में आज वैसे (शत्रु) से दुर्जेय हूँ। महल पर खड़े बोधिसत्त्व के बारे में कहता है।

उसने उसे अपना पूर्ण चन्द्र की सी शोभा वाला मुख दिखला कर धम-*काया—मूर्ख, बकवास मत कर, जिस प्रकार मस्त हाथी सरकण्डे के वन को* नष्ट कर देता है उसी प्रकार अभी तेरी सेना को विध्वंस करूँगा। और दूसरी गाथा कही—

> *मा बालियं विप्पलपि न हिस्स तादिसं*
> विळय्हसे नहि लभसे निसेधकं;
> आसज्जसि गजमिव एकचारिनं
> यो तं पदा नळमिव पोथयिस्सति ॥

[मूर्खता की बात मत बक। ऐसा नहीं हो सकता; 'मुझे रोकने वाला नहीं मिलेगा' सोच उबलता है। तू एकचारी हाथी के सामने आया है जो तुझे वैसे ही पाँव से कुचल देगा जैसे सरकण्डे को।]

मा बालियं विप्पलपि अपनी मूर्खता मत बक। न हिस्स तादिसं अथवा न हिस्स तादिसो पाठ है। मेरी सेना अनन्त है, इस प्रकार विचार कर राज्य जीत सकने वाला तेरे जैसा न होवे या नहीं होना है। विळय्हसे तू केवल राग, द्वेष, मोह तथा मान से जलकर उबल रहा है। नहिलभसे निसेधक मेरे जैसे को जीत कर फिर और रुकावट डालने वाला तुझे न मिलेगा। जिस रास्ते से तू आया है उसीसे भगाऊँगा। आसज्जसि प्राप्त हुआ है। गजमिव एकचारिनं एकचारी मस्त हाथी की तरह। यो तं पदा नळमिव पोथयिस्सति जो तुझे उसी तरह कुचल देगा जिस तरह मस्त हाथी पाँवों से सरकण्डे को कुचलता है, *अच्छी तरह पीस डालता है।* तू उसे प्राप्त हुआ, यह अपने बारे में कहा।

इस प्रकार चमकते हुए का कहना सुन, गन्धार राजा उसके स्वर्णपट्ट सदृश महा ललाट को देख, भयभीत हो, डर, भागकर अपने नगर ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गन्धार राजा पलायी परिव्राजक था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

९. उपाहन वर्ग

२३१. उपाहन जातक

"यथापि कीता " यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय, देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त आचार्य्य को छोड़, तथागत का विरोधी शत्रु बन विनाश को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत'। शास्ता ने, 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त आचार्य्य को त्याग, मेरा विरोधी बन महाविनाश को प्राप्त हुआ, वह पहले भी हुआ है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हथवानों के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर हस्ति शिल्प में पारङ्गत हो गए।

काशी के एक गामड़े के माणवक ने आकर उनसे विद्या सीखी। बोधिसत्व शिल्प सिखाते हुए आचार्य्य-मुट्ठी[1] नहीं रखते। जो जो जानते हैं, वह सब सिखा देते हैं। उस माणवक ने बोधिसत्व की सारी विद्या सीख चुकने पर

---

[1]विद्या को छिपा कर रखना।

कहा—आचार्य ! अब मैं राजाओं की सेवा में रहूँगा। बोधिसत्व ने 'तात ! अच्छा' कह महाराजा से कहा—

"महाराज ! मेरा शिष्य आपकी सेवा में रहना चाहता है।"

'अच्छा ! रहे।'

'तो उसका वेतन कह दें।'

'आपका शिष्य आपके बराबर नहीं पा सकता। आपको सौ मिलने पर उसे पचास मिलेंगे, दो (सौ) मिलने पर एक (सौ)।"

उसने घर जाकर शिष्य से कहा। शिष्य बोला—

"आचार्य ! मैं आपके बराबर शिल्प जानता हूँ। यदि जितना आप पाते हैं उतना ही वेतन मिलगा तो राजा की सेवा में रहूँगा, नहीं तो नहीं रहूँगा।"

बोधिसत्व ने वह वृत्तान्त राजा से कहा। राजा बोला—यदि वह तुम्हारे जितना शिल्प जानता है तो तुम्हारे बराबर शिल्प दिखा सकने पर उसे तुम्हारे बराबर मिलेगा। बोधिसत्व ने अपने शिष्य से वह बात कही। उसने कहा 'अच्छा, मैं दिखाऊँगा।' बोधिसत्व ने राजा से कहा। राजा बोला, तो कल शिल्प दिखा। शिष्य ने कहा—दिखाऊँगा, नगर में मुनादी करा दें। राजा ने मुनादी करा दी कि कल आचार्य और उनका शिष्य हस्ति-शिल्प दिखाएँगे। जो देखना चाहे वे राजाङ्गण में इकट्ठे होकर देखें। आचार्य ने यह सोच कि मेरा शिष्य उपाय-कुशल नहीं है एक हाथी ले उसे एक ही रात में 'उलटी बात' सिखाई—चल कहने पर पीछे हटना, पीछे हटो कहने पर चलना, खड़ा हो कहने पर लेटना, लेट कहने पर खड़ा होना, पकड़ कहने पर रखना तथा रख कहने पर पकड़ना। इस प्रकार सिखा, अगले दिन वह उस हाथी पर चढ़ राजदरबार में पहुँचा। शिष्य भी एक सुन्दर हाथी पर चढ़ा। जनता इकट्ठी हुई। दोनों ने बराबर शिल्प दिखाया। बोधिसत्व ने अपने हाथी से (हाथी) बदल लिया। वह चल कहने पर पीछे हटा। पीछे हट कहने पर आगे दौड़ा। खड़ा हो कहने पर लेट गया। लेट कहने पर खड़ा हुआ। (उसने) पकड़ कहने पर रख दिया। रख कहने पर पकड़ा।

जनता बोली—अरे दुष्ट शिष्य ! तू आचार्य के साथ झगड़ा करता है। अपनी सामर्थ्य नहीं जानता। समझता है कि मैं आचार्य के बराबर जानता हूँ। फिर जनता ने उसे ढेले और डण्डों की मार से वहीं मार डाला।

बोधिसत्त्व ने हाथी से उतर राजा के पास जाकर कहा—महाराज ! शिल्प अपने को सुखी बनाने के लिए सीखी जाती है। लेकिन किसी किसी के लिए शिल्प विनाश का कारण होता है जैसे ठीक से न बनाया हुआ जूता। इतना कह यह दो गाथाएँ कहीं—

यथापि कीता पुरिसस्सुपाहना
सुखस्स अत्थाय दुखं उदब्बहे;
घम्माभितत्ता तलसा पपीलिता
तस्सेव पादे पुरिसस्स खादरे ॥
एवमेव यो दुक्कुलीनो अनरियो
तम्हाक विज्जञ्च सुतञ्च मादिय;
तमेव सो तत्थ सुतेन खादति
अनरियो वुच्चति पानदूपमो ॥

[जिस प्रकार सुख के लिए खरीदे गए जूते गर्मी से तप्त होकर तथा पाद-तल से पीडित होकर उसी आदमी के पैर को काट खाते हैं, उसी प्रकार जो नीचकुल का अनार्य्य होता है वह जिस (आचार्य्य) से शिल्प तथा श्रुत ग्रहण करता है उसी को वह अपने ज्ञान (श्रुत) से खाता है। अनार्य्य आदमी खराब जूते के समान समझा जाता है।]

उदब्बहे, कष्ट दे। घम्माभितत्ता तलसा पपीळिता घाम से अभितप्त और पैर के तलुवे से पीडित। तस्सेव जिसने वह खराब जूते सुख की आशा से खरीद कर पाँव में डाले उसीके। खादरे जख्म करते हैं या पाँव खाते हैं।

दुक्कुलीनो खराब जाति का, कुलहीन पुत्र। अनरियो लज्जा-भय रहित असत्पुरुष। तम्हाकविज्जञ्च सुतञ्च मादिय उस उसको सिखाता है इसलिए तमावो की जगह तम्हावो। मतलब है उस उसको हुनर का अभ्यास कराना है, उसमें लगाता है। आचार्य्य ही इसका अर्थ है, इसलिए तम्हाका। गाथा-बन्धन को सरल करने के लिए ह्रस्व किया गया है। विज्जं, अठारह विद्याओं में से कोई। सुतं जो कुछ श्रुतशास्त्र। आदिय, लेकर। तमेव सो

तस्थ सुतेन खादति अपने ही आपको वह अर्थात् जो दुष्टकुल का अनार्य्य आचार्य्य से विद्या और ज्ञान ग्रहण करता है वह वहाँ ज्ञान से खाता है अर्थात् उसके पास से श्रुतज्ञान से वह अपने को ही नष्ट करता है।

अट्ठकथा[1] में **तेनेव सो तत्थ सुतेन खादति** भी पाठ है। उसका भी 'वह वहाँ ज्ञान से अपने को खाता है' ही अर्थ है। **अनरियो वुच्चति पानदूपमो** अनार्य्य (आदमी) खराब जूते जैसा कहा जाता है। जिस प्रकार खराब जूते आदमी को खाते है, उसी प्रकार यह ज्ञान से खाता है तो अपने आप अपने को ही खाता है। अथवा जूते से जखमी पानदू। जूते से पीडित, जूते से खाए गए पैर से मतलब है। इसलिए अपने आपको जो ज्ञान से हानि पहुँचाता है, वह उस ज्ञान से खाया जाने के कारण अनार्य्य कहलाता है। पानदूपमो का यही अर्थ है कि जूते से पीडित पाँव की तरह।

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व को महान् सम्पत्ति दी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिष्य देवदत्त था। आचार्य्य तो मैं ही था।

२३२. वीणथूण जातक

एकचिन्तितोव अयमत्थो . . यह शास्ता ने जेतवन में विचरते समय एक कुमारी के बारे में कही।

---

[1] पुरानी सिहल अट्ठकथा।

क. वर्तमान कथा

यह श्रावस्ती के एक सेठ की लड़की थी। उसने अपने घर में वृषभराज का सत्कार होते देख दाई से पूछा—माँ, यह कौन है जिसका इस प्रकार सत्कार होता है?

"बेटी, यह वृषभराज है।"

एक दिन उस लड़की ने प्रासाद पर खड़े होकर गली में एक कुबड़े को देखा। उसने सोचा—बैलों में जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक ककुप होता है, मनुष्यों में जो बड़ा हो उसकी पीठ पर भी होना चाहिए। यह मनुष्यों में वृषभ-राज होगा। मुझे इसकी चरणसेविका बनना चाहिए। उसने दासी को भेजकर उसे कहलवाया कि सेठ की लड़की तेरे साथ जाना चाहती है। तू अमुक स्थान पर जाकर ठहर। वह कीमती चीजें ले, भेष बदल, महल से उतर उसके साथ भाग गई। आगे चलकर वह बात नगर में और भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई। धर्मसभा में भिक्षुओं ने बात चलाई—आयुष्मानो! अमुक सेठ-लड़की कुबड़े के साथ भाग गई।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी यह कुबड़े को चाहती है, इसने पहले भी कुबड़े की ही इच्छा की है। इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने एक निगम-ग्राम में सेठ के कुल में पैदा हो, गृहस्थी बसाते हुए, पुत्र-पुत्री के साथ बढ़ते हुए अपने पुत्र के लिए वाराणसी-सेठ की लड़की पक्की कर दिन का निश्चय किया। सेठ की लड़की ने अपने घर पर वृषभ का सत्कार-सम्मान होते देख दाई से पूछा—यह कौन है? उसने कहा—यह वृषभ है। तब सेठ की लड़की ने गली में जाते हुए एक कुबड़े को देखकर समझा कि यह पुरुषों में वृषभ होगा। उसने कीमती सामान लिया और उसके साथ भाग गई।

बोधिसत्त्व भी सेठ की लडकी को घर लाने की इच्छा से बडी बारात के साथ वाराणसी जाते हुए उसी रास्ते पर हो लिए। वे दोनो सारी रात रास्ता चलते रहे। रात भर सर्दी खाने के कारण अरुणोदय होने पर कुबडे के शरीर का वायु कुपित हो गया। बडी पीडा होने लगी। वह रास्ते से हट, पीडा से बेहोश होने के कारण वीणा के दण्डे की तरह मुडकर पड रहा। सेठ की लडकी भी उसके चरणो म बैठ रही। बोधिसत्त्व ने सेठ की लडकी को कुबडे के चरणो में बैठे देख, पहचान कर, पास आ, सेठ की लडकी से वार्तालाप करते हुए पहली गाथा कही—

एकचिन्तितोव अयमत्थो बालो अपरिनायको,
नहि खुज्जेन वामेन भोति सङ्गन्तुमरहसि ॥

[यह (कुबडे के साथ भागने की बात) एक देशी चिन्ता है। (कुबडा) मूर्ख है, जाने में असमर्थ है। कुबडे बौने के साथ आपका जाना उचित नहीं।]

एकचिन्तितोव अयमत्थो, अम्म ! यह जो तू सोचकर इस कुबडे के साथ निकल भागी यह बात तेरी अकेली की ही सोची होगी। **बालो अपरिनायको** यह कुबडा मूर्ख है, दुर्बुद्धि होने से बूढा होने पर भी बाल ही है। दूसरा पकड कर ले जाने वाला न होने पर जाने मे असमर्थ होने से अपरिनायक। **नहि खुज्जेन वामेन भोति सङ्गन्तुमरहसि,** इस कुबडे के साथ, वामनरूप होने से बौने के साथ, तुम्हें जो महान् कुल मे उत्पन्न हुई हो, सुन्दर हो, दर्शनीय हो जाना योग्य नहीं।

उसकी इस बात को सुनकर सेठ की लडकी ने दूसरी गाथा कही—

पुरिसूसभ मञ्जमाना अहं खुज्जमकामयिं,
सोयं सङ्कुटितो सेति छिन्नतन्ति यथा थुणा ॥

[मैंने कुबडे को पुरुषो म वृषभ समझ कर उसकी इच्छा की। यह तार टूटी वीणा की तरह सुकडा हुआ पडा है।]

आर्य ! मैंने एक साड को देखकर सोचा कि बैलों में जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक कूबड़ होता है। इसकी पीठ पर भी यह है। इसलिए यह पुरुषों में वृषभ होगा। इस प्रकार मैंने इस कुबडे को पुरुष-वृषभ मान कर इसकी इच्छा की। यह तो जैसे, तार टूटा तूमडी सहित वीणा-दण्ड हो वैसे मुडा हुआ पड़ा है।

बोधिसत्व यह जान कि यह अज्ञान के ही कारण घर से निकल पडी, उसे नहला, अलङ्कृत कर, रथ पर चढ़ा घर ले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय यही सेठ की लडकी थी। वाराणसी-सेठ तो मैं ही था।

२३३. विकण्णक जातक

"कामं यहिं इच्छसि तेन गच्छ " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह धर्मसभा में लाया गया। शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ? 'सचमुच' कहने पर पूछा—किस कारण से उत्कण्ठित है ? बोला—कामुकता के कारण। शास्ता ने उसे कहा—भिक्षु, कामुकता तीरों शल्य की तरह है। एक बार हृदय में प्रतिष्ठित होने पर तीर लगे मगरमच्छ की तरह मार ही डालनी है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

भोजन के कारण मच्छो का पीछा करता हुआ लोभवश मारा गया है।]

काम निश्चय से। यहिं इच्छसि तेन गच्छ जहाँ चाहे वहाँ जा। मम्मम्हि मर्म स्थान मे। विकण्णकेन उल्टी नोक वाले शल्य से। हतोसि भत्तेन सवादितेन लोलो च मच्छे अनुबन्धमानो तू नगाडा बजाकर भात दिए जाते समय लोभी बन खाने के लिए मच्छो का पीछा करता हुआ उस स्वादिष्ट भोजन द्वारा मारा गया। जाने की जगह भी तू जीवित नही रहेगा।

वह अपने वासस्थान पर पहुँच कर मर गया। शास्ता ने यह बात कह, अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

एवम्पि लोकामिस ओपतन्तो
विहञ्ञती चित्तवसानुवत्ती;
सो हञ्ञति ञातिसखानमज्झे
मच्छानुगो सोरिव सुसुमारो ॥

[इस प्रकार लौकिक लाभ के पीछे भागता हुआ, अपने चित्त के वशीभूत आदमी मारा जाता है। वह रिश्तेदारो और दोस्तो के बीच वैसे ही मारा जाता है जैसे मच्छो का पीछा करने वाला मगरमच्छ।]

लोकामिस पाँच विषय। उन्हें ससार इष्ट, कान्त तथा सुन्दर समझ ग्रहण करता है, इसलिए लोकामिस कहलाते है। ओपतन्तो उन लौकिक चीजो के पीछे भागता हुआ राग के वशीभूत आदमी विहञ्ञति कष्ट पाता है। सो हञ्ञति इस प्रकार का वह आदमी रिश्तेदारो तथा मित्रो के बीच म भी सो तीर से बिंधे मच्छानुगो सुसुमारो विय पाँच विषयो को सुन्दर मानकर हञ्ञति कष्ट पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के प्रकाशन के अन्त म उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय बाराणसी राजा मैं ही था।

२३४. असिताभू जातक

"त्वमेवदानिमकर " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुमारी के बारे म कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दोनों प्रधान शिष्यों की सेवा करने वाले एक कुल में एक कुमारी थी—सुन्दर, सौभाग्यशाली। वह बड़ी होने पर अपनी बराबर की जाति के कुल में गई। उसका स्वामी उसे कुछ न समझ किसी दूसरी जगह ही आसक्त रहता। वह उसके अनादर का कुछ ख्याल न कर, दोनो श्रावको को निमन्त्रित कर, महादान दे धर्मोपदेश सुनती हुई स्रोतापत्ति फल म प्रतिष्ठित हुई। उसके बाद से वह मार्ग-सुख तथा फल-सुख का आनन्द लेती हुई सोचने लगी कि स्वामी भी मुझे नही चाहता और गृहस्थी से भी मुझे प्रयोजन नही। मैं प्रव्रजित होऊँगी। वह मातापिता को कह, प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुई। उसकी वह करनी भिक्षुओं को ज्ञात हो गई।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा म बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक कुल की लड़की सदर्थ की खोज करने वाली है। उसने यह जान कि स्वामी उसे नही चहता है, प्रधान शिष्यों का धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, फिर मातापिता की आज्ञा ले, प्रव्रजित हो अर्हत्व प्राप्त किया। ऐसी है वह सदर्थ की खोज करने वाली लडकी। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता न कहा—भिक्षुओ, वह कुलकुमारी केवल अभी सदर्थ की खोज करने वाली नहीं है। वह पहले भी सदर्थ की खोज करने वाली ही रही है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ऋषियो के क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश मे रहने लगे। उस समय बाराणसी नरेश ने यह देख कि उसके पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार के साथ बहुत लोग है उससे आशङ्का होने के कारण उसे राष्ट्र से बाहर करवा दिया। वह असिताभू नामक अपनी देवी को साथ ले, हिमालय म प्रविष्ट हो मछली, मास, फलमूल खाता हुआ पर्णशाला मे रहने लगा। एक किन्नरी को देख, उसके प्रति आसक्त हो उसने सोचा कि इसे अपनी भार्य्या बनाऊँगा और असिताभू का ख्याल न कर उसके पीछे पीछे गया। उसने उसे किन्नरी के पीछे जाता देख सोचा यह मुझे छोड किन्नरी के पीछे जाता है, मुझे इससे क्या ? उसने उसके प्रति विरक्त हो बोधिसत्त्व के पास जा, प्रणाम कर, अपने योग्य कसिन पूछ, कसिन की भावना कर अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त की। फिर बोधिसत्त्व को प्रणाम कर आकर स्वय पर्ण-शाला-द्वार पर खडी हुई। ब्रह्मदत्त भी किन्नरी का पीछा करता हुआ घूमता रहा। उसे उसके जाने का मार्ग तक न दिखाई दिया। वह निराश होकर पर्णशाला के सामने आया। असिताभू ने उसे आते देख आकाश मे उठ, मणि वर्ण के गगनतल मे खडी हो 'आर्यपुत्र ! तेरे कारण मुझे यह ध्यान सुख प्राप्त हुआ' कह पहली गाथा कही—

त्वमेवदानिमकर य कामो व्यगमा तयि,
सो य अप्पटिसन्धिको खरा छिन्नव रेक्क ॥१॥

[यह जो तेरे प्रति आसक्ति जाती रही, यह अब तून ही किया है। आरी से कटे हाथीदाँत की तरह यह अब जुड नही सकती।]

त्वमेवदानिमकर आर्यपुत्र ! मुझे छोड कर किन्नरी का पीछा करते हुए तूने ही यह किया है। **य कामो व्यगमा तयि** जो मेरी तेरे प्रति आसक्ति जाती रही, विषकम्भन-प्रहाण द्वारा प्रहीण हो गई, जिसके प्रहीण होन से मुझ यह विशेष अवस्था प्राप्त हुई। **सोय अप्पटिसन्धिको** वह आसक्ति अब बिना जुड सकने वाली हो गई, फिर जोडी नही जा सकती। **खरा छिन्नव रेक्क**

सर कहते हैं ग्रारी को ग्रौर रेरुक कहते हैं हाथीदाँत को। जैसे ग्रारी से कटा हुग्रा हाथीदांत फिर जुड़ नहीं सकता, फिर पहले की तरह से नहीं मिलता। इसी प्रकार मेरा तेरे साथ फिर चित्त का संयोग नहीं हो सकता।

वह यह उसके देखते हुए ही ऊपर उठकर दूसरी जगह चली गई। उसने उसके जाने पर रोते हुए दूसरी गाथा कही—

ग्रतिच्छा ग्रतिलोभेन ग्रतिलोभमदेन च,
एवं हायति ग्रत्यम्हा ग्रहंव ग्रसिताभुया॥

[जहाँ तहाँ इच्छा करने से, ग्रति लोभ से तथा ग्रति लोभमद से ग्रादमी उसी प्रकार ग्रपने लाभ को गँवा देता है जैसे मैंने ग्रसिताभू को।]

ग्रतिच्छा ग्रतिलोभेन ग्रतिच्छा कहते हैं जहाँ तहाँ पैदा होने वाली ग्रसीम तृष्णा को। ग्रतिलोभ कहते हैं सीमा लाँघने वाले लोभ को। ग्रतिलोभमदेन च पुरुष-मद पैदा होने से ग्रतिलोभ मद हो गया। भावार्थ यह है कि जहाँ तहाँ इच्छा करने वाला ग्रादमी ग्रतिलोभ से तथा ग्रतिलाभमद से यहाँ व ग्रसिताभुया जैसे मैं ग्रसिताभू राजकन्या से जुदा हो गया वैसे वह ग्रपने लाभ को गँवा देता है।

२३५. वच्छनख जातक

"सुखा घरा वच्छनख ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय रोजमल्ल के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् आनन्द का गृहस्थी-काल का मित्र था। उसने एक दिन स्थविर के पास आने के लिए सन्देश भेजा। स्थविर शास्ता से आज्ञा लेकर गए। उसने स्थविर को नाना प्रकार के वढिया भोजन खिला, एक ओर बैठ, स्थविर के साथ कुशल क्षेम वतियाते हुए स्थविर को गृहस्थ-भोगो तथा पाँच विषयो का निमन्त्रण दिया। वह बोला—भन्ते आनन्द ! मेरे घर मे बहुत सी जडचेतन सम्पत्ति है। इसे बीच मे से आधी बाँटकर तुम्हे देता हूँ। आएँ दोनो घर में रहें।

स्थविर ने उसे कामभोगो के दुष्परिणाम कहे और आसन से उठकर विहार चले गए। शास्ता ने पूछा—आनन्द ! तूने रोज को देखा ?

"हाँ, भन्ते।"

"उसे क्या कहा ?"

"भन्ते ! मुझे रोज गृहस्थ होने का निमन्त्रण देता था।

मैंने उसे गृहस्थ जीवन के तथा विषयो के दोष बताए।"

शास्ता ने कहा—आनन्द ! रोजमल्ल केवल अभी प्रव्रजितो को गृहस्थ होने का निमन्त्रण नही देता। इसने पहले भी निमन्त्रण दिया है। उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक निगम-ग्राम में किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो हिमालय में रहने लगे। वहाँ चिरकाल तक रहकर निमक-खटाई खाने के लिए वाराणसी पहुँच, राजा के बाग में रह, अगले दिन वाराणसी मे प्रवेश किया। वाराणसी का सेठ उनकी चालढाल से प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें घर ले जाकर भोजन खिलाया। फिर उद्यान में रहने का वचन ले सेवा करते हुए उद्यान में बसाया। उनमें परस्पर स्नेह पैदा हो गया।

बोधिसत्व के प्रति प्रेम और विश्वास होने के कारण वाराणसी-सेठ एक दिन इस प्रकार सोचने लगा—प्रव्रजित रहना दुःखकर है। मैं अपने मित्र वच्छनख परिव्राजक को गृहस्थ बना सारा धन बीच में से आधा आधा बाँट कर उसे दे दूँ। दोनो मिलकर रहें। उसने एक दिन भोजन के अनन्तर उसके साथ मधुर बातचीत करते हुए कहा—'भन्ते वच्छनख! प्रव्रजित रहना दुःख है। गृहस्थ रहने मे सुख है। आएँ दोनो मिलकर विषयो का भोग करते हुए रहें।' यह कह पहली गाथा कही—

> सुखा घरा वच्छनख सहिरञ्ञा सभोजना,
> यत्थ भुत्वा च पीत्वा च सयेय्याथ अनुस्सुको ॥

[वच्छनख! सोने और खाद्य पदार्थों से भरपूर घर सुख-कर है, जहाँ खा पीकर आदमी निश्चिन्त सोता है।]

सहिरञ्ञा सात रत्नो से युक्त। सभोजना बहुत खाद्य भोज्य पदार्थों से युक्त। यत्थ भुत्वा च पीत्वा च जिन सोने और भोजनो से युक्त घरो में नाना प्रकार के बढ़िया भोजन खाकर और नाना प्रकार के पान पीकर। सयेय्याथ अनुस्सुको जिन (घरो) में अलकृत शयनासनो पर निश्चित होकर सोएगा, उससे घर बहुत ही सुखकर हैं।

उसकी बात सुन बोधिसत्व ने कहा—सेठ ! तू अज्ञान के कारण काम-भोगों में आसक्त होकर गृहस्थी का गुण और प्रव्रज्या का अवगुण कह रहा है। अब तू सुन, मैं गृहस्थी के दोष बताता हूँ। यह कह दूसरी गाथा कही—

घरा नानीहमानस्स घरा नाभणतो मुसा,
घरा नादिन्नदण्डस्स परेस अनिकुब्बतो;
एव छिद्द दुरभिभव को घर पटिपज्जति ॥

[(नित्य) मेहनत न करने वाले की गृहस्थी नहीं चलती। झूठ न बोलने वाले की गृहस्थी नहीं चलती। दूसरा को न ठगते हुए की गृहस्थी नहीं चलती। दण्डत्यागी की गृहस्थी नही चलती। इस प्रकार की छिद्रो से पूर्ण, मुश्किल से चलने वाली गृहस्थी को कौन करता है।]

घरा नानीहमानस्स नित्य कृषि गोरक्षा आदि करने म परिश्रम न करने वाल की गृहस्थी नहीं (चलती)। गृहस्थी स्थिर नहीं होती। घरा नाभणतो मुसा खेत, वस्तु, हिरण्य, स्वर्ण आदि के लिए झूठ न बोलने वाले की भी गृहस्थी नहीं। घरा नादिन्नदण्डस्स परेस अनिकुब्बतो जिसने दण्ड नहीं लिया, जिसने दण्ड ग्रहण नही किया, जिसने दण्ड रख दिया वैसे दूसरा को न ठगने वाले की भी गृहस्थी नही। जो दण्डधारी होकर दूसरो के दासो तथा नौकर चाकर आदि को उस उस अपराध के लिए अपराध के अनुसार वध करना, बांधना, (अङ्ग-)छेद करना, ताडना आदि करता है उसीकी गृहस्थी ठहरती है। एव छिद्द दुरभिभव को घर पटिपज्जति सो अब इस प्रकार ढाग आदि के न करने पर अनेक हानियाँ होने के कारण छिद्रपूर्ण, करने पर नित्य ही करना पडने के कारण कठिन, मुश्किल से निभने वाली, नित्य करने पर भी दुरभि-सम्भव तथा मुश्किल से पूरा पडने वाले घर को मैं चिन्ता-रहित होकर करूँगा ? (ऐसा बोलकर) गृहस्थी को कौन करे ?

इस प्रकार बोधिसत्व गृहस्थी के दोष कह उद्यान ही चले गए। शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय वाराणसी-सेठ रोजमल्ल था। वन्दनक परिव्राजक तो मैं ही था।

२३६. बक जातक

"भद्दको वतयं पक्खी. . " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए एक ढोगी के बारे मे कही।

उसे लाए जाने पर शास्ता ने देखकर कहा—भिक्षुग्रो, यह न केवल ग्रभी ढोगी है, यह पहले भी ढोगी रहा है। ग्रौर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश के एक तालाब में बडे परिवार सहित मच्छ होकर रहते थे। मच्छो को खाने की इच्छा से एक बगुला तालाब के पास सिर गिरा कर तथा पखो को पसार कर मछलियो की प्रमादावस्था को धीरे धीरे देखता हुग्रा खडा था। उसी समय मच्छो के समूह से घिरे हुए बोधिसत्त्व शिकार पकडते पकडते वहाँ पहुँचे। मच्छो के गण ने उस बगुले को देख पहली गाथा कही—

भद्दको वतय पक्खी द्विजो कुमुदसन्निभो,
वूपसन्तेहि पक्खेहि मन्द ·मन्दोव झायति॥

[कुमुद सदृश यह पक्षी बहुत ग्रच्छा है। शान्त परो से यह शनै. शनै ध्यान करता है।]

मन्दमन्दोव झायति ग्रशक्त की तरह से, कुछ न जानता हुग्रा सा ग्रकेला ही ध्यान करता है।

उसे देख बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

नास्स सीलं विजानाय अनञ्ञाय पससय,
अम्हे द्विजो न पालेति तेन पक्खी न फन्दति ॥

[इसके स्वभाव को नहीं जानते। बिना जाने प्रशंसा करते हो। यह पक्षी हमारी रक्षा नहीं करता। इसीलिए पर नहीं फडफडाता।]

अनञ्ञाय—न जानकर। अम्हे द्विजो न पालेति यह पक्षी हमारी रक्षा नहीं करता, हमें नहीं सँभालता। यह सोचता है कि मैं इनमें से किसे खाऊँगा। तेन पक्खी न फन्दति इसीसे पक्षी न फडफडाता है, न चलता है।

ऐसा कहने पर मच्छों के समूह ने पानी में क्षोभ पैदा करके बगुले को भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बगुला (यह) ढोंगी था। मच्छराज तो मैं ही था।

२३७. साकेत जातक

"को नु खो भगवा हेतु . . ." यह शास्ता ने साकेत के समीप विहार करते समय साकेत ब्राह्मण के बारे में कही।

अतीत कथा और वर्तमान कथा भी एकक निपात (पहले परिच्छेद) की पूर्वोक्त साकेत जातक[1] में आ ही चुकी है। हाँ, तथागत के विहार जाने पर भिक्षुओं ने पूछा—भन्ते ! यह स्नेह कैसे स्थापित हो जाता है ? यह पूछते हुए उन्होंने पहली गाथा कही—

---

[1] साकेत जातक (१.७ ६८)

को नु खो भगवा हेतु एकच्चे इध पुग्गले,
अतीव हृदयं निब्बाति चित्तञ्चापि पसीदति ॥

[भगवान ! इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी के प्रति हृदय अति ठण्डा हो जाता है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।]

अर्थ—इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी को देखते ही हृदय अति ठण्डा हो जाता है, सुगन्धित शीतल जल के हजारो घडो से सींचे हुए की तरह शीतल हो जाता है; किसी के प्रति नही होता ? किसी को देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, कोमल पड जाता है, प्रेम से जुड जाता है, किसीसे नही जुडता ?

शास्ता ने उन्हें प्रेम का कारण बताते हुए दूसरी गाथा कही—

पुब्बेव सन्निवासेन पच्चुप्पन्नहितेन वा,
एवं तं जायते पेमं उप्पलंव यथोदके ॥

[पूर्व जन्म के सम्बन्ध से वा इस जन्म के उपकार से प्रेम पैदा होता है जैसे जल मे कमल।]

भिक्षुओ, प्रेम इन दो कारणो से ही पैदा होता है। पूर्व जन्म में चाहे माता, चाहे पिता, चाहे पुत्री, चाहे पुत्र, चाहे भाई, चाहे बहिन, चाहे पति, चाहे भार्य्या, चाहे सहायक, चाहे मित्र होकर जो कोई जिस किसी के साथ एक स्थान मे रहता है उससे इस **पुब्बेव सन्निवासेन वा** दूसरे जन्म में भी वह स्नेह नही छूटता। इस जन्म मे किए गए **पच्चुप्पन्नहितेन वा एवं तं जायते पेमं।** इन दो कारणो से प्रेम पैदा होता है। जैसे क्या ? **उप्पलंव यथोदके 'व'** का ह्रस्व कर दिया। समुच्चय अर्थ मे ही इस का प्रयोग है। इसलिए उत्पल तथा जल में पैदा होने वाले शेष जितने भी पुष्प हैं वे दो ही कारणो से पैदा होते हैं—जल से और गारे से। उसी प्रकार इन दो ही कारणो से प्रेम पैदा होता है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जन थे। पुत्र तो मैं ही था।

२३८. एकपद जातक

"इङ्घ एकपदं तात . " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कौटुम्बिक के बारे में कही।

क. वर्तमान-कथा

यह कौटुम्बिक श्रावस्ती निवासी था। एक दिन गोद में बैठे हुए पुत्र ने अर्थ का द्वार नामक प्रश्न पूछा। उसने सोचा यह प्रश्न बुद्ध का ही विषय है। इसका उत्तर अन्य कोई नहीं दे सकेगा। वह पुत्र को लेकर जेतवन गया और शास्ता को प्रणाम करके कहा—भन्ते ! इस बालक ने गोद में बैठे बैठे अर्थ का द्वार प्रश्न पूछा है। मैं उसको नहीं जानता था। इसलिए यहाँ आया हूँ। भन्ते ! इस प्रश्न को कहें।

शास्ता ने कहा—"उपासक ! यह बालक केवल अभी अर्थ की खोज करने वाला नहीं है। इसने पहले भी अर्थ-खोजी होकर पण्डितों से यह प्रश्न पूछा है। पुराने पण्डितों ने इसे यह कहा भी है। किन्तु जन्मान्तर को प्राप्त होने से अब इसे उसका ध्यान नहीं।" इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने सेठ के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का स्थान

ग्रहण किया। उसके पुत्र ने जब वह बच्चा ही था गोदी में बैठे बैठे पूछा—तात ! मुझे अनेकार्थ वाला एक कारण, एक बात कहें। यह पूछते हुए उसने यह गाथा कही—

> इङ्घ एकपदं तात अनेकत्थपदनिस्सितं,
> किञ्चि सङ्गाहिकं ब्रूहि येनत्थे साधयामसे ॥

[तात ! अनेक अर्थपदो से युक्त कोई एक सङ्ग्राहक पद कहें, जिससे अर्थ की प्राप्ति हो।]

इङ्घ याचना के या प्रेरणा के अर्थ में निपात है। **एकपदं** एक पद या एक बात से युक्त पद। **अनेकत्थपदनिस्सितं** अनेक अर्थों या बातो से युक्त। **किञ्चि सङ्गाहिकं ब्रूहि** कोई एक बहुत से पदो का सङ्ग्राहक पद कहें। अथवा यही पाठ है। **येनत्थे साधयामसे** जिस अनेकार्थ युक्त एक पद से ही हम अपनी वृद्धि सिद्ध करे, वह हमे कहें—यही पूछता है।

उसके पिता ने कहते हुए दूसरी गाथा कही—

> दक्खेय्येकपदं तात अनेकत्थपदनिस्सितं,
> तञ्च सीलेन संयुत्तं खन्तिया उपपादितं;
> अलं मित्ते सुखापेतुं अमित्तानं दुखाय च ॥

[तात ! दक्षता अनेक अर्थपदो से युक्त एक पद है। वह शील और क्षमा के सहित हो तो मित्रो को सुख तथा शत्रुओ को दुख देने के लिए पर्य्याप्त है।]

दक्खेय्येकपदं दक्षता एक पद है। दक्षता कहते हैं लाभ उत्पन्न करने वाले, हुशियार कुशल आदमी का ज्ञानपूर्ण प्रयत्न (=वीर्य्य)। **अनेकत्थपद निस्सितं** इस प्रकार कहा गया वीर्य्य अनेक अर्थ पदो से युक्त। किनसे ? शीलादि से। इसीलिए **तञ्च सीलेन संयुत्तं** आदि कहा। उसका अर्थ है कि वह वीर्य्य आचारशील तथा सहनशक्ति से युक्त। **मित्ते सुखापेतुं अमित्तानञ्च दुक्खाय अलं**, समर्थ है। कौन है जो लाभ उत्पन्न करने वाले, ज्ञानपर्ण कुशल

वीर्य्य से युक्त हो, आचार-शील तथा क्षमा से युक्त हो और मित्रों को सुख देने तथा शत्रुओं को दुख देने में समर्थ न हो ?

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने पुत्र के प्रश्न का उत्तर दिया। वह भी पिता के कथनानुसार अपनी उन्नति कर यथाकर्म परलोक गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में पिता पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उस समय पुत्र यही था। बाराणसी सेठ तो मैं ही था।

२३९. हरितमात जातक

"आसिविस मम सन्त " यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय अजातशत्रु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशलराज के पिता महाकोशल ने राजा बिम्बिसार को अपनी लड़की देने के समय लड़की का स्नान-मूल्य काशीगाँव दिया। अजातशत्रु द्वारा पिता मार दिए जाने से वह राजा के प्रति स्नेह होने के कारण शीघ्र ही मर गई। माता के मर जाने पर भी अजातशत्रु उस गाँव का उपभोग करता ही था। कोशलराज उससे लड़ता था कि मैं पिता की हत्या करने वाले चोर को अपने कुल का गाँव न दूँगा। कभी मामा विजयी होता, कभी भानजा। जब अजातशत्रु जीतता तब रथ पर ध्वजा बँधवा बड़ी शान के साथ नगर में प्रवेश करता। जब पराजित होता तब दुखी मन से चुपचाप बिना किसी को खबर किए प्रवेश करता।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, अजातशत्रु मामा को हराकर प्रसन्न होता है, हारने पर चिन्तित होता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, केवल अभी नहीं, यह पहले भी जीतने पर प्रसन्न होता था, हारने पर दुखी होता था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व नीले मेण्डक होकर पैदा हुए। उस समय मनुष्यों ने नदी कन्दरा आदि में जहाँ तहाँ मछलियाँ पकडने के लिए जाल[1] फैलाए थे। एक जाल में बहुत सी मछलियाँ दाखिल हुईं। एक जल-सर्प भी मछलियाँ खाता हुआ उसी जाल में फँसा। बहुत सी मछलियों ने इकट्ठे हो उसे खा लहू-लुहान कर दिया। जब उसे कहीं शरण न दिखाई दी तो मृत्यु से भयभीत हो वह जाल से निकल वेदना से बेहोश हो पानी के किनारे जा पडा। नील मेण्डक भी उस समय उछल कर जाल के सिरे पर आ पडा था। सर्प को कोई दूसरा निर्णायक न दिखाई दिया तो उसने उस मेण्डक को वहाँ पडे देख पूछा—'सौम्य नील मेण्डक! क्या तुझे इन मछलियों की यह करतूत अच्छी लगती है?" उसने यह पहली गाथा कही—

आसीविस मम सन्त पविट्ठ कुमिनामुख,
रुच्चते हरितामाता य म खादन्ति मच्छका॥

[हे हरी माता वाले! यह जो जाल में दाखिल होने पर मुझ सर्प को मछलियाँ खाती हैं, क्या यह तुझे अच्छा लगता है?]

आसिविस मम सन्त मुझ सर्प को। रुच्चते हरितामाता य म खादन्ति मच्छका कहता है कि हे हरे मेण्डकपुत क्या यह तुझे अच्छा लगता है?

---

[1] मछलियाँ पकड़ने का बाँस का फंदा।

हरे मेण्डक ने उत्तर दिया—हाँ, मित्र अच्छा लगता है। किस कारण से ? यदि तू अपने प्रदेश मे आने पर मछलियो को खाता है तो मछलियाँ भी तुझे अपने प्रदेश मे आने पर खाती हैं। अपने अपने प्रदेश मे, विषय मे, गोचर भूमि मे कोई कमजोर नही होता। यह कहकर दूसरी गाथा कही—

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति,
यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति सो विलुत्तो विलुम्पति ॥

[जब तक सामर्थ्य होती है आदमी (दूसरो) को लूटता ही है। जब दूसरे लूटते है, तो वह लूटने वाला लुटता है।]

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति जब तक पुरुष का ऐश्वर्य्य रहता है तब तक वह दूसरो को लूटता ही है। **याव सो उपकप्पति** यह भी पाठ है। जितने समय तक वह आदमी लूट सकता है, अर्थ है। **यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति** जब दूसरे ऐश्वर्य्यशाली होकर लूटते है। **सो विलुत्तो विलुम्पति** वह लुटेरा लूटा जाता है। **विलुम्पते** भी पाठ है। अर्थ यही है। **विलुम्पन** भी पढते है। उसका अर्थ ठीक नही बैठता। इस प्रकार लूटने वाला फिर लूटा जाता है।

बोधिसत्त्व के मुकद्दमे का निर्णय देने पर मछलियो ने जल-सर्प की दुर्बलता जान, शत्रु को धर पकडने के लिए जाल से निकल उसे वहीं मार डाला और चली गईं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय जल-सर्प अजातशत्रु था। नील मेण्डक तो मैं ही था।

२४०. महापिङ्गल जातक

"सब्बो जनो · ·" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त के शास्ता के प्रति वैर बांध लेने के नौ महीने बाद जेतवन के द्वार-कोठे पर (उसके) पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर जेतवनवासी तथा सकल नगर के निवासी यह सोच कि बुद्ध के मार्ग का कण्टक देवदत्त पृथ्वी के द्वारा निगल लिया गया और अब सम्यक सम्बुद्ध का शत्रु मर गया बड़े सन्तुष्ट हुए। उनसे परम्परा-घोष[1] से सुनकर सारे जम्बूद्वीपवासी तथा यक्ष भूत और देवगण भी बड़े हर्षित हुए।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त के पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर महा-जन-समूह यह सोचकर कि बुद्ध का विरोधी देवदत्त पृथ्वी द्वारा निगल लिया गया हर्षित हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त के मरने पर जन-समूह हर्षित होता है और प्रसन्न होता है, पहले भी हर्षित हुआ है और प्रसन्न हुआ है।" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में महापिङ्गल नाम का राजा अधर्म से, अनुचित

---

[1] एक से दूसरा और फिर उससे तीसरा सुने।

तौर पर राज्य करता था। छन्द आदि के वशीभूत हो पापकर्म करता हुआ दण्डबलि जङ्घ-कार्षापण आदि ले जनता को ऐसे पीडता था जैसे ऊख-यन्त्र ऊख को। वह रौद्र स्वभाव का था, कठोर था और दुस्साहसी था। उसमें दूसरो के लिए तनिक भी दया नही थी। घर मे स्त्रियो का, लडके लडकियो का, अमात्य ब्राह्मणो का तथा गृहपति आदि का भी अप्रिय था। वह ऐसा था मानो आँख में धूल हो, भात के कौर मे ककर हो अथवा ऐडी को बीध कर काँटा घुस गया हो।

उस समय बोधिसत्त्व महापिङ्गल का पुत्र होकर पैदा हुए। महापिङ्गल चिरकाल तक राज्य करके मर गया। उसके मरने पर सभी वाराणसी वासियो ने हर्षित हो, सन्तुष्ट हो, खूब प्रसन्न हो एक हजार गाडी लकडी से महापिङ्गल को जलाकर अनेक सहस्र घडो से आग बुझाई। फिर बोधिसत्त्व को राज्य पर अभिषिक्त कर 'हमे धार्मिक राजा मिला' सोच (वे) प्रसन्न हो नगर मे उत्सव-भेरी बजवा, ऊँची ध्वजाओ तथा पताकाओ से नगर को अलङ्कृत कर, दरवाजे दरवाजे पर मण्डप बनवा, खील-पुष्प बिखरे सजे हुए मण्डपो मे बैठ कर खाने पीने लगे।

बोधिसत्त्व भी अलङ्कृत महान् तल पर (बिछे) श्रेष्ठ आसन के बीच मे, जिस पर श्वेत छत्र छाया हुआ था बैठे। अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति, राष्ट्रिक तथा द्वारपाल आदि राजा को घर कर खडे थे। एक द्वारपाल थोडी ही दूर पर खडा हो आश्वास-प्रश्वास लेता हुआ रोने लगा। बोधिसत्त्व ने उसे देख पूछा—सौम्य ! मेरे पिता के मरने पर सभी प्रसन्न हो उत्सव मना रहे है। लकिन तू खडा रो रहा है। क्या मेरा पिता तुझे ही प्रिय था ? यह पूछते हुए पहली गाथा कही—

सब्बो जनो हिंसितो पिङ्गलेन
तस्मि मते पच्चय वेदयन्ति,
पियो नु ते आसि अकण्हनेत्तो
कस्मा नु त्व रोदसि द्वारपाल ॥

[पिङ्गल ने सब जना को कष्ट दिया। उसके मरने पर सभी आनन्द का अनुभव करते है। हे द्वारपाल ! क्या वह तेरा ही प्रिय था ? तू क्यो रोता है ?]

हिंसितो नाना प्रकार के दण्ड बलि आदि से पीडा दी। पिङ्गलेन पिङ्गल आँख वाले ने, उसकी दोनो आँखे एकदम पिङ्गल वर्ण की, बिल्ली की आँखो के समान थी। इसीसे उसका नाम पिङ्गल हुआ। पच्चयं वेदयन्ति प्रीति अनुभव करते है। अकण्हनेत्तो पिङ्गल आँख वाला। कस्मा नु त्वं तू किस कारण से रोता है ? अट्ठकथा मे कस्मा तुवं पाठ है।

उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—मैं इस शोक से नही रोता हूँ कि महापिङ्गल मर गया। मेरे सिर को तो सुख हुआ है। पिङ्गल राजा प्रासाद से उतरते हुए और चढ़ते हुए हथौडी से चोट लगाने की तरह मेरे सिर पर आठ आठ टोके लगाता था। वह परलोक जाकर भी जैसे मेरे सिर में टोके लगाता था उसी तरह निरयपालको तथा यमराज के सिर मे भी टोके लगाएगा। 'यह हमें बहुत कष्ट देता है' सोच वह इसे फिर यहाँ लाकर छोड जा सकते है। वह मेरे सिर में फिर टोके मारेगा। मैं इस भय के कारण रोता हूँ। यह अर्थ प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

न मे पियो आसि अकण्हनेत्तो
भायामि पच्चागमनाय तस्स,
इतो गतो हिंसेय्य मच्चुराजं
सो हिंसितो आनेय्य पुन इध ॥

[मुझे पिङ्गल नेत्र प्रिय न था। मुझे डर है कि वह फिर न लौट आए। यहाँ से जाकर वह यमराज को कष्ट दे। और (कही) यमराज कष्ट पाकर उसे फिर यहाँ ले आए ।]

बोधिसत्त्व ने उसे आश्वासन दिया—वह राजा लकडी के हजार भारो से जला दिया गया है। सैकडो घडो से (चिता) बुझा दी गई है। जिस जगह जलाया गया, वह जगह चारो ओर से खन दी गई है। जो परलोक जाते हैं उनका यह स्वभाव है कि वह दूसरी जगह जन्म ग्रहण करते है। फिर उसी शरीर से नही आते हैं। इसलिए तू मत डर।

यह गाथा कही—

दड्ढो वाहसहस्सेहि सित्तो घटसतेहि सो,
परिक्खता च सा भूमि मा भायि नागमिस्सति ॥

[हजार भारो से जला दिया गया है। सैंकडो घडो से (चिता) ठडी कर दी गई है। वह भूमि खन दी गई है। मत डर, वह नही आएगा।]

तब द्वारपाल को सन्तोष हुआ। बोधिसत्त्व धर्म से राज्य करके दान आदि पुण्य कर यथाकर्म (परलोक) गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिङ्गल देवदत्त था। पुत्र तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

१०. सिगाल वर्ग

२४१. सब्बदाठ जातक

"सिगालोमानत्थद्धो. . ." यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अजातशत्रु को प्रसन्न कर देवदत्त ने जो लाभ सत्कार पैदा किया था वह उसे देर तक स्थिर न रख सका। नालागिरि (हाथी) का प्रयोग करने के समय जो आश्चर्य्य देखा गया उस समय से वह लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।

एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त लाभ-सत्कार पैदा करके चिरकाल तक स्थिर न रख सका। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने अपने लाभ-सत्कार को नष्ट किया है, पहले भी नष्ट किया ही है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका पुरोहित था, तीनो वेदो तथा अठारह शिल्पो में पारङ्गत। वह पृथ्वीजय मन्त्र जानता था। पृथ्वीजय मन्त्र आपमन्त्र है।

एक दिन बोधिसत्व उस मन्त्र को सिद्ध करने की इच्छा से एक खुली जगह में एक पत्थर पर बैठकर मन्त्र जाप करने लगा। वह मन्त्र किसी दूसरे

विधिरहित व्यक्ति को नही सुनाया जा सकता था, इसीलिए वह वैसी जगह जाप करने लगा था।

उसके पाठ करने के समय एक गीदड ने एक बिल मे पडे पडे उस मन्त्र को सुनकर अभ्यास कर लिया। वह अपने पूर्व-जन्म मे पृथ्वीजय मन्त्र का अभ्यासी एक ब्राह्मण था। बोधिसत्त्व ने पाठ कर चुकने पर कहा—मुझे इस मन्त्र का अभ्यास हो गया। गीदड ने बिल से निकल कर कहा—भो ब्राह्मण ! मुझे इस मन्त्र का तुझ से भी अधिक अभ्यास है। इतना कहकर वह भाग गया।

बोधिसत्त्व ने यह सोच कि यह गीदड बहुत खराबी करेगा 'पकडो पकडो' कहते हुए उसका पीछा किया। गीदड भागकर जगल मे जा घुसा। वहाँ जाकर उसने एक गीदडी के शरीर मे थोडा सा बुडका भरा। वह बोली—स्वामी ! क्या है ? 'मुझे पहचानती है या नही ?' उसने कहा—स्वामी ! पहचानती हूँ।

उसने पृथ्वीजय मन्त्र का जाप कर सैकडो गीदडो को आज्ञा दे सब हाथी, अश्व, सिंह, व्याघ्र, सूअर, मृग आदि चौपायो को अपने पास बुलाया। सब को अपने अधीन कर स्वय सब्बदाठ नामक राजा बन एक गीदडी को पटरानी बनाया। दो हाथियो की पीठ पर सिंह बैठता। सिंह की पीठ पर पटरानी सहित सब्बदाठ राजा बैठता। बडी शान थी।

वह ऐश्वर्य्य-मद में चूर हो, अभिमान के मारे वाराणसी राज्य जीतने की इच्छा से सब चौपायो को ले वाराणसी से कुछ ही दूर पर आ पहुँचा। बारह योजन की परिषद थी। उसने कुछ ही दूर से ही राजा के पास सन्देश भेजा—राज्य दे अथवा युद्ध करे। वाराणसी निवासियो ने भयभीत हो डर के मारे नगर के द्वार बन्द कर लिए।

बोधिसत्त्व ने राजा के पास आकर कहा—महाराज ! मत डरें। सब्ब-दाठ गीदड के साथ युद्ध करने की जिम्मेवारी मेरी है। मेरे अतिरिक्त और कोई उससे युद्ध नही कर सकता। उसने राजा तथा नगर वासियो को आश्वासन दे सब्बदाठ क्या करके राज्य जीतेगा पूछने की इच्छा से नगर-द्वार की अट्टालिका पर चढकर पूछा—सब्बदाठ ! क्या करके इस राज्य को लेगा ?

"सिंहनाद कराकर, जनसमूह को शब्द से भयभीत कर राज्य लूँगा।"

बोधिसत्व ने "यह है" जान अट्टालिका पर चढ मुनादी करवा दी कि सारी बारह योजन वाराणसी के नगर निवासी अपने अपने कानो के छिद्रो को माष (की दाल) के आटे से लीप लें। जनता ने मुनादी सुन बिल्लियो से लेकर सभी जानवरो के तथा अपने कानो के छिद्र माष के आटे से इस प्रकार लीप लिए कि दूसरे का शब्द न सुन सके।

बोधिसत्व ने फिर अट्टालिका पर चढकर पुकारा—

"सब्बदाठ!"

"ब्राह्मण! क्या है।"

"इस राज्य को कैसे ग्रहण करेगा।"

"सिंहनाद करवा कर, मनुष्यो को डरा कर, जान मरवा कर ग्रहण करूँगा।"

"सिंहनाद नही करवा सकेगा। जाति-सम्पन्न, लाल हाथ पाँव वाले, केशर सिंह राज तेरे जैसे नीच गीदड की आज्ञा नही मानेंगे।"

गीदड ने अभिमान से चूर हो कहा—दूसरे सिंह रहें। जिस सिंह की पीठ पर मैं बैठा हूँ उसीसे सिंहनाद करवाऊँगा।

"यदि सामर्थ्य है तो सिंहनाद करवा।"

जिस सिंह पर बैठा था उसने उसे पाँव से इशारा किया कि सिंहनाद कर। सिंह ने हाथी के सिर पर मुँह रख तीन बार ऐसा सिंहनाद किया, जैसा कोई न कर सके। हाथियो ने डरकर गीदड को पैरो मे गिरा पाँव से उसके सिर को कुचल चूर्ण विचूर्ण कर दिया। सब्बदाठ वही मर गया। वे हाथी भी सिंहनाद सुनकर भय के मारे एक दूसरे से भिडकर वही मर गए। सिंहो को छोड कर शेष जितने भी खरगोश और बिल्ला से लेकर मृग सूअर आदि ये सभी जानवर वही मर गए। सिंह भाग कर अरण्य मे चले गए। बारह योजन में मास का ढेर लग गया।

बोधिसत्व ने अटारी से उतर नगर द्वारो को खोल मुनादी करा दी कि सभी अपने कानो में से माष के आटे को निकाल दें और जिन्हे मास की जरूरत हो मास ले जाएँ। मनुष्यो ने गीला मास खाया और बाकी को सुखा कर वल्लूर[1] बना लिया। कहते है उसी समय से मास सुखाना आरम्भ हुआ।

---

[1] वल्लूर=सूखा मांस।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला यह अभिसम्बुद्ध गाथाएँ कह जातक का मेल बैठाया—

सिगालो मानत्थद्धोव परिवारेन अत्थिको,
पापुणी महर्ति भूमिं राजासि सब्बदाठिनं ॥
एवमेवं मनुस्सेसु यो होति परिवारवा,
सो हि तत्थ महा होति सिगालो विय दाठिनं ॥

[गीदड़ अभिमान मे चूर था। उसे और भी "परिवार" चाहिए था। वह महान् पद को प्राप्त हो गया—सभी चौपायो का राजा हो गया। इसी प्रकार मनुष्यो मे भी जिसका "परिवार" बडा होता है वह भी महान् हो जाता है जैसे गीदड जानवरो मे।]

मानत्थद्धो अनुचरो के कारण उत्पन्न अभिमान से चूर। **परिवारेन अत्थिको** और भी "परिवार" की इच्छा वाला होकर। **महर्ति भूमिं** महा-सम्पत्ति को। **राजासि सब्बदाठिनं** सब चौपायो का राजा था। **सो हि तत्थ महा होति** जो परिवार युक्त आदमी है वह उन परिवारो में महान् होता है। **सिगालो विय दाठिनं** जैसे गीदड चौपायो मे महान् हुआ उसी प्रकार महान् होता है। वह उस गीदड की तरह प्रमाद के कारण विनाश को प्राप्त होता है।

उस समय गीदड देवदत्त था। राजा सारिपुत्र था। पुरोहित तो मैं ही था।

२४२. सुनख जातक

"**बालो वतायं सुनखो** . " यह शास्ता ने जेतवन म विहार करते समय अम्बल-कोष्ठक आसनशाला में भात खाने वाले कुत्ते के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके जन्म के समय से ही कहारों ने उसे वहाँ पोसा था। वह वहाँ भात खाता हुआ आगे चलकर मोटा गया। एक दिन एक ग्रामवासी वहाँ आया। उसने कुत्ते को देखा और कहारों को चादर तथा कार्षापण दे कुत्ते को चमड़े के पट्टे से बाँध कर ले गया। वह ले जाने के समय भौंका नहीं। जो जो दिया गया खाता हुआ पीछे पीछे गया।

तब उस आदमी ने सोचा कि अब यह मुझसे प्रेम करता है और पट्टा खोल दिया। वह छूटते ही एक दौड़ में आसनशाला आकर पहुँचा। भिक्षुओं ने उसे देख और उसका किया जान शाम को धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! आसनशाला का कुत्ता बन्धन से मुक्त होने में चतुर है। छूटते ही फिर आ गया है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, वह कुत्ता केवल अभी बन्धन से मुक्त होने में चतुर नहीं है, पहले भी चतुर ही था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी राष्ट्र के एक बड़े सम्पन्न घराने में पैदा हुए। बड़े होने पर गृहस्थी बसाई।

उस समय बाराणसी में एक आदमी के पास एक कुत्ता था। वह भात के कौर खा खाकर मोटा गया। एक ग्रामवासी बाराणसी आया। उस कुत्ते को देख, उस आदमी को चादर और कार्षापण दे, कुत्ते को चमड़े की डोरी से बाँध डोरी के एक सिरे को पकड़ कर ले चला। चलते चलते जंगल के द्वार पर एक शाला में दाखिल हो कुत्ते को बाँध एक तख्ते पर लेट कर सो गया। उस समय बोधिसत्त्व ने किसी काम से उस जंगल में प्रवेश होते वक्त उस कुत्ते को चमड़े की डोरी से बँधे बैठे देख पहली गाथा कही—

बालो वतायं सुनखो यो वरत्तं न खादति,
बन्धना च पमुञ्चेय्य असितो च घरं वजे॥

[यह कुत्ता मूर्ख है जो चमड़े की डोरी को नहीं खाता है। (यदि खा डाले) तो बन्धन से छूट जाए और भरे पेट ही घर चला जाए।]

पमुञ्चेय्य मुरा करे; अथवा पमोच्चेय्य ही पाठ है। असितो च घरं वजे भरे पेट ही अपने निवास-स्थान पर चला जाए।

उसे सुन कुत्ते ने दूसरी गाथा कही—

अट्ठितं मे मनस्मिं मे अथो मे हदये कतं,
कालञ्च पतिकङ्खामि याव पस्सुपतु जनो ॥

[यह मेरा अधिष्ठान था, यह मेरे मन में था; और यह (तुम्हारा) कहना भी हृदय में रख लिया। मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जबकि लोग सो जाएँ।]

अट्ठितं मे मनस्मि मे जो तुम कहते हो यह पहले से मेरा सकल्प है, वह मेरे मन ही में है। अथो मे हदये कतं तुम्हारा वचन भी मैंने हृदय में कर लिया है। कालञ्च पतिकङ्खामि समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। याव पस्सुपतु जनो जब तक यह लोग सो जाते हैं, इन्हें नींद आ जाती है, तब तक मैं समय की प्रतीक्षा करता हूँ। नहीं तो हल्ला हो जाएगा कि यह कुत्ता भाग रहा है। इसलिए रात को जब सब सो जाएँगे चमड़े की डोरी खाकर भाग जाऊँगा।

यह कहकर वह लोगों के सो जाने पर चमड़े की डोरी खा, पेट भर कर, भागा और अपने स्वामी के ही घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुत्ता इस समय का कुत्ता है। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

२४३. गुत्तिल जातक

"सत्ततन्ति सुमधुरं..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं ने देवदत्त से पूछा—आयुष्मान् देवदत्त! सम्यक् सम्बुद्ध तेरे आचार्य्य हैं। तूने सम्यक् सम्बुद्ध के कारण तीनों पिटक सीखे, चारों ध्यान प्राप्त किए, अब आचार्य्य का विरोधी बनना उचित नहीं। देवदत्त ने आचार्य्य का प्रत्याख्यान करते हुए कहा—आयुष्मान श्रमण गौतम मेरे कैसे आचार्य्य हैं? क्या मैंने अपनी सामर्थ्य से ही तीनों पिटक नहीं सीखे हैं तथा चारों ध्यान नहीं प्राप्त किए हैं?

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त अपने आचार्य्य का प्रत्याख्यान कर सम्यक् सम्बुद्ध का विरोधी बन महाविनाश को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त आचार्य्य का प्रत्याख्यान कर मेरा शत्रु बन नष्ट होता है, पहले भी विनष्ट हुआ ही है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य-करने के समय बोधिसत्व गन्धर्व कुल में पैदा हुआ। उसका नाम हुआ गुत्तिल कुमार। वह बड़े होने पर गन्धर्व-शिल्प में ऐसा पारङ्गत हुआ कि सारे जम्बूद्वीप में गुत्तिल गन्धर्व ही सब गन्धर्वों से बढ़ गया। वह स्त्री का पालन न कर अपने अन्धे मातापित का पालन करता था।

उस समय वाराणसी निवासी बनियो ने व्यापार के लिए उज्जेनि जाकर उत्सव घोषित होने पर चन्दा करके बहुत सा माला गन्ध विलेपन आदि तथा खाद्य भोज्य ले क्रीडा-स्थान पर इक्ट्ठे हो कहा—कि वेतन देकर एक गन्धर्व को लाओ। उस समय उज्जेनि में मूसिल नामक ज्येष्ठ गन्धर्व था। उन्होंने उसे बुलवाकर अपना गन्धर्व बनाया।

मूसिल वीणा भी बजाता था। उसने वीणा को स्वर चढ़ा कर बजाया। गुत्तिल गन्धर्व के गन्धर्व से परिचित उन लोगो को मूसिल का बजाना चटाई खुजलाने जैसा प्रतीत हुआ। कोई भी कुछ न बोला। उन्होंने अपनी प्रसन्नता न प्रकट की। मूसिल ने उनकी प्रसन्नता न देखी तो सोचा—मालूम होता है मैं बहुत तीखा बजाता हूँ। उसने मध्यम स्वर चढा मध्यम स्वर से बजाया। वे तब भी उपेक्षावान् ही रहे। उसने सोचा—मालूम होता है यह कुछ नही जानते। स्वय भी कुछ न जानने वाला बन उसने वीणा के तारो को ढीला कर बजाया। उन्होंने तब भी कुछ न कहा।

मूसिल बोला—भो व्यापारियो! क्या आप लोग मेरे वीणा-वादन से प्रसन्न नही होते?

"क्या तू वीणा बजाता था? हम तो समझते रहे कि तू वीणा को कस रहा है।"

"क्या तुम मुझसे बढकर आचार्य्य को जानते हो? अथवा अपने अज्ञान के कारण प्रसन्न नही होते हो?"

"वाराणसी मे जिन्होंने गुत्तिल गन्धर्व का वीणा-वादन सुना है उन्हें तुम्हारा वीणा बजाना ऐसा ही लगता है जैसे स्त्रियाँ बच्चो को सन्तुष्ट कर रही हो।"

"अच्छा, तो आपने जो खर्चा दिया है उसे वापिस ले। मुझे यह नही चाहिए। लेकिन हाँ, वाराणसी जाते समय मुझे साथ लेकर जाएँ।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। जाते समय उसे साथ वाराणसी ले गए। वहाँ 'यह गुत्तिल का निवासस्थान है' बताकर अपने अपने घर चले गए।

मूसिल ने बोधिसत्त्व के घर म प्रवेश कर वहाँ टँगी हुई बोधिसत्त्व की बहुत ही अच्छी वीणा देख उतारकर बजाई। बोधिसत्त्व के माता पिता

ग्रन्धे होने के कारण उसे न देख सके। वे समझे चूहे वीणा खा रहे हैं। इसलिए उन्होने कहा—सू सू चूहे वीणा खा रहे हैं।

उस समय मूसिल ने वीणा रखकर बोधिसत्त्व के माता पिता को प्रणाम किया। उन्होने पूछा—कहाँ से आया ?

"उज्जेनी से आचार्य्य के पास शिल्प सीखने आया हूँ।"

"अच्छा।"

"आचार्य्य कहाँ हैं ?"

"तात ! बाहर गया है। आज आ जाएगा।"

यह सुन मूसिल वहीं बैठ गया। बोधिसत्त्व के आने पर, उसके द्वारा कुशल समाचार पूछे जा चुकने पर उसने अपने आने का कारण कहा। बोधिसत्त्व अङ्गविद्या के जानकार थे। वे जान गए कि यह सत्पुरुष नहीं है। उन्होने अस्वीकार किया—तात ! जा तेरे लिए शिल्प नहीं है।

मूसिल ने बोधिसत्त्व के माता पिता के चरण पकडे। उन्हे अपनी सेवा से सन्तुष्ट कर उसने उनसे याचना की कि मुझे शिल्प सिखलवा दें। बोधिसत्त्व ने माता पिता के बारबार कहने पर उनकी आज्ञा का उल्लघन न कर सकने के कारण उसे शिल्प सिखा दिया।

वह बोधिसत्त्व के साथ राजदरबार जाता। राजा ने उसे देखकर पूछा—आचार्य्य ! यह कौन है ?

"महाराज ! मेरा शिष्य है।"

वह शनै शनै राजा का विश्वासी हो गया। बोधिसत्त्व ने बिना कुछ छिपाए अपना जाना सारा शिल्प सिखाकर कहा—तात ! शिल्प समाप्त हो गया। उसने सोचा—मैंने शिल्प सीख लिया। यह वाराणसी नगर सारे जम्बूद्वीप म श्रेष्ठ नगर है। और आचार्य्य भी बूढ़े हो गए हैं। मुझे यहीं रहना चाहिए। उसने आचार्य्य से कहा—आचार्य्य ! मैं राजा की सेवा करूँगा। आचार्य्य बोला—अच्छा तात ! मैं राजा से कहूँगा। उसने राजा से जाकर कहा—"महाराज ! हमारा शिष्य देव की सेवा मे रहना चाहता है। उसको जो देना हो, जानें।"

राजा बोला—'आपको जितना मिलता है, आपके शिष्य को उसका आधा मिलेगा।' उसने मूसिल को वह बात कही। मूसिल बोला—"मुझे

"आचार्य ! जगल में क्यो दाखिल हुए हो ?"

"तू कौन है ?"

"मैं शक्र हूँ।"

बोधिसत्त्व ने उसे 'देवराज ! मैं शिष्य के भय से जगल में दाखिल हुआ हूँ' यह पहली गाथा कही—

सत्ततन्ति सुमधुर रामणेय्य अवाचयि,
सो म रङ्गम्हि अव्हेति सरणम्मे होहि कोसिय ॥

अर्थ—हे देवराज ! मैंने मूसिल नाम के शिष्य को सात तारो वाली सुमधुर रमणीक वीणा जितनी मैं जानता था उतनी सिखाई। अब वह मुझे रङ्गमच पर ललकारता है। हे कोसिय गोत्र (इन्द्र) ! तू मुझे शरण में ले।

शक्र उसकी बात सुन बोला—डरे मत। मैं तुम्हारा त्राण करूँगा। मैं तुम्हें शरण दूँगा। यह कह उसने दूसरी गाथा कही—

अह त सरण सम्म अहमाचरियपूजको,
न त जयिस्सति सिस्सो सिस्समाचरिय जेस्सति ॥

[सौम्य ! मैं तेरा शरणदाता हूँ। मैं आचार्य की पूजा करने वाला हूँ। शिष्य तुझे नही जीतेगा। आचार्य्य ही शिष्य को जीतेगा।]

अह त सरण मैं शरण (-दाता हूँ), सहायक होकर, प्रतिष्ठा देकर त्राण करूँगा। सम्म प्रिय वचन है। सिस्समाचरिय जेस्सति आचार्य्य ! तू वीणा बजाता हुआ शिष्य को जीतेगा।

शक्र ने और भी कहा—"तुम वीणा बजाते हुए एक तार तोडकर छ बजाना। वीणा से स्वाभाविक स्वर निकलेगा। मूसिल भी तार तोड देगा। उसकी वीणा से स्वर न निकलेगा। उसी क्षण पराजित हो जाएगा। उसका पराजित होना जान दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवी, छठी और सातवी तार भी तोड कर केवल वीणा-दण्ड ही बजाना। तार रहित खूँटियो से स्वर निकल कर सारी बारह योजन की वाराणसी नगरी को ढक लेगा।' इतना कहकर

शक्र ने बोधिसत्त्व को तीन गोटियाँ दी और कहा—"सारे नगर पर वीणा शब्द के छा जाने पर इनमें से एक गोटी आकाश में फेंकना। तुम्हारे सामने तीनसौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगेंगी। उनके नाचने के समय दूसरी फेंकना। दूसरी तीन सौ उतर कर वीणा के सिरे पर नाचने लगेंगी। तब तीसरी भी फेंकना। और तीन सौ उतर कर रङ्गमण्डप में नाचेंगी। मैं भी तुम्हारे पास आऊँगा। जाएँ। डरे मत।"

बोधिसत्त्व पूर्वाण्ह् समय घर गए। राजदरबार में भी मण्डप बनाकर राजासन तैयार कर दिया गया। राजा प्रासाद से उतर सजे मण्डप में आसन के बीच में बैठा। दस हजार अलङ्कृत स्त्रियो तथा अमात्य ब्राह्मण राष्ट्रिक आदि ने राजा को घेर लिया। सभी नगरवासी इकट्ठे हो गए। राजाङ्गण में चक्रो के साथ चक्के तथा मञ्चो के साथ मञ्च बँध गए। बोधिसत्त्व भी स्नान करके, लेप कर, नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा वीणा ले, अपने लिए बिछे आसन पर बैठे। शक्र गुप्त रूप से आकाश मे आकर ठहरा। केवल बोधिसत्त्व ही उसे देख सकते थे। मूसिल भी आकर अपने आसन पर बैठा। जनता घेर कर खडी हुई। आरम्भ में दोनो ने बराबर बराबर बजाया। जनता ने दोनों के बजाने से सन्तुष्ट हो हजारो हर्ष-नाद किए।

शक्र ने आकाश में ठहर कर बोधिसत्त्व को ही सुनाते हुए कहा—एक तार तोड दें। बोधिसत्त्व ने भ्रमर-तार तोड दी। वह टूटने पर भी टूटे हुए सिरे से स्वर देती थी। देवगन्धर्व का सा स्वर निकलता था। मूसिल ने भी तार तोड दी। उसमें से स्वर न निकला। आचार्य्य ने दूसरी—तीसरी करके सातो तारें तोड दीं। केवल दण्डे को बजाने से जो स्वर निकला उसने सारे नगर को छा लिया। हजारो वस्त्र फेंके गए तथा हजारों हर्षनाद हुए। बोधिसत्त्व ने एक गोटी आकाश में फेंकी। तीन सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगीं। इस प्रकार दूसरी और तीसरी गोटी के फेंकने पर जैसे कहा गया उसी तरह नौ सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगीं।

उस समय राजा ने जनता को इशारा किया। जनता ने उठकर 'तू आचार्य्य से विरोध कर उसकी बराबरी का प्रयत्न करता है। अपनी सामर्थ्य नहीं देखता' कहते हुए मूसिल को डरा, जो जो हाथ में आया पत्थर डण्डे आदि से चूर चूर कर, जान मार पैरो से पकड कूडे के ढेर पर फेंक दिया। राजा

ने सन्तुष्ट हो घनी वर्षा बरसाते हुए की तरह बोधिसत्त्व को बहुत धन दिया। नगरवासियों ने भी वैसे ही किया।

शक्र ने भी उससे विदा लेते हुए कहा—"पण्डित ! मैं सहस्र घोड़ों वाले आजानीय रथ के साथ मातली को भेजूंगा। तू सहस्र घोड़ों वाले श्रेष्ठ वैजयन्त रथ पर चढ़कर देवलोक आना।" उसके वहाँ जाकर पाण्डुकम्बलशिलातल पर बैठने पर देवकन्याओं ने पूछा—महाराज ! कहाँ गए थे? शक्र ने उनको वह बात विस्तार से बताई और बोधिसत्त्व के सदाचार तथा प्रज्ञा की प्रशंसा की। देवकन्याएँ बोलीं—महाराज ! हम आचार्य्य को देखना चाहती हैं। उसे यहाँ लाएँ।

शक्र ने मातली को बुला कर कहा—तात ! देवप्सराएँ गुत्तिल गन्धर्व को देखना चाहती हैं। जा उसे वैजयन्त रथ में बिठाकर ला। उसने 'अच्छा' कहा और जाकर बोधिसत्त्व को ले आया। शक्र ने बोधिसत्त्व का कुशल क्षेम पूछ कहा—आचार्य्य ! देवकन्याएँ तुम्हारा गन्धर्व सुनना चाहती हैं।

"महाराज ! हम गन्धर्व लोग शिल्प से ही जीविका चलाते हैं। मूल्य मिले तो गाऊँगा।"

"बजाएँ। मैं तुम्हे मूल्य दूंगा।"

"मुझे और मूल्य की जरूरत नहीं। यह देवकन्याएँ अपना अपना सुकृत कहें। ऐसा होने से मैं बजाऊँगा।"

देवकन्याएँ बोलीं—"आचार्य्य ! हम अपने किए सुकृत पीछे सन्तुष्ट होकर कहेंगी। गन्धर्व करें।"

बोधिसत्त्व ने सप्ताह पर्य्यन्त देवताओं को गन्धर्व सुनाया। वह दिव्य-वाद्य से भी बढ गया। सातवें दिन आरम्भ से देवकन्याओं का सुकृत पूछा।

काश्यप बुद्ध के समय एक भिक्षु को उत्तम वस्त्र देकर शक्र की परिचारिका होकर उत्पन्न हुई, हजारों अप्सराओं से घिरी एक उत्तम देवकन्या से पूछा—तू पूर्व जन्म में क्या कर्म करके (यहाँ) उत्पन्न हुई ?

उससे पूछा गया प्रश्न तथा उसका उत्तर विमानवत्थु[1] में आया है। वहाँ कहा है—

---

[1]खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

"अभिक्कन्तेन वण्णेन या त्वं तिट्ठसि देवते,
ओभासेन्ती दिसा सब्बा ओसधी विय तारका ॥
केन ते तादिसो वण्णो केन ते इध मिज्झति,
उप्पज्जन्ति च ते भोगा ये केचि मनसो पिया ॥
पुच्छामि तं देवि महानुभावे
मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं,
केनासि एवं जलितानुभावा
वण्णो च ते सब्बदिसा पभासति ॥"

[हे देवते ! यह जो तेरा कान्तिपूर्ण वर्ण है, यह जो सारी दिशाएँ इस प्रकार प्रकाशित है जैसे औषधी तारा हो, सो यह तेरा ऐसा वर्ण किस कारण से है ? तू किस कारण से यहाँ ऋद्धिमान् है ? जो भोग तुझे प्यारे लगते हों, वह किस कारण से प्राप्त होते है ? हे महानुभाव देवि ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि मनुष्य योनि मे तूने क्या पुण्य कर्म किया ? किस कर्म के प्रभाव से तू प्रज्वलित अनुभाव की है ? और तेरा वर्ण सब दिशाओं को प्रकाशित करता है ।]

"वत्थुत्तमदायिका नारी पवरा होति नरेसु नारिसु,
एवं पियरूपदायिका मनापं दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं ॥
तस्सा मे पस्स विमानं अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि,
अच्छरासहस्साहं पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं ॥
तेन मेतादिसो वण्णो तेन मे इध मिज्झति,
उप्पज्जन्ति च मे भोगा ये केचि मनसो पिया,
तेनम्हि एवं जलितानुभावा
वण्णो च मे सब्बदिसा पभासति ॥

[उत्तम वस्त्र देने वाली नारी नरो मे और नारियों मे श्रेष्ठ होती है। इस प्रकार प्रिय रूप देने वाली वह (नारी) मनचर सुन्दर दिव्य स्थान को प्राप्त करती है। मेरे विमान को देखो। मैं इच्छित रूप धारण करने वाली अप्सरा हूँ। मैं हजार अप्सराओं मे श्रेष्ठ हूँ। यह पुण्य का फल है, देखो। इसीसे मेरा ऐसा वर्ण है। इसीसे मैं ऋद्धिमान् हूँ। इसीसे मन को जो प्यारे लगते हैं ऐसे भोग मुझे प्राप्त होते है। उसीसे मैं प्रज्वलित अनुभाव वाली हूँ। उसीसे मेरा वर्ण सब दिशाओं को प्रकाशित करता है।]

दूसरी ने भिक्षा मांगते हुए भिक्षु को पूजने के लिए पुष्प दिए। दूसरी ने चैत्य मे पञ्चङ्गुलि चिन्ह लगाने के लिए सुगन्धि दी। दूसरी ने मधुर फलमूल दिए। दूसरी ने उत्तम रस दिया। दूसरी ने काश्यप बुद्ध के चैत्य पर सुगन्धित पञ्चङ्गुलि-चिन्ह लगाया। दूसरी ने रास्ते चलते भिक्षुओं तथा भिक्षुणियो के घर मे वास ग्रहण करने पर धर्म सुना। दूसरी ने नौका मे बैठ भोजन किए भिक्षु को पानी मे खडे हो पानी दिया। दूसरी ने गृहस्थ में रह क्रोधरहित चित्त से सास ससुर की सेवा की। दूसरी ने अपने को मिले हिस्से में से भी बाँट कर ही खाया और शीलवान् रही। दूसरी ने पराए घर मे दासी होकर क्रोध रहित मान रहित रह अपने हिस्से को बाँट कर खाया। इसीसे वह देवराज की परिचारिका होकर पैदा हुई।

इस प्रकार गुत्तिलविमानवत्थु में आई सैंतीस देवकन्याओं ने जो जो कर्म करके वहाँ जन्म ग्रहण किया वह सब बोधिसत्त्व ने पूछा। उन सब ने भी अपना कर्म गाथाओं में ही कहा। यह सुन बोधिसत्त्व ने कहा—"मुझे बडा लाभ हुआ। मुझे बडी प्राप्ति हुई। मैंने यह जो यहाँ आकर अल्पमात्र कर्म से भी प्राप्त सम्पत्तियो की बात सुनी। अब यहाँ से मैं मनुष्यलोक जाकर दानादि कुशल कर्म ही करूँगा।" यह वह उसने यह हर्ष वाक्य कहा—

स्वागतं वत मे अज्ज सुप्पभातं सुवुट्ठितं,
यं अद्दसामि देवतायो अच्छरा कामवण्णियो ॥
इमासाहं धम्मं सुत्वान काहामि कुसलं बहुं,
दानेन समचरियाय सञ्ञमेन दमेन च;
सोहं तत्थ गमिस्सामि यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥

[आज मेरा आना शुभ है। आज का प्रभात शुभ है। आज का उठना शुभ है। आज मैंने इच्छित रूप धारण कर सकने वाली अप्सरा देवियो को देख लिया। इनसे धर्म सुनकर मैं बहुत कुशल कर्म करूँगा। दान से, समचर्या से तथा संयम के प्रताप से मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ जाकर आदमी सोचता नहीं है।]

सप्ताह के बाद देवराज ने मातली सारथी को आज्ञा दे बोधिसत्त्व को रथ पर बिठा बाराणसी ही भेज दिया। उसने बाराणसी पहुँच देवलोक में जो देखा था वह मनुष्यो को बताया। उस समय से मनुष्यों ने उत्साहपूर्वक पुण्य-कर्म करना स्वीकार किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मूसिल देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। राजा आनन्द था। गुत्तिल गन्धर्व तो मैं ही था।

२४४. वीतिच्छ जातक

"यं पस्सति न तं इच्छति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक पलासिक परिव्राजक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसे सारे जम्बूद्वीप मे कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। उसने श्रावस्ती पहुँचकर पूछा—मेरे साथ कौन शास्त्रार्थ कर सकता है? उत्तर मिला—सम्यक् सम्बुद्ध। उसने बहुत से आदमियो के साथ जेतवन पहुँच कर चारो प्रकार की परिषद को धर्मोपदेश देते हुए तथागत से प्रश्न पूछा। शास्ता ने उसके प्रश्न का उत्तर दे उससे प्रश्न पूछा—एक (चीज) क्या है? वह उत्तर न दे सकने के कारण उठकर भाग गया। बैठी हुई परिषद बोली—भन्ते! एक ही शब्द से परिव्राजक को हरा दिया। शास्ता ने कहा—"उपासको! न केवल अभी मैंने उसको एक ही पद से हराया है, पहले भी हराया है।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी राष्ट्र मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुआ। बडे होने पर कामभोगो को छोड ऋषियो के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो दीर्घकाल तक हिमालय मे रहा। वह पर्वत से उतर एक निगम-ग्राम के पास गङ्गा के मोड पर पर्णशाला में रहने लगा।

एक परिव्राजक को सारे जम्बूद्वीप में शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। उसने उस निगम में पहुँच पूछा—मेरे साथ शास्त्रार्थ कर सकने वाला कोई है? पता लगा—है। वह बोधिसत्त्व की प्रशंसा सुन अनेक आदमियों के साथ उसके निवासस्थान पर पहुँच, कुशल क्षेम पूछ कर बैठा। बोधिसत्त्व ने पूछा—वनगन्ध से सुगन्धित गङ्गाजल पीएगा? परिव्राजक ने शास्त्रार्थ आरम्भ करते हुए कहा—कौनसी गङ्गा? वालू गङ्गा है? जल गङ्गा है? इधर का किनारा गङ्गा है? अथवा उधर का किनारा गङ्गा है? बोधिसत्त्व ने उसे उत्तर दिया—परिव्राजक! उदक, वालू, इधर के किनारे और उधर के किनारे के अतिरिक्त और गङ्गा कहाँ है? परिव्राजक को कुछ उत्तर न सूझा। वह उठकर भाग गया। उसके भाग जाने पर बोधिसत्त्व ने बैठे हुए लोगों को उपदेश देते हुए यह गाथाएँ कही—

> य पस्सति न त इच्छति
> यञ्च न पस्सति त किर इच्छति,
> मञ्ञामि चिर चरिस्सति
> न हि त लच्छति य सो इच्छति ॥१॥
> य लभति न तेन तुस्सति
> य पत्थेति लद्ध हीळेति,
> इच्छा हि अनन्तगोचरा
> वीतिच्छान नमो करोमसे ॥२॥

[जिसे देखता है उसकी इच्छा नहीं करता, जिसे नहीं देखता है उसकी इच्छा करता है। मैं समझता हूँ कि यह चिरकाल तक भटकेगा। जिसकी इच्छा करता है वह इसे नहीं मिलेगा ॥१॥ जो मिलता है उससे सन्तुष्ट नहीं होता। जिसकी इच्छा करता है वह मिलने पर उसका अनादर करता है। इच्छा की गति अनन्त है। जो वीतिच्छा हैं, उन्हें हम नमस्कार करते हैं ॥२॥]

य पस्सति जिस उदक आदि को देखता है, उसे गङ्गा नहीं मानता है। **यञ्च न पस्सति** जिस उदक आदि से रहित गङ्गा को नहीं देखता उसकी इच्छा करता है। **मञ्ञामि चिर चरिस्सति** मैं ऐसा मानता हूँ कि यह परिव्राजक इस प्रकार की गङ्गा को खोजते हुए चिरकाल तक भटकेगा, अथवा

जैसे उदक आदि से रहित गङ्गा को उसी तरह रूप आदि से रहित आत्मा को भी खोजते हुए ससार मे चिरकाल तक भटकेगा। न हि तं लच्छति चिरकाल तक विचरते हुए भी वह जो इस प्रकार की गङ्गा वा आत्मा की इच्छा करता है उसे न प्राप्त कर सकेगा।

य लभति जो उदक वा रूप आदि मिलता है उससे सन्तुष्ट नही होता। **यं पत्थेति लद्धं हीळेति** इस प्रकार प्राप्त से असन्तुष्ट हो जिस जिस सम्पत्ति को प्राप्त करता है, उस उस को प्राप्त करके 'इससे क्या' कहकर उसका अनादर करता है, उसकी अवमानना करता है। **इच्छा हि अनन्तगोचरा** जो जो प्राप्त हो उसका अनादर कर दूसरी दूसरी चीज की इच्छा करने के कारण यह इच्छा, यह तृष्णा अनन्त गति वाली है। **वीतिच्छान नमो करोमसे** इसलिए जो इच्छा रहित बुद्ध आदि है उनको हम नमस्कार करते है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का परिव्राजक ही इस समय का परिव्राजक है। तपस्वी तो मै ही था।

२४५. मूलपरियाय जातक

"कालो घसति भूतानि ..." यह शास्ता ने उक्कट्ठा के पास सुभगवन में विहार करते हुए **मूलपरियाय सुत्त**[1] के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय तीन वेदो में पारङ्गत पाँच सौ ब्राह्मणो ने (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो तीनो पिटक सीख कर अभिमान में चूर हो सोचा—सम्यक् सम्बुद्ध

---

[1] **मज्झिम निकाय का प्रथम सुत्त।**

भी तीन पिटक ही जानते हैं। हम भी जानते हैं। तब हमारा उनका क्या अन्तर है? उन्होंने बुद्ध की सेवा में जाना छोड़ दिया। शास्ता की बराबरी के होकर घूमने लगे।

एक दिन शास्ता ने उनके आकर पास बैठे रहने के समय आठ भूमियों से सजाकर मूलपरियाय सुत्त का उपदेश दिया। उनकी कुछ समझ में नहीं आया। तब उनको विचार हुआ—हम अभिमान करते हैं कि हमारे समान पण्डित नहीं। लेकिन अब कुछ नहीं समझते। बुद्ध के सदृश पण्डित नहीं हैं। अहो बुद्ध गुण! उस समय से वह नम्र बन गए, वैसे जैसे सर्प के दाँत उखाड़ दिए गए हो, विष जाता रहा हो। शास्ता ने उक्कट्ठा में यथाभिरुचि रहकर वैशाली जा वहाँ गोतमक चेतिय में गोतमकसुत्त का उपदेश दिया। हजार लोकधातु काँप गई। उसे सुनकर वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुए। मूल परियाय सुत्त के उपदेश के अन्त में, जिस समय शास्ता उक्कट्ठा में ही विहार करते थे, भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अहो बुद्धों की शक्ति! वे ब्राह्मण प्रव्रजित वैसे अभिमानी थे। उन्हें भगवान् ने मूल परियाय सुत्त से मान-रहित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी इन अभिमानी सिर वालों को मान रहित किया है, पहले भी किया है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर तीनों वेदों में पारङ्गत हो प्रसिद्ध आचार्य्य बन पाँच सौ माणवकों को मन्त्र बँचवाता था। वे पाँच सौ (माणवक) शिल्प सीखकर, उसका अभ्यास कर सोचने लगे—'जितना हम जानते हैं, आचार्य्य भी उतना ही। उसमें कुछ विशेष नहीं।' यह सोच वह अभिमान से चूर हो आचार्य्य के पास न जाते, उसकी सेवा शुश्रूषा न करते। एक दिन जब आचार्य्य बेर के वृक्ष के नीचे बैठा था, उन्होंने उसे ठगने की इच्छा से बेर के वृक्ष को नाखून से खुरच कर कहा—यह वृक्ष निस्सार है। बोधिसत्त्व ने यह जान कि यह मुझे ठग रहे हैं कहा—शिष्यो! एक प्रश्न पूछता हूँ।

उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक कहा—पूछे, उत्तर देंगे। आचार्य्य ने प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

कालो घसति भूतानि सब्बानेव सहत्तना,
यो च कालघसो भूतो स भूत पचनिं पचि ॥

[काल सभी प्राणियो को खाता है, अपने को भी (खाता है)। जो काल को खाने वाला प्राणी है वह सब प्राणियो को जलाने वाली को जलाता है।]

कालो पूर्वाण्ह समय तथा अपराण्ह समय आदि। **भूतानि** प्राणी। काल प्राणियो का चर्म मास आदि नोच नोच कर उन्हे नही खाता किन्तु उनकी आयु, वर्ण बल को नष्ट कर यौवन को मर्दन कर आरोग्य का विनाश करता हुआ खाता है। इस प्रकार खाता हुआ किसी को नही छोडता। **सब्बानेव** खाता है। केवल प्राणियो को ही नही किन्तु **सहत्तना** अपने को भी खाता है। पूर्वाण्ह अपराण्ह तक नही रहता, इसी प्रकार अपराण्ह आदि भी। **यो च कालघसो भूतो** यह क्षीणास्रव के लिए कहा गया है। वह आर्य्यमार्ग से भविष्य के प्रतिसन्धि-ग्रहण करने के समय को नष्ट करने वाला होने से **कालघसो भूतो** कहलाता है। **स भूत पचनिं पचि** उसने इस तृष्णा को, जो प्राणियो को अपाय मे जलाती है, ज्ञानाग्नि से जला दिया, भस्म कर दिया। इसीसे **भूतपचनिं पचि** कहा जाता है। पजनिं भी पाठ है। जननि पैदा करने वाली अर्थ है।

इस प्रश्न को सुनकर माणवको मे एक भी न जान सका। तब बोधिसत्त्व ने कहा—तुम यह मत समझो कि यह प्रश्न तीनो वेदो मे है। तुम यह समझ कर कि जो मैं जानता हूँ वह सब तुम जानते हो मुझे बेर का वृक्ष बनाते हो। तुम यह नही जानते कि ऐसा बहुत है जिसे तुम नही जानते और मैं जानता हूँ। जाओ, सात दिन का समय देता हूँ। इतने समय मे इस प्रश्न पर विचार करो।

वे बोधिसत्त्व को प्रणाम कर अपने अपने निवासस्थान पर गए। वहाँ सप्ताह भर सोचने पर भी न उन्हे प्रश्न का आरम्भ मिला न अन्त। वे सातवे दिन आचार्य्य के पास गए। प्रणाम करके बैठे। आचार्य्य ने पूछा—भद्रमुखो!

प्रश्न समझ में आया ? वे बोले—नही जानते । बोधिसत्त्व ने फिर उनकी निन्दा करते हुए दूसरी गाथा कही—

> बहूनि नरसीसानि लोमसानि ब्रहानि च,
> गीवासु पटिमुक्कानि कोचिदेवेत्थ कण्णवा ॥

अर्थ—बहुत आदमियो के सिर दिखाई देते हैं। वे बालो वाले हैं। सभी बडे बडे हैं। गर्दनो पर रखे हैं। ताड के फल की तरह हाथ में पकडे हुए नही हैं। इन बातो में किन्ही में आपस में भेद नही है। लेकिन यहाँ कोई ही कानवाला है। (यह अपने बारे में कहा) कण्णवा प्रज्ञावान्। कान का छेद तो किसको नही है ?

इस प्रकार उन माणवकों की निन्दा कर कि तुम लोगो को कानो का छेद मात्र ही है, प्रज्ञा नही है प्रश्न समझाया। उन्होने सुनकर 'ओह ! आचार्य्य महान् होते हैं' क्षमा माँग नम्र हो बोधिसत्त्व की सेवा की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पाँच सौ माणवक यह भिक्षु थे। आचार्य्य मैं ही था।

२४६. तेलोवाद जातक

"हन्त्वा झत्वा वधित्वा च " यह शास्ता ने वैशाली के आश्रय कूटागार शाला में विहार करते समय सिंह सेनापति के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने भगवान् (बुद्ध) की शरण जा, निमन्त्रण दे, अगले दिन मास सहित भोजन कराया। निगण्ठो[1] ने उसे सुन कुपित हो असन्तुष्ट हो तथागत को

---

[1] निगण्ठ=निर्ग्रन्थ=जैन सम्प्रदाय वाले साधु।

पीडा पहुँचाने की इच्छा से गाली दी—श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बनाए मास को खाता है। भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! परिषद सहित निगण्ठनाथपुत्र 'श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बना मास खाता है' कह गाली देता हुआ घूमता है। इसे सुन शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी निगण्ठनाथपुत्र 'अपने लिए बना मास खाने वाला' कह मेरी निन्दा करता है, उसने पहले भी की है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए। बडे होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो निमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से बाराणसी आ अगले दिन नगर में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। एक गृहस्थ ने तपस्वी को तग करने के उद्देश्य से उसे घर में बुला, बिछे आसन पर बिठा मत्स्य मास परोसा। भोजन कर चुकने पर एक ओर बैठ कर कहा—यह मास तुम्हारे ही लिए प्राणियो को मार कर तैयार किया गया है। यह पाप केवल हम न लगे, तुम्हें भी लगे।

इतना कह पहली गाथा कही—

हन्त्वा झत्वा वधित्वा च देति दान असञ्ञतो,
एदिस भत्त भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति ॥

[मारकर, कष्ट देकर तथा वध करके असयमी दान देता है। इस प्रकार के भोजन को खाने वाला पाप का भागी होता है।]

हन्त्वा प्रहार देकर। झत्वा क्लेश देकर। वधित्वा मारकर। देति दान असञ्ञतो असयमी दुश्शील ऐसा करके इस प्रकार दान देता है। एदिस भत्त भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति इस प्रकार उद्देश्य करके बनाए हुए भोजन को खाने वाला श्रमण भी पाप से युक्त होता है।

उसे सुन बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

पुत्तदारम्पि चे हन्त्वा देति दानं असञ्ञतो,
भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो न पापेन उपलिम्पति ॥

[यदि असंयमी (आदमी) पुत्र तथा स्त्री को मारकर भी दान देता है, तो भी बुद्धिमान् खाने वाले को पाप नहीं लगता।]

भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो दूसरे मास की बात रहे। पुत्र स्त्री को भी मार कर दुःशील द्वारा दिए गए दान को प्रज्ञावान् क्षमामैत्री आदि गुणों से युक्त खाने वाला पाप से लिप्त नहीं होता।

इस प्रकार बोधिसत्त्व धर्मोपदेश कर आसन से उठकर चले गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गृहस्थ निगण्ठनाथपुत्र था। तपस्वी तो मैं ही था।

२४७. पादञ्जली जातक

"अद्धा पादञ्जली सब्बे..." यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय लालुदायी स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दोनों प्रधान शिष्य प्रश्नों पर विचार करते थे। भिक्षु धर्मसभा में सुन स्थविरों की प्रशंसा करते थे। परिषद में बैठे हुए लाल उदायी स्थविर ने होंठ चबाए—यह हमारे बराबर क्या जानते हैं? धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो, लालुदायी ने दोनों श्रावकों की निन्दा कर होंठ चबाए। शास्ता ने यह सुन कर कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी

लालुदायी होठ चबाना छोड और अधिक कुछ नही जानता था। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी म ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके अर्थधर्मानुशासक ग्रामात्य हुए। राजा का पादञ्जली नाम का पुत्र मूर्ख था, ग्रालसी था। आगे चलकर राजा मर गया। ग्रामात्यो ने राजा का क्रिया कर्म करके, किसे राज्याभिषिक्त करे सलाह करते हुए कहा कि राजपुत्र पादञ्जली को। बोधिसत्त्व ने कहा—यह कुमार मूर्ख है, ग्रालसी है। परीक्षा करके इसे राज्याभिषिक्त करें। ग्रामात्यो ने मुकद्दमा बना कुमार को पास बैठा मुकद्दमे का फैसला करते हुए ठीक फैसला नही किया। उन्होने ग्रस्वामी को स्वामी बना कुमार से पूछा—कुमार ! क्या हम लोगो ने ठीक फैसला किया ? उसने होठ चबाए। बोधिसत्त्व ने समझा मालूम होता है कुमार पण्डित है। वह समझ गया होगा कि मुकद्दमे का ठीक फैसला नही हुग्रा। ऐसा मानकर पहली गाथा कही—

ग्रद्धा पादञ्जली सब्बे पञ्ञाय ग्रतिरोचति,
तथाहि ग्रोट्ठं भञ्जति उत्तरिं नून पस्सति ॥

[पादञ्जली निश्चय से प्रज्ञा म सबसे बढकर है। इसीसे होठ चबाता है। निश्चय से इसे दूसरी बात दिखाई देती है।]

निश्चय से पादञ्जली कुमार सब्बे हम पञ्ञाय ग्रतिरोचति तथाहि ग्रोट्ठ भञ्जति नून उत्तरिं दूसरे कारण को पस्सति।

उन्होने दूसरे दिन भी एक मुकद्दमा तैयार कर उस मुकद्दमे का ठीक से फैसला कर पूछा—देव ! कैसे क्या यह ठीक से फैसला हुग्रा है ? उसने फिर भी होठ चबाए। उसकी मूर्खता की बात जान बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

नाय धम्म ग्रधम्म वा ग्रत्थानत्थं च बुज्झति,
ग्रञ्ञत्र ग्रोट्ठनिब्भोगा नाय जानाति किञ्चन ॥

[यह धर्म अधर्म वा अर्थ अनर्थ कुछ नहीं बूझता है। यह होठ चबाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता है।]

आमात्यों ने पादञ्जली कुमार की मूर्खता पहचान बोधिसत्त्व को राज्याभिषिक्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पादञ्जली लालुदायी था। पण्डित आमात्य तो मैं ही था।

२४८. किंसुकोपम जातक

"सब्बेहि किंसुको दिट्ठो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय किंसुकोपमसुत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

चार भिक्षुओं ने तथागत के पास आ कर्मस्थान माँगा। शास्ता ने उनको कर्मस्थान कहा। वे कर्मस्थान ले अपने अपने रात्रि के निवासस्थान तथा दिन के निवासस्थानों को गए। उनमें से एक ने छ स्पर्श आयतनों का परिग्रहण कर अर्हत्व प्राप्त किया। एक ने पञ्चस्कन्धों को। एक ने चारों महाभूतों को। एक ने अठारह धातुओं को। उन सबने अपनी अपनी अर्हत्व-प्राप्ति तथागत से निवेदन की। उन भिक्षुओं म से एक को शङ्का हुई—यह कर्मस्थान तो भिन्न भिन्न हैं। निर्वाण एक है। सभी को अर्हत्व की प्राप्ति कैसे हुई? उसने शास्ता से पूछा। शास्ता बोले—भिक्षु, क्या तुझे किंसुक देखने वाले भाइयों जैसा भेद (पैदा हुआ है)? भिक्षुओं ने प्रार्थना की भन्ते! यह बात हमें कहें। शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसके चार पुत्र थे। उन्होने सारथी को बुलाकर कहा—सौम्य ! हम किंसुक देखना चाहते हैं। हमे किंसुक वृक्ष दिखाएँ। सारथी बोला—अच्छा दिखाऊँगा। उसने चारो को एक साथ न दिखा ज्येष्ठ पुत्र को रथ मे बिठा जगल मे ले जा ठूँठ की अवस्था मे किंसुक दिखाकर कहा कि यह किंसुक है। दूसरे को छोटे छोटे पत्ते निकलने के समय। तीसरे को फूल निकलने के समय। चौथे को फल निकलने पर।

आगे चलकर एक बार जब चारो भाई एक साथ बैठे थे उन्होने बातचीत चलाई कि किंसुक कैसा होता है ? एक बोला—जैसे जला हुआ ठूँठ। दूसरा—जैसे न्यग्रोध वृक्ष। तीसरा—जैसे मासपेशी। चौथा—जैसे सिरीष। वे परस्पर एक दूसरे के कथन से असन्तुष्ट हो पिता के पास गए और पूछा—देव ! किंसुक कैसा होता है ? राजा ने पूछा—तुमने कैसे कैसे बताया ? सबने अपना अपना कहने का ढग राजा से कहा। राजा बोला—तुम चारो ने किंसुक देखा है। हाँ, केवल किंसुक दिखाने वाले सारथी से इस समय में किंसुक कैसा होता है, इस समय में कैसा होता है यह बाँट कर नही पूछा। उसीसे शक पैदा हुआ है। यह कह पहली गाथा कही—

> सब्बेहि किंसुको दिट्ठो किन्त्वेत्य विचिकिच्छथ,
> नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो ॥

[सभी ने किंसुक देखा है, किन्तु उसमें शङ्का करते हो। सभी अवस्थाओ मे सारथी से नही पूछा।]

नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो सभी ने किंसुक देखा है। तुम यहाँ क्या शङ्का करते हो ? सब जगह यह किंसुक ही था, किन्तु तुमने सभी अवस्थाओ में सारथी को नही पूछा। उसीसे शङ्का उत्पन्न हुई है।

शास्ता ने यह बात कह कर समझाया कि भिक्षु जैसे वे चार भाई विभाग करके न पूछने के कारण किंसुक के बारे में सन्देहशील हुए, उसी तरह तू भी

इस धर्म में शङ्का करता है। यह कह अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी कथा कही—

एवं सब्बेहि ञाणेहि येसं धम्मा अजानिता,
ते वे धम्मेसु कङ्खन्ति किंसुकस्मिंव भातरो ॥

[सभी विषयों में, जो धर्म के जानकार नहीं हैं वह धर्मों के बारे में वैसे ही शङ्का करते हैं जैसे किंसुक के बारे में (चारों) भाई।]

जैसे वे भाई सभी अवस्थाओं में किंसुक को न देखने के कारण सन्देहशील हुए। उसी प्रकार विपश्यना ज्ञान से जिनको सब छः स्पर्शायतन स्कन्ध महाभूत धातु आदि धर्म अज्ञात हैं, स्रोतापत्ति मार्ग को प्राप्त न किए रहने के कारण, ज्ञानी न हुए रहने के कारण ही (वे) उन स्पर्श आयतन आदि धर्मों में शंका पैदा करते हैं। जैसे एक ही किंसुक में चारों भाई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बाराणसी राजा मैं ही था।

२४९. सालक जातक

"एकपुत्तको भविस्ससि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक महास्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक कुमार को प्रव्रजित कर उसे कष्ट पहुँचाता रहता था। श्रामणेर ने पीडा न सह सकने के कारण चीवर त्याग दिया। स्थविर जाकर उसे फुसलाता —कुमारक ! तेरा चीवर तेरा ही रहेगा। पात्र भी। मेरे पास जो पात्र चीवर हैं वह भी तेरा ही रहेगा। आ प्रव्रजित हो। 'मैं प्रव्रजित नहीं होऊँगा'

कहने हुए भी यह बार बार आग्रह किए जाने के कारण प्रव्रजित हो गया।

प्रव्रजित होने के दिन से फिर स्थविर उसे तग करने लगा। उसने कष्ट न सह सकने के कारण फिर चीवर त्याग दिया। अब स्थविर के अनेक बार कहने पर भी उसने प्रव्रजित होना स्वीकार नहीं किया। बोला—मुझे तू सहन भी नहीं कर सकता। मेरे बिना तू रह भी नहीं सकता। जा प्रव्रजित नहीं होऊँगा।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! उस बच्चे का दिल अच्छा था। महास्थविर के आशय को समझ कर वह प्रव्रजित नहीं हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह केवल अभी सुहृदय नहीं है। यह पहले भी सुहृदय ही था। एक बार उसका दोष देखकर उसे फिर ग्रहण नहीं किया।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक गृहस्थ कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर धान्य बेच कर जीविका चलाने लगा। एक सपेरा भी एक बन्दर को सिखा, औषध ग्रहण करवा, उसे तथा सर्प को खिलाता हुआ जीविका चलाता था।

वाराणसी में उत्सव घोषित होने पर उसमें खेलने की इच्छा से उस सपेरे ने वह बन्दर उस धान्य के व्यापारी को सौंपा और कहा—इसका ख्याल रखना। उत्सव खेल आकर सातवें दिन उस व्यापारी के पास जाकर पूछा—बन्दर कहाँ है ? बन्दर स्वामी की आवाज सुनते ही अनाज की दुकान से जल्दी से निकला। उसने बन्दर को बाँस की छड़ी से पीठ पर मार और लेकर उद्यान गया। वहाँ उसे एक तरफ बाँधा और सो गया। बन्दर ने उसे सोया देख अपना बन्धन खोला और भाग कर आम के वृक्ष पर चढ़ गया। वहाँ उसने अपर आम खाकर गुठली सपेरे के शरीर पर गिराई। सपेरे ने उठ कर देखा तो सोचा कि मधुर वाणी से उसे ठग वृक्ष से उतार पकड़ूँगा। उसने उसे फुसलाते हुए पहली गाथा कही—

एकपुत्तको भविस्ससि
त्वञ्च नो हेस्ससि इस्सरो कुले,
ओरोह दुमस्मा सालक
एहि दानि घरकं वजेमसे ॥

अर्थ—तू मेरा एकपुत्र होकर रहेगा। मेरे कुल में (भोगों का) स्वामी होकर रहेगा। इस वृक्ष से उतर। आ, अपने घर चलें। सालक ! यह नाम लेकर सम्बोधन किया है।

उसे सुनकर बन्दर ने दूसरी गाथा कही—

ननु मं हदयेतिमञ्ञसि
यञ्च मं हनसि वेलुयट्ठिया,
पक्कम्बवने रमामसे
गच्छ त्वं घरकं यथासुखं ॥

[निश्चय से तू मुझे हृदय से बहुत चाहता है। तभी तो मुझे बाँस की छड़ी से मारता है। अब हम पके आम्रवन में रहेंगे। तू सुखपूर्वक घर जा।]

ननु मं हदयेति मञ्ञसि निश्चय से तू मुझे हृदय मे बहुत मानता है। मतलब है कि तू समझता है कि यह सुहृदय है। यञ्च मं हनसि वेलुयट्ठिया इतना अधिक मानता है कि बाँस की छड़ी से मारता है। इससे प्रकट करता है कि इस कारण से मैं नहीं आता हूँ। इसलिए हम इस पक्कम्बवने रमामसे गच्छ त्वं घरकं यथासुखं यह कह कूद कर वन में चला गया।

सपेरा भी असन्तुष्ट हो अपने घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर श्रामणेर था। सपेरा महास्थविर। धान्य का व्यापारी तो मैं ही था।

२५०. कपि जातक

"अयं इसी उपसम सञ्ञमे रतो॰ " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसका ढोंग भिक्षुओं में प्रकट हो गया। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक भिक्षु कल्याणकारी बुद्धशासन में प्रव्रजित हो ढोंग करता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह भिक्षु केवल अभी ढोंगी नहीं है, यह पहले भी ढोंगी रहा है। इसने जब यह बन्दर था केवल आग के लिए ढोंग किया। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशीदेश में ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर पुत्र के भागने दौड़ने में समर्थ होने पर, ब्राह्मणी के मर जाने पर पुत्र को गोद में ले हिमालय चला गया। वहाँ ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो उस पुत्र को भी तपस्वीकुमार बना पर्णशाला में रहने लगा। वर्षा ऋतु में मूसलधार वर्षा होने के समय एक बन्दर पीड़ित, दाँत कटकटाता हुआ, काँपता हुआ भटकता था। बोधिसत्त्व बड़े बड़े लक्कड़ लाकर आग बना मञ्च पर लेटा था। उसका पुत्र भी पाँव दबाता हुआ बैठा था। वह बन्दर एक मृत तपस्वी के वल्कल वस्त्र ओढ़ पहन, एक कन्धे पर अजिनचर्म रख, बँहगी तथा कमण्डल ले ऋषिवेष बना पर्णशाला के द्वार पर जा आग के लिए ढोंग करके खड़ा हुआ।

तपस्वी कुमार ने उसे देख 'तात ! एक तपस्वी शीत से पीडित है। काँप रहा है। उसे यहाँ बुला। सेक लेगा' कहा। उसने पिता से प्रार्थना करते हुए यह गाथा कही—

> **अयं इसी उपसमसंयमे रतो**
> **संतिट्ठति सिसिरभयेन अट्टितो,**
> **हन्द अयं पविसतुमं अगारकं**
> **विनेतु सीतं दरथञ्च केवलं।**

[यह ऋषि उपशमन में तथा संयम में लगा है। शीतभय से पीडित है। यह इस घर में प्रवेश करे और अपने शीत तथा पीडा को दूर करे।]

उपसमसंयमे रतो रागादि क्लेश के उपशमन में तथा शीलसंयम में लगा है। **सतिट्ठति,** वह ठहरता है। **सिसिरभयेन** वायु और वर्षा से उत्पन्न शीतभय से। **अट्टितो** पीडित। **पविसतुमं,** यहाँ प्रवेश करे। **केवलं** सब।

बोधिसत्व ने पुत्र की बात सुन उठकर देखते हुए बन्दर का भाव समझ दूसरी गाथा कही—

> **नायं इसी उपसमसंयमे रतो**
> **कपी अयं दुमवरसाखगोचरो,**
> **सो दूसको रोसकोचापि जम्मो**
> **सचे वजे इमम्पि दूसये घरं॥**

[यह उपशमन तथा सयम मे लगा हुआ ऋषि नही। यह वृक्षो की शाखा पर घूमने वाला बन्दर है। यह दूषित करने वाला है। यह क्रोध करने वाला है। यह नीच है। यदि घर में आए तो इस घर को भी दूषित करे।]

दुमवरसाखगोचरो वृक्षो की शाखा पर घूमने वाला। **सो दूसको रोसको चापि जम्मो** जहाँ जहाँ जाए उस उस जगह को दूषित करने वाला होने से दूसक। झगड़ने वाला होने से **रोसको,** नीच होने से **जम्मो**। **सचे वजे** यदि इस पर्ण-

शाला म आवे, दाखिल हो तो सब जगह पाखाना पेशाब करके और आग लगा कर खराब कर दे।

यह कह कर बोधिसत्त्व ने जली लकडी ले उसे डरा भगाया। वह कूद कर वन म प्रवश कर चला ही गया। फिर उस जगह नही गया। बोधिसत्त्व न अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर तपस्वीकुमार को कसिन-परिकर्म सिखाया। उसने अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त की। व दोनो ध्यान प्राप्त हो ब्रह्मलोक परायण हुए।

शास्ता न 'न भिक्षुओ केवल अभी किन्तु पुरान समय से भी यह ढोगी ही है', कह यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त म कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी हुए।

उस समय बन्दर ढोगी भिक्षु था। पुत्र राहुल। पिता तो मैं ही था।

शाला म आवे, दाखिल हो तो सब जगह पाखाना पेशाब करके और आग लगा कर खराब कर दे।

यह कह कर बोधिसत्त्व ने जली लकडी ले उसे डरा भगाया। वह कूद कर वन में प्रवेश कर चला ही गया। फिर उस जगह नही गया। बोधिसत्त्व ने अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर तपस्वीकुमार को कसिन-परिकर्म सिखाया। उसने अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त की। वे दोनो ध्यान-प्राप्त हो ब्रह्मलोक परायण हुए।

शास्ता ने 'न भिक्षुओ केवल अभी किन्तु पुराने समय से भी यह ढोगी ही है', कह यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी हुए।

उस समय बन्दर ढोगी भिक्षु था। पुत्र राहुल। पिता तो मै ही था।